द्विभाषी राष्ट्रसेवक

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal

❖ वर्ष : 73 ❖ अंक : 4/5 ❖ जुलाई/अगस्त, 2023

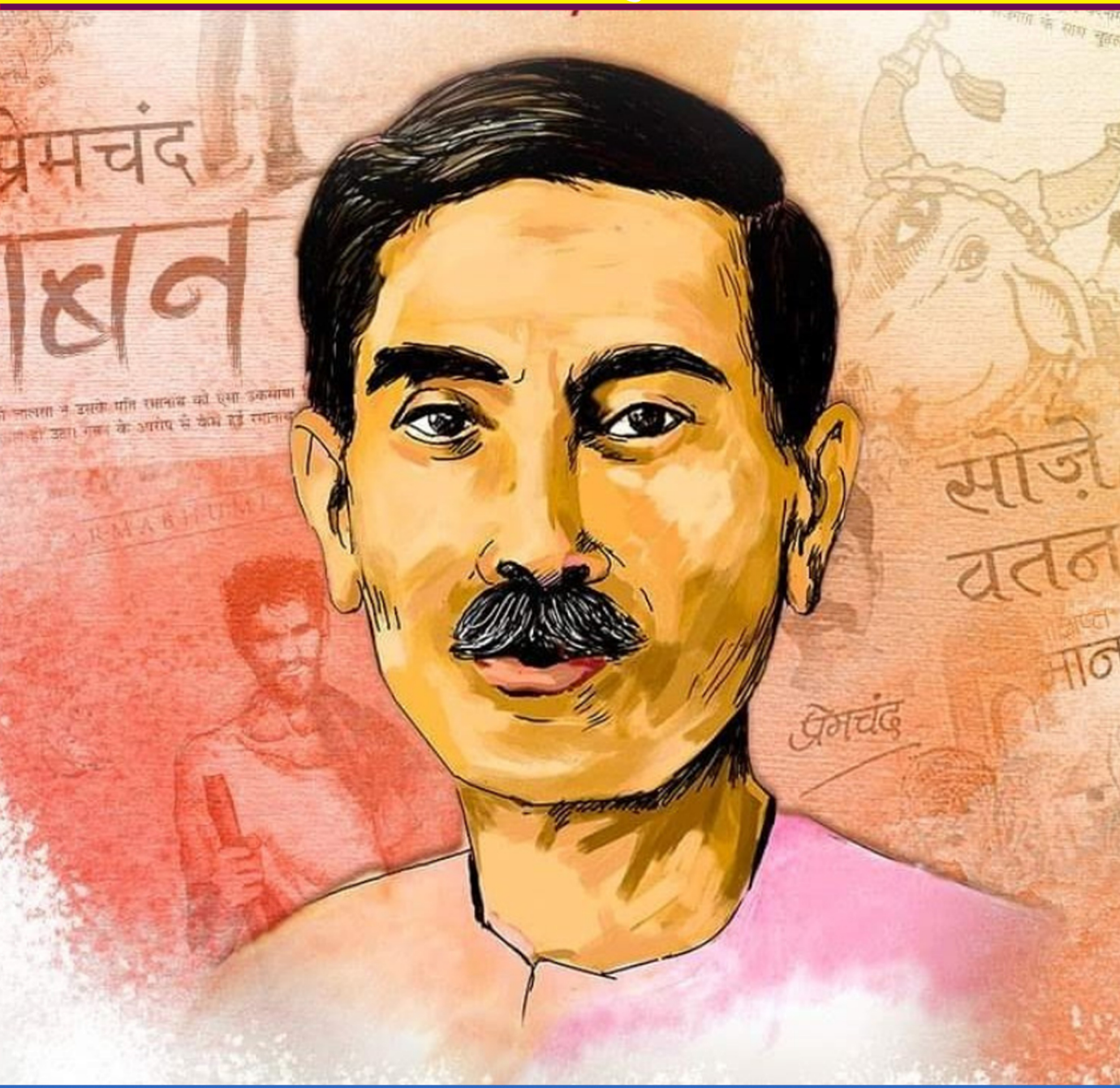

ख्वाहिश नहीं मुझे मशहूर होने की

हरिवंश राय बच्चन
(27 नवंबर, 1909 – 18 जनवरी, 2003)

ख्वाहिश नहीं मुझे
मशहूर होने की,
आप मुझे पहचानते हो
बस इतना ही काफी है।
अच्छे ने अच्छा और
बुरे ने बुरा जाना मुझे,
जिसकी जितनी जरूरत थी
उसने उतना ही पहचाना मुझे!
जिन्दगी का फलसफा भी
कितना अजीब है,
शामें कटती नहीं और
साल गुजरते चले जा रहे हैं!
एक अजीब सी
'दौड़' है ये जिन्दगी,
–जीत जाओ तो कई
अपने पीछे छूट जाते हैं और
हार जाओ तो
अपने ही पीछे छोड़ जाते हैं!
बैठ जाता हूँ
मिट्टी पे अक्सर,
मुझे अपनी
औकात अच्छी लगती है।
मैंने समंदर से
सीखा है जीने का तरीका,
चुपचाप से बहना और
अपनी मौज में रहना।
ऐसा नहीं कि मुझमें
कोई ऐब नहीं है,
पर सच कहता हूँ
मुझमें कोई फरेब नहीं है।
जल जाते हैं मेरे अंदाज से
मेरे दुश्मन,
एक मुद्दत से मैंने
न तो मोहब्बत बदली
और न ही दोस्त बदले हैं।
एक घड़ी खरीदकर
हाथ में क्या बाँध ली,
वक्त पीछे ही
पड़ गया मेरे!

सोचा था घर बनाकर
बैठूँगा सुकून से,
पर घर की जरूरतों ने
मुसाफिर बना डाला मुझे!
सुकून की बात मत कर
बचपन वाला इतवार अब नहीं आता!
जीवन की भागदौड़ में
क्यूँ वक्त के साथ रंगत खो जाती है?
हँसती–खेलती जिन्दगी भी
आम हो जाती है!
एक सबेरा था
जब हँसकर उठते थे हम,
और आज कई बार बिना मुस्कुराए
ही शाम हो जाती है!
कितने दूर निकल गए
रिश्तों को निभाते–निभाते,
खुद को खो दिया हमने
अपनों को पाते–पाते।
लोग कहते हैं
हम मुस्कुराते बहुत हैं,
और हम थक गए
दर्द छुपाते–छुपाते!
खुश हूँ और सबको
खुश रखता हूँ,
लापरवाह हूँ खुद के लिए
मगर सबकी परवाह करता हूँ।
मालूम है
कोई मोल नहीं है मेरा फिर भी
कुछ अनमोल लोगों से
रिश्ते रखता हूँ। ❑

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

UGC CARE Listed Journal

वर्ष : 73 अंक : 4-5 जुलाई-अगस्त, 2023

परामर्श मंडल

श्री भारतभूषण महंत
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

प्रो. आर.एस. सर्राजु
सम कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

प्रो. प्रदीप के शर्मा
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय
काजी रोड, गंगटोक, सिक्किम - 737101

डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ. दिलीप कुमार मेधि
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अच्युत शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

संपादक

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-1

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :
प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32
फोन : 9101541395, 9101541380
ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : 100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

आवरण पृष्ठ : इंटरनेट से साभार

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा.लि., इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	हिंदी विभाग		
	संपादकीय (प्रेमचंद की सादगी)		4
1.	मुंशी प्रेमचंद का उपन्यास साहित्य	✍ डॉ. मजीद शेख	5
2.	निरालाकृत 'तुलसीदास' की सांस्कृतिक चेतना	✍ डॉ. मालविका शर्मा	16
3.	महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव के बरगीतों में राम-वंदना	✍ डॉ. निबेदिता नाथ	24
4.	समकालीन कविता का मानवीय चेहरा	✍ प्रो. प्रमोद कोवप्रत	30
5.	राभा लोकगीत : एक अध्ययन	✍ डॉ. चंदना शर्मा	34
6.	श्री अरविंद की विचारधारा का अंतर्राष्ट्रीयकरण	✍ प्रभाकर पाण्डेय	38
7.	फणीश्वरनाथ रेणु और महिम बोरा के उपन्यासों में चित्रित कृषक जीवन	✍ अंचल कुमारी राय	46
8.	भारत का स्वतंत्रता संग्राम और पत्रकारिता	✍ सीमा ✍ डॉ. सुनीता सिरोही	51
9.	कमल कुमार की कहानियों में सामाजिक समस्या	✍ रेखा गुप्ता	57
10.	आदिवासी संस्कृति के महासागर : समकालीन हिंदी उपन्यास	✍ सीमा कुमारी मीना	62
	অসমীয়া বিভাগ		
11.	প্রেমচন্দৰ অমৰ সৃষ্টি 'কফন'	✍ ড° নৱকান্ত শর্মা	71
12.	প্রেমচন্দৰ 'নির্মলা' উপন্যাসখনৰ মাজেৰে ফুটি উঠা পুৰুষতাত্ত্বিক সমাজখনৰ মানসিকতা	✍ অর্ণৱ শর্মা	76
13.	কাৰবি ভাষা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	✍ বনজিৎ শর্মা	82
14.	অসমৰ মহিলা পৰিচালিত নাট্যগোষ্ঠী ঃ এটি অধ্যয়ন	✍ বিটুমণি মালীয়া	88
15.	উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ লোকজীৱনৰ ওপৰত বিশ্বায়নৰ প্রভাৱ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	✍ দিপ্তী সিতলা ✍ ড° স্মৃতিশিখা চৌধুৰী	95
16.	য়েছে দৰজে ঠংচিৰ উপন্যাস 'লিঙাঝিক'ত অৰুণাচল প্রদেশৰ চেৰদুকপেন লোকসমাজৰ লোকাচাৰ আৰু লোক-সাংস্কৃতিক সমল	✍ ড° পূণ্য লতা গোঁহাঞি	103
17.	হেমচন্দ্র বৰুৱাৰ সাহিত্যৰ ভাষা ঃ এক সংক্ষিপ্ত মূল্যায়ন	✍ চুচুংফা বৰগোঁহাঞি	115
18.	অসমৰ চাহ জনগোষ্ঠীয় মহিলাসকলৰ জীৱনশৈলী আৰু আর্থ-সামাজিক অৱস্থা ঃ এক আলোচনা	✍ কৃশাংগী শইকীয়া	124
19.	স্বৰাজ আন্দোলনৰ অক্লান্ত চিপাহী কবি অম্বিকাগিৰি ৰায়চৌধুৰী	✍ ড° বিনীতা নাথ	129

संपादकीय

प्रेमचंद की सादगी

'जो व्यक्ति धन-सम्पदा में विभोर और मगन हो, उसके महान पुरुष होने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। जैसे ही मैं किसी आदमी को धनी पाता हूँ, वैसे ही मुझ पर उसकी कला और बुद्धिमत्ता की बातों का प्रभाव काफूर हो जाता है। मुझे जान पड़ता है कि इस शख्स ने मौजूदा सामाजिक व्यवस्था को, उस सामाजिक व्यवस्था को, जो अमीरों द्वारा गरीबों के दोहन पर अवलम्बित है - स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार किसी भी बड़े आदमी का नाम, जो लक्ष्मी का कृपापात्र भी हो, मुझे आकर्षित नहीं करता। बहुत मुमकिन है कि मेरे मन के इन भावों का कारण जीवन में मेरी निजी असफलता ही हो। बैंक में अपने नाम में मोटी रकम जमा देखकर शायद मैं भी वैसा ही होता, जैसे दूसरे हैं - मैं भी प्रलोभन का सामना न कर सकता, लेकिन मुझे प्रसन्नता है कि स्वभाव और किस्मत ने मेरी मदद की है और मेरा भाग्य दरिद्रों के साथ सम्बद्ध है। इससे मुझे आध्यात्मिक सांत्वना मिलती है।'

ये बातें महान साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद ने 1 दिसंबर, 1935 को प्रसिद्ध लेखक बनारसी दास चतुर्वेदी को एक खत के जरिए कही थी। प्रेमचंद और बनारसी दास चतुर्वेदी में गहरी दोस्ती थी। दोनों के बीच अक्सर खत जो किताबी हुआ करती थी। इस सिलसिले में बनारसी दास चतुर्वेदी ने प्रेमचंद के इंतकाल के बाद उनके संस्मरणों पर आधारित एक किताब लिखी, जिसका नाम था - 'स्वर्गीय प्रेमचंद जी'।

इस किताब में उन्होंने इस ख़त को भी शामिल किया है। इस ख़त को पढ़कर प्रेमचंद जी के व्यक्तित्व का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। यह खत प्रेमचंद की सादा मिज़ाजी, उनका देशप्रेम और फकीराना अंदाज़ को दर्शाता है।

आधुनिक भारत के शीर्षस्थ साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद की रचनादृष्टि साहित्य के विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुई है। उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, संस्मरण, निबंध आदि अनेक विधाओं में उन्होंने साहित्य सृजन किया। उनका जीवन जितनी गहनता लिए हुए है, साहित्य के फलक पर उतना ही व्यापक है। उन्होंने कुल 15 उपन्यास, 300 से अधिक कहानियाँ, 3 नाटक, 10 अनुवाद, 7 बाल पुस्तकें तथा हजारों की संख्या में लेख आदि की रचना की।

प्रेमचंद अपनी हर कृति को इतने समर्पित भाव से रचते कि पात्र जीवंत होकर पाठक के हृदय में धड़कने लगते थे। यहां तक कि पात्र यदि व्यथित हैं तो पाठक की पलक की कोर भी नम हो उठती। पात्र यदि किसी समस्या का शिकार है तब उसकी मनोवैज्ञानिक प्रस्तुति इतनी प्रभावी होती है कि पाठक भी समाधान मिलने तक बेताबी का अनुभव करता है।

वे स्वयं आजीवन जमीन से जुड़े रहे और अपने पात्रों का चयन भी हमेशा परिवेश के अनुसार ही किया। उनके द्वारा रचित पात्र होरी किसानों का प्रतिनिधि चरित्र बन गया।

अगर एक वाक्य में कहा जाए तो प्रेमचंद एक सच्चे भारतीय थे। एक सामान्य भारतीय की तरह उनकी आवश्यकताएं भी सीमित थीं। उनके कथाकार पुत्र अमृतराय ने एक जगह लिखा है 'क्या तो उनका हुलिया था, घुटनों से जरा नीचे तक पहुँचने वाली मिल की धोती, उसके ऊपर कुर्ता और पैरों में बन्ददार जूते। आप शायद उन्हें प्रेमचंद मानने से इनकार कर दें लेकिन तब भी वही प्रेमचंद थे, क्योंकि वही हिन्दुस्तान हैं।'

प्रेमचंद हिन्दी के पहले साहित्यकार थे, जिन्होंने पश्चिमी पूंजीवादी एवं औद्योगिक सभ्यता के संकट को पहचाना और देश की मूल कृषि संस्कृति तथा भारतीय जीवन दृष्टि की रक्षा की।

सुमित्रानन्दन पंत के शब्दों में -प्रेमचंद ने नवीन भारतीयता एवं नवीन राष्ट्रीयता का समुज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत कर गांधी जी के समान ही देश का पथ प्रदर्शन किया।

ऐसे संवेदनशील लेखक, यथार्थवादी साहित्यकार, उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद की जयंती पर राष्ट्रसेवक परिवार की ओर से उन्हें शत्-शत् नमन। ❑

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

मुंशी प्रेमचंद का उपन्यास साहित्य

डॉ. मजीद शेख

सहयोगी प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक
हिंदी विभाग, प्रतिष्ठान महाविद्यालय,
पैठण, जिला : औरंगाबाद-431107
(महाराष्ट्र), मो. : 09765944586
ई-मेल : majidmshaikh@gmail.com

भूमिका :

साहित्यकार मनुष्यता का रक्षक और उसका प्रवक्ता एवं संस्थापक भी होता है। इसमें करुणा का भाव होता है और वह अशक्त एवं सशक्त सभी के प्रति संवेदनशील रहता है। इस समाज में एक-दूसरे का शोषण भी मनुष्य ही करता है। परंतु साहित्यकार इस शोषित-पीड़ित मनुष्य के साथ खड़ा होता है। प्रेमचंद ने कहा था - साहित्यकार दुर्बल, शोषित एवं दमित व्यक्ति का वकील होता है और उसकी पीड़ा को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। प्रेमचंद का साहित्य ऐसे कई उदाहरणों से लबरेज हैं, जहां वे समाज के सबसे अशक्त मनुष्य के पक्ष में खड़े हैं। प्रेमचंद-साहित्य में युग की समस्याओं को बड़ी व्यापकता के साथ स्थान मिला है, जिसमें व्यक्ति, परिवार, समाज, देश आदि सभी समस्याएं विद्यमान हैं। वे समस्याओं का चित्रण तो करते ही हैं, पर उनके समाधान का रास्ता भी खोलते हैं।

'मुंशी' और 'प्रेमचंद' दो अलग-अलग लोग थे। 'हंस' पत्रिका के संपादक 'प्रेमचंद' और सह-संपादक 'कन्हैयालाल मुंशी' थे। संपादकों की जगह 'मुंशी, प्रेमचंद' लिखा जाता था। कभी-कभार टंकन की गलती से 'मुंशी प्रेमचंद' लिखा गया। भूलवश या गलती से स्वीकृत वही नाम भविष्य में 'मुंशी प्रेमचंद' हुआ। मजे की बात यह है कि केवल विराम चिह्न हटने से ये सब घटित हुआ था।

व्यक्तित्व :

प्रेमचंद के लेखन की शुरुआत उर्दू-उपन्यास, कहानियों के लेखन से हुई। सन् 1907 ई. को उनका 'सोजे वतन' उर्दू कहानियों का संग्रह प्रकाशित हुआ, जो अगले वर्ष जब्त कर लिया गया। अभी तक प्रेमचंद (घर का नाम धनपतराय) 'नवाबराय' के नाम से लिखा करते थे, किंतु 'सोज़े वतन' की जब्ती के बाद से 'प्रेमचंद' नाम से लिखने लगे। अर्थात्

उन्होंने 'नवाबराय' नाम छोड़कर 'प्रेमचंद' नाम से लिखना शुरू किया। मुंशी दयानारायण निगम उर्दू के प्रसिद्ध पत्रकार और समाज सुधारक थे। वे बीसवीं शताब्दी के आरंभ में कानपुर से प्रकाशित होनेवाली उर्दू पत्रिका 'ज़माना' के संपादक थे। प्रेमचंद प्रारंभ में 'नवाबराय' नाम से कहानियां लिखते थे और उनकी कई कहानियां 'ज़माना' में प्रकाशित हुई थीं, परंतु जब अंग्रेज सरकार ने उनकी कहानियों पर आपत्ति करनी शुरू की तो उन्होंने नाम बदलने का निर्णय लिया। दयानारायण निगम ने उन्हें 'प्रेमचंद' नाम दिया। 'ज़माना' के दिसंबर, 1910 ई. के अंक में एक कहानी 'बड़े घर की बेटी' शीर्षक से छपी। इस पर पहली बार 'प्रेमचंद' का नाम छपा। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, **'जो लोग उर्दू को विदेशी भाषा समझते हैं, उन्हें यह सुनकर दुःख होगा कि 'प्रेमचंद', यह प्यारा नाम, उन्हें एक उर्दू लेखक और संपादक दयानारायण निगम ने दिया था।'**[1] प्रेमचंद और नवाबराय, इन नामों को लेकर सुदर्शन जी से उनकी बातचीत इस तरह हुई – **'आपने नवाबराय नाम क्यों छोड़ दिया ?' वे इस प्रश्न का उत्तर देते हैं, 'नवाब वह होता है, जिसके पास कोई मुल्क भी हो। हमारे पास मुल्क कहां ? बे-मुल्क नवाब भी होते हैं। यह कहानी का नाम हो जाए तो बुरा नहीं, मगर अपने लिए यह नाम घमंडपूर्ण है। चार पैसे पास नहीं और नाम नवाबराय। इस नवाबी से प्रेम भला, जिसमें ठंडक भी है, संतोष भी है।'**[2]

'साधारण बुद्धि' और 'साधारण जन' प्रेमचंद के लिए कोई जुमला नहीं था। यह उनकी छाती फाड़कर देखा जा सकता है। लोग उन्हें 'उपन्यास सम्राट' कहते थे। इस सामंती उपाधि से वे बेहद झुंझलाते थे। 'समालोचक' में लिखते हुए उन्होंने इस पर खुलेआम आपत्ति की थी, 'इस उपाधि से मुझसे अधिक घृणा शायद ही कोई करता होगा।' **'वे लेखक और मनुष्य के रूप में जनता के (या 'कलम' के) सिपाही रहना पसंद करते थे, सम्राट नहीं।'**[3]

प्रेमचंद लिखने में वह एक मजदूर की तरह परिश्रम करते थे और जो लोग लिखना बंद कर देते थे, उन्हें

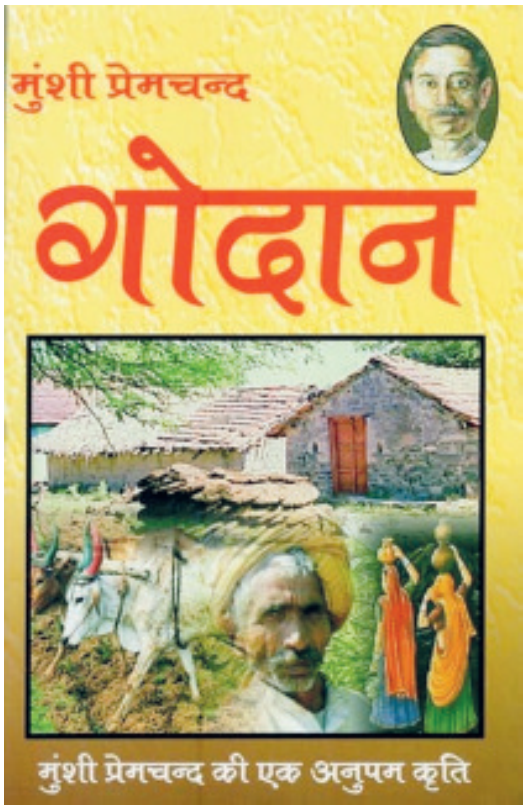

फटकारते भी थे। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं, **'इस दृढ़ निश्चय से प्रेमचंद ने साहित्य-रचना की थी, इसलिए कि वह जानते थे कि भले ही धन और यश न मिले, उनके साहित्य से जनता का हित अवश्य होगा।'**[4] वे बड़े ही स्वाभिमानी व्यक्ति थे, लेकिन अपने सम्मान से ज्यादा उन्हें देश के सम्मान का ध्यान रहता था। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में, **'प्रेमचंद के लिए देश-भक्ति और जनतंत्र दो विरोधी चीजें नहीं थीं। वह राष्ट्रीय और जनवादी भावनाओं के समर्थक थे। निर्भीकता से वह अपने विचार दूसरों के सामने रखते थे और उनके लिए लड़ते थे।'**[5]

प्रेमचंद का साहित्य अपने समय के भारतवर्ष और उसके स्वाधीनता-आंदोलन का प्रतिबिंब है। उसमें उस समय के सामाजिक जीवन और स्वाधीनता-आंदोलन की असंगतियां भी झलकती हैं। डॉ. कमल किशोर गोयनका लिखते हैं, **'वे भारतीयता के कथाकार थे**

और उनकी भारतीयता बहुलतावादी और समावेशी थी और उसमें भारतीय समाज का बृहद रूप समाया था। उन्होंने समाज की विषमता, भेदभाव,विसंगति और अमानवीयता पर गहरी चोट की और जीवन के आदर्श रूप की स्थापना की। उन्होंने गांधीवाद को साहित्य में समुचित स्थान दिया और स्वाधीनता-संग्राम के महागाथाकार बने। वे कृषि संस्कृति के उपासक और रक्षक थे और पश्चिमी सभ्यता एवं औद्योगिकरण को भारतीयता के शत्रु मानते थे। वे मनुष्य में देवत्व के अन्वेषी रचनाकार थे और भारतीय आत्मा के सर्जक कथाकार।'[6]

प्रेमचंद का उपन्यास साहित्य :

प्रेमचंद आरंभ में 'उर्दू' में लेखन करते थे, फिर हिंदी में लेखन किया। उनका पहला उर्दू उपन्यास 'असरारे मुआ विद' उर्फ 'देवस्थान रहस्य' रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में ईश्ववर का नाम लेकर मठों में चलनेवाले अनाचारों का चित्रण है। दूसरा उपन्यास 'हमखुरमा वा हमशबाब' है। इसका हिंदी में रूपांतर 'प्रेमा' शीर्षक से हैं। इनके समग्र उपन्यास साहित्य पर दृष्टि डालने पर स्पष्ट होता है कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रेमचंद का सर्वप्रथम उपन्यास 'रूठी रानी' है। इसके बाद 'कृष्णा', 'वरदान', 'प्रेमा' और 'श्यामा' आदि का क्रम आता है। प्रेमचंद की 'सेवासदन' पहली प्रौढ़ औपन्यासिक कृति है, जहां से उनके नये औपन्यासिक जीवन का ही नहीं अपितु हिंदी-उपन्यास के नये युग का भी प्रादुर्भाव हुआ। 'सेवासदन' (1918 ई.) के बाद 'वरदान' (1921 ई.) 'प्रेमाश्रम' (1922 ई.), 'रंगभूमि' (1925 ई.), 'कायाकल्प' (1926 ई.), 'निर्मला' (1927 ई.), 'प्रतिज्ञा' (1929 ई.) 'ग़बन' (1931 ई.), 'कर्मभूमि' (1933 ई.), 'गोदान' (1936 ई.) यह उनकी मौलिक उपन्यास कृतियां हैं। प्रेमचंद का 'मंगलसूत्र' (अपूर्ण) उपन्यास है। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, **'करोड़ों मनुष्यों का संहार करनेवाले दो महायुद्धों के बीच प्रेमचंद की वाणी अपने भविष्य में अटल विश्वास रखनेवाली भारतीय जनता की वाणी है।'**[7] उपन्यास के क्षेत्र में उनके योगदान को देखकर बांग्ला भाषा के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने उन्हें उपन्यास सम्राट कहकर संबोधित किया था।

प्रेमचंद का साहित्य बीसवीं शताब्दी के भारतवर्ष का सही इतिहास है। हमारी जनता की सहृदयता, सहनशीलता और वीरता उनकी रचनाओं में फूल की तरह खिली हुई हैं। अंग्रेजों का बर्बर पुलिस-राज, खूनी आतंक और उनके मित्रों का जनता से विश्वासघात उनकी रचनाओं में काले कुहरे की तरह छाया हुआ है। भारत के लोग एक भरा-पूरा, सुखी, सुसंस्कृत, समृद्ध जीवन बिताना चाहते हैं-यह साध उनकी रचनाओं में निरंतर झलकती है। इस साध को पूरा करने के लिए वे कैसा पराक्रम दिखाते हैं, इसका समग्र ब्यौरा प्रेमचंद का साहित्य हैं। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं, **'विराट मानव-संस्कृति की धारा में भारतीय जन-संस्कृति की गंगा ने जो कुछ दिया, उसके प्रमाण प्रेमचंद के लगभग एक दर्जन उपन्यास और उनकी सैकड़ों कहानियां हैं।'**[8]

प्रेमचंद के साहित्य-जगत् में प्रवेश के साथ ही हिंदी उपन्यास में एक नया मोड़ आता है। अभी तक हिंदी पाठक जासूसी का चमत्कार और तिलस्म के आश्चर्यजनक करिश्मे देख रहे थे। ऐतिहासिक रोमांसों की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं थी। उनमें सनातनधर्मी प्रतिक्रियावादी मनोवृत्तियां, पर्दा प्रथा का समर्थन, थोथे पातिव्रत्य का अनुमोदन, सहशिक्षा तथा विधवा-विवाह का विरोध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यासों को इस भूल-भुलैया और प्रतिक्रियावादी स्थितियों से बाहर निकाल कर वास्तविकता की ज़मीन पर खड़ा किया।

1. सेवासदन (1918 ई.) :

'सेवासदन' इनकी प्रारंभिक कृतियों में सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास है। यह उपन्यास प्रेमचंद के उर्दू उपन्यास 'बाजार-ए-हुस्न' का हिंदी रूपांतर है। 'बाजार-ए-हुस्न' उर्दू भाषा में यही उपन्यास 1919 ई. में छपा था। प्रेमचंद का हिंदी में प्रकाशित होने वाला 'सेवासदन' पहला उपन्यास था। इस उपन्यास ने हिंदी तथा कथा साहित्य के क्षेत्र में एक युगांतर उपस्थित किया। प्रेमचंद

ने इस उपन्यास में मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन की दहेज प्रथा, अनमेल विवाह तथा वेश्या समस्या जैसी ज्वलंत समस्याओं पर प्रहार किया है। **'प्रेम, भक्ति और क्षमा का कैसा मनोहर, कैसा दिव्य, कैसा आनंदमय दृश्य है। माता-पिता का हृदय प्रेम से पुलकित हो रहा है और पुत्र के हृदय सागर में भक्ति की तरंगे उठ रही है। इसी प्रेम और भक्ति की निर्मल ज्योति से हृदय की अंधेरी कोठरियां प्रकाशपूर्ण हो गई हैं। मिथ्याभिमान और लोक लज्जा या भयरूपी कीट पतंग वहां से निकल गये हैं। अब वहां न्याय, प्रेम और सद्व्यवहार का निवास है।'** [9] इसके अतिरिक्त परिवार में किसी के नैतिक पतन के कारण पूरे परिवार को जो तिरस्कार और अपमान सहना पड़ता है, उसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलता है। इस उपन्यास में वेश्या प्रथा के उन्मूलन हेतु 'सेवासदन' की स्थापना कराके आदर्शवादी समाधान उपस्थित करने का सराहनीय प्रयास किया गया है। 'सेवासदन' यह उपन्यास लोगों को सस्ती शिक्षा देने के लिए नहीं लिखा गया था। वास्तव में वेश्या-जीवन उसका मुख्य विषय है भी नहीं, 'सुमन' कथा पर छाई हुई है, इसलिए ऐसा आभास हो सकता है कि उपन्यास वेश्या-जीवन पर है। 'सुमन' एक अच्छे स्वभाव की सुंदर-सी लड़की है। उसमें यदि कोई विशेषता है तो यह कि वह अन्याय के सामने झुकना नहीं जानती। प्रेमचंद ने 'सुमन' को एक सांचे में ढली हुई सुंदर मूर्ति की तरह पाठक के सामने नहीं रख दिया। उसके चरित्र-चित्रण में एक मौलिकता है, जो उनकी कला की सबसे बड़ी विशेषता है। डॉ.रामविलास शर्मा ने 'सुमन' का बड़ा सटीक विश्लेषण किया है, **'हिंदी-कथा साहित्य की वह पहली नारी है, जो आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए संघर्ष की डगर पर पांव उठाती है। बचपन में वह साधी और निस्सहाय है। उसकी इच्छाओं को आसानी से कुचलकर उसे एक अवांछित पुरुष के हवाले किया जा सकता है, लेकिन उसके भीतर कहीं वीर नारी का दर्प सो रहा था, वह दर्प जो भारतीय नारी की विशेषता है, और ठोकर खाकर वह जाग उठता है।'** [10]

2. वरदान (1921 ई.) :

'सेवासदन' के पश्चात 'वरदान' उपन्यास लिखा गया। देशभक्ति एवं समाज सेवा को दृष्टि में रखकर प्रेमचंद ने इस उपन्यास को लिखा। इस उपन्यास की मूल कथा प्रेम और कर्तव्य के द्वंद्व पर आधारित है। प्रस्तुत उपन्यास में देशभक्ति, समाज सेवा, सच्चा प्रेम तथा सच्चरित्र आदि पर सम्यक रूप से प्रकाश डाला गया है। आदर्श नारी 'सुवामा' बीस वर्ष तक अष्टभूजा देवी की आराधना करके उसे अपने देश का उद्धार करने वाले पुत्र को जन्म देने का वर मांगती है। देश-भक्त पुत्र को वह कुबेर का धन, इंद्र के बल, सरस्वती की विद्या से भी उत्कृष्ट मानती है। देवी की कृपा से उसको पुत्र पैदा होता है। 'सुवामा' ने उस पुत्र का नाम 'प्रतापचंद्र' रखा था। 'प्रतापचंद्र' अत्यंत सुंदर तथा प्रतिभा संपन्न था। **'सुवामा को अपने होनहार पुत्र पर अभिमान था। उसके जीवन की गति देखकर उसे विश्वास हो गया था कि मन में जो अभिलाषा रखकर मैंने पुत्र मांगा था, वह अवश्य पूर्ण होगी'** [11]

'वरदान' उपन्यास की रचना किसी राजनीतिक अथवा आर्थिक समस्या को ध्यान में रखकर नहीं की थी, बावजूद अपनी इस छोटी-सी प्रारंभिक रचना में भी प्रेमचंद ने किसानों की दशा का वर्णन प्रस्तुत करने के लिए अवसर ढूंढ़ निकाला है। उपन्यास की अधिकांश कथा में क्रमश: कृत्रिमता बढ़ती चली गई है और कल्पना की अतिशयता ने मूल कथानक को ही गड़बड़ कर दिया है। अपितु प्रेमचंद की 'वरदान' एक दुर्बल कृति है।

3. प्रेमाश्रम (1922 ई.) :

'प्रेमाश्रम' इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन की प्रधानता है। इसमें मुख्यत: किसान और जमींदारों के प्रश्नों को उठाकर जमींदारी प्रथा के विरुद्ध मुखर आवाज उठाई गई है। पुरानी सामंती और जमींदारी सभ्यता किस प्रकार खोखली हो चुकी है और किस प्रकार वह अपने अंतिम दिनों में भी किसानों के शोषण में व्यस्त है, इन सबका बड़ा सजीव तथा सटीक मार्मिक चित्रण किया हैं। **'मानव-चरित्र न बिल्कुल श्यामल होता है, न बिल्कुल श्वेत। उसमें दोनों ही रंगों का विचित्र**

सम्मिश्रण होता है। स्थिति अनुकूल हुई तो वह ऋषितुल्य हो जाता है, प्रतिकूल हुई तो नराधम। वह अपनी परिस्थितियों का खिलौना मात्र है।' [12] उन्होंने किसान जीवन को आधार बनाकर इस औपन्यासिक कृति का निर्माण किया है। वास्तव में किसान जीवन पर यह हिंदी का पहला उपन्यास है। अपितु इसमें जमींदार तथा किसानों के संघर्ष को दिखाया गया है। 'प्रेमाश्रम' को 'महाकाव्यात्मक उपन्यास' घोषित करने में असुविधा नहीं होनी चाहिए। कमल किशोर गोयनका लिखते हैं, **'अपनी कुछ दुर्बलताओं के होने पर भी 'प्रेमाश्रम' का प्रकाशन हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में एक ऐतिहासिक घटना है। युग के सांस्कृतिक बहाव को चित्रित करनेवाला उपन्यास, महाकाव्य की गरिमा से मंडित है और वह हिंदी का प्रथम महाकाव्यीय-उपन्यास है।'** [13] हिंदी में इस तरह का उपन्यास किसी ने पहले न लिखा था। किसानों पर लिखना साधारण काम नहीं था। उस पर भी किसी ख़ास आदमी को नायक न बनाना और भी अनोखा प्रयोग था। प्रेमचंद ने पाप और पुण्य के राक्षस और देवता नहीं रचे। उन्होंने उस धड़कन को सुना जो करोड़ों किसानों के दिल में हो रही थी। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में, **'प्रेमाश्रम' लिखना एक अद्भुत साहस का काम था। साहित्य का झंडा लिए हुए प्रेमचंद ऐसे मार्ग पर चल पड़े, जिसे पहले किसी ने तय न किया था। उनकी प्रतिभा का यह प्रमाण है कि उन्होंने जो साहस किया, वह दुस्साहस साबित नहीं हुआ। 'प्रेमाश्रम' एक अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास के रूप में आज भी जीवित है।'** [14]

4. रंगभूमि (1925 ई.) :

'रंगभूमि' उनका यह आकार की दृष्टि से सबसे बड़ा उपन्यास है। यह उपन्यास असहयोग आंदोलन के दौरान लिखा गया था, इसका प्रभाव उपन्यास में सर्वत्र दिखाई देता है। गांधीवाद का व्यापक प्रभाव भी इस उपन्यास पर रहा है। इस उपन्यास में दलितों एवं गरीबों का विस्तार से चित्रण हुआ है। इस उपन्यास का नायक 'सूरदास' दलित है। उसमें गजब का जीवट है। वह बाधाओं से मुंह नहीं मोड़ता अपितु संघर्ष करता रहता है। इस उपन्यास में पूंजीपति एवं सामंतों के शोषण, अन्याय-अत्याचार के वास्तविक चित्र को उकेरा गया है। इसमें ग्रामीण जीवन की सरलता, आत्मीयता के स्थान पर औद्योगिक सभ्यता की विद्रुपता और जटिलता का भी उल्लेख देखने को मिलता हैं। औद्योगिक शोषण, राजनीतिक पराधीनता और वर्ग-संघर्ष से ओत-प्रोत इस उपन्यास में भारतीय जन-जीवन के अनेक पक्ष दिखाए गए हैं।

बनारस के पास पांडेपुर नामक गांव 'रंगभूमि' का घटना स्थल है। अंधा 'सूरदास' भीख मांगता हुआ अपना जीवन निर्वाह करता है। भीख मांगने में भी वह सदा दूसरों की भलाई चाहता है। यात्रियों की जान की खैर मानते हुए वह कहता है, 'दाता'! भगवान तुम्हारा कल्याण करें-यही उसकी टेक थी।' [15] इस उपन्यास की विशेषता यह है कि भारतीय समाज के निम्नतम चमार जाति के एक अंधे एवं दुबले-पतले भिखारी 'सूरदास' को अपने उपन्यास का प्रधान पात्र बनाकर प्रेमचंद हिंदी साहित्य में ही नहीं, अपितु भारतीय साहित्य एवं विश्व-साहित्य के पटल पर अमर स्थान प्राप्त कर लेते हैं। **'साहब, वैरागी होने के लिए भभूत लगाने और भीख मांगने की जरूरत नहीं। हमारे महात्माओं ने तो भभूत लगाने और जटा बढ़ाने को पाखंड बताया है। वैराग तो मन से होता है। संसार में रहे, पर संसार का होकर न रहे। इसी को वैराग कहते है।'** [16] प्रेमचंद गांधीजी के दर्शन से प्रभावित होने के कारण एक चमार 'सूरदास' को गांधीजी की विचारधारा का सच्चा प्रतिनिधि बनाते हैं।

5. कायाकल्प (1926 ई.) :

'कायाकल्प' उपन्यास का मूल उद्देश्य भारतवर्ष के हिंदू समाज में व्याप्त अंधविश्वासों और परंपराओं को दिखाना रहा हैं। इस उपन्यास की प्रमुख समस्या हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य है, जो उस समय भारत की सबसे बड़ी समस्या बनी हुई थी। अर्थात् यह उपन्यास उस समय लिखा गया जब देश सांप्रदायिक हिंसा की चपेट में आ गया था। इस उपन्यास का कथानक दो रूपों में सामने आता है। एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। भौतिक पक्ष में सांप्रदायिक समस्या को

उठाया गया है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास में उन तथ्यों की ओर संकेत किया है, जो सांप्रदायिकता को जन्म देते हैं तथा उसका पोषण करते हैं। आध्यात्मिक पक्ष में आध्यात्मिक चेतना, लोक-परलोक की बात तथा अलौकिक चमत्कार आदि दिखाया गया है। इस उपन्यास में गरीबों की दयनीय दशा, दुख, विवशता तथा उन पर होनेवाले अत्याचारों का भी चित्रण किया गया है।

'कायाकल्प' में अलौकिक कथा का समावेश है। इसमें रानी देवप्रिया की अतृप्त वासना को चित्रित किया है। रियासतों के जीवन को यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर ही रानी देवप्रिया तथा उसके पति के चरित्र के माध्यम से जन्म-मरण के कुछ रहस्यों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। **'उसे कुछ-कुछ संदेह हो रहा था कि मैं सो तो नहीं रही हूं। कोई मनुष्य माया के दुर्भेद्य अंधकार को चीर सकता है? जीवन और मृत्यु के मध्यवर्ती अपार विस्मृत सागर को पार कर सकता है? जिसमें यह सामर्थ्यय हो, वह मनुष्य नहीं, प्रेत योनि का जीव है।'**[17] आध्यात्मिक वातावरण से पृथक इस उपन्यास में सांप्रदायिकता उन्मूलन का उद्देश्य भी विद्यमान है।

6. निर्मला (1927 ई.) :

'निर्मला' इस उपन्यास का कथ्य अनमेल-विवाह, दहेज समस्या पर आधारित है। अपने कतिपय बृहत उपन्यासों में देश की कई महत्त्वपूर्ण समस्याओं का विश्लेषण करने के पश्चात् प्रेमचंद ने इस छोटे-से उपन्यास में भारतीय नारी की समस्या की ओर संकेत किया है। उपन्यास के प्रमुख पात्र निर्मला, तोताराम, मंसाराम आदि हैं। इसमें मुख्य कहानी निर्मला की है, उसके पिता की मृत्यु के बाद उसके विवाह में बहुत-सी कठिनाइयां आती हैं। दहेज देने में असमर्थ होने के कारण फूल-सी सुकुमारी कन्या का विवाह करीब चालीस वर्ष की आयुवाला वकील दुहाजू तोताराम के साथ किया जाता है। पहली पत्नी के तीन लड़के हैं- मंसाराम, जियाराम और सियाराम। घर में तोताराम की एक बहन रूक्मिनी भी रहती है। ऐसे परिवार में निर्मला वधू बनकर आती है। इस स्थिति में वह तोताराम से प्रेम नहीं कर पाती। चूंकि तोताराम की आयु उसके पिता के समान थी। वह उनके सामने सिर झुकाकर देह चुराकर निकलती थी। वह उससे प्रेम नहीं करती अपितु उनका सम्मान करती है। तोताराम काम विज्ञान के ग्रंथों को पढ़कर निर्मला को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं, पर दयनीय रूप में पराजित होते हैं। इस विवाह के कारण दो-दो परिवार कैसे बर्बाद होते हैं, इसका मार्मिक चित्रण ही 'निर्मला' में हुआ है।

तोताराम निर्मला और बड़े पुत्र मंसाराम के स्नेहह पर शंकालु होकर मंसाराम को बोर्डिंग में भेज देता है। बोर्डिंग में भेजने का कारण स्पष्ट नहीं करते। तब से मंसाराम तथा निर्मला की आंतरिक मनोदशा का वर्णन कथाकार ने बड़े ही मनोवैज्ञानिक रूप में किया है। अंत में मरनासन्न मंसाराम निर्मला के चरणों पर गिरकर अपनी पवित्रता का निरूपण करके प्राण छोड़ देता है। 'मंसाराम जो चारपाई से हिल भी न सकता था, उठकर खड़ा हो गया और निर्मला के पैरों पर गिरकर रोते हुए बोला-**अम्माजी, इस अभागे के लिए आपको व्यर्थ इतना कष्ट हुआ। मैं आपका स्नेह कभी-भी न भूलूंगा। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा पुनर्जन्म आपके गर्भ से हो, जिससे मैं आपके ऋण से अऋण हो सकूं। ईश्वर जानता है, मैंने आपको विमाता नहीं समझा। मैं आपको अपनी माता समझता रहा।'**[18] निर्मला का विवाह, मंसाराम की मृत्यु, तोताराम के परिवार का सर्वनाश होना, निर्मला की करुणापूर्ण मृत्यु, डॉ. सिन्हा की मृत्यु होने से सुधा का विधवा होना आदि सभी दृश्य अत्यंत करुणापूर्ण होकर मानवीय गुणों को जागृत करते हैं। इस उपन्यास में भी प्रेमचंद के मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त होता है।

7. प्रतिज्ञा (1929 ई.) :

'प्रतिज्ञा' प्रेमचंद का विधवा समस्या के समाधान हेतु लिखित एक सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में विधवा समस्या को रूढ़िगत एवं आध्यात्मिक दृष्टि से न देखकर वास्तविक जीवन की समस्या को हल करने का प्रयास किया गया है। उन दिनों में आर्य समाज के द्वारा विधवा पुनर्विवाह का तीव्र प्रचार हो

रहा था। उस प्रचार का प्रभाव प्रेमचंद पर अच्छी तरह पडा। अपितु स्वयं उन्होंने एक विधवा के साथ अपना दूसरा विवाह कर लिया। उन्हीं दिनों में यह उपन्यास लिखा गया था। लाला बदरीप्रसाद अपनी पुत्री प्रेमा का विवाह दाननाथ से कर देना चाहता है। दाननाथ एक सुंदर और बड़ा सज्जन युवक है। वह अपने काम से काम रखनेवाला सरल स्वभाव का युवक है। वह एक कॉलेज में प्राध्यापक भी है।

दाननाथ अमृतराय का प्रिय मित्र है। वह भी प्रेमा से प्यार करता है। इस दरमियान अमृतराय की पत्नी तथा प्रेमा की बहन का देहावसान हो जाता है। बदरीप्रसाद अपना पूर्व निर्णय बदलकर प्रेमा का विवाह अमृतराय के साथ कर देने का निश्चय कर लेते हैं। और अमृतराय भी प्रेमा से प्यार करता है। इस निर्णय से दाननाथ को बड़ा सदमा पहुंचता है। वह संसार से विरक्त-सा हो जाता है। वह बहुत दु:ख से जीवन व्यतीत करने लगता है। एक दिन काशी के आर्य मंदिर में आर्य समाज का व्याख्यानकर्ता अमरनाथ विधवा पुनर्विवाह का समर्थन करते हुए जोरदार भाषण देता है। संयोग से अमृतराय और दाननाथ भी उस व्याख्यान को सुनने जाते हैं। अमरनाथ के इस व्याख्यान का गहरा प्रभाव अमृतराय पर पड़ता है और वह मन में विधवाओं के उद्धार करने की 'प्रतिज्ञा' करके अपना हाथ उठाता है।

बदरीप्रसाद की बेटी प्रेमा का विवाह दाननाथ के साथ हो जाता है। प्रेमा अपने पति के घर जाती है और आनंद से जीवन व्यतीत करने लगती है, परंतु दाननाथ को भी यही शंका बनी रहती हैं कि प्रेमा को अमृतराय से प्रेम है। प्रेमा को यह बात मन-ही-मन चुभती है, पर त्याग एवं प्रतीक्षा का दामन वह नहीं छोड़ती। एक दिन जब दाननाथ उसे आ कर कहते हैं, 'न जाने मेरी बुद्धि पर क्यों ऐसा पर्दा पड़ गया कि अपने अनन्य मित्र पर ऐसे संदेह करने लगा तो प्रेमा का मनोमालिन्य बह जाता है।' **'आज मुझे मालूम हुआ है कि संसार में मेरा कोई सच्चा मित्र है तो यही है। मैंने इसके साथ बड़ा अन्याय किया। आज क्षमा मांगूंगा, सच्चे दिल से क्षमा मांगूंगा।'** [19]

अमृतराय विधवाओं की सेवा करने के लिए एक विधवा आश्रम खोलता है। अनेक आश्रयहीन विधवाएं उस आश्रम में आश्रय पाती है। उस आश्रम को चलाने के लिए आवश्यक धन अमृतराय चंदाओं के रूप में वसूल करने लगता है। इस प्रकार के आश्रम स्थापित कर समाज की कर्तव्य भावना के सहारे समस्या का समाधान करना ही प्रेमचंद युग की विशेषता रही है।

8. बन (1931 ई.) :

'बन' प्रेमचंद का सामाजिक उपन्यास है। इसमें स्त्रियों के आभूषण प्रेम का उल्लेख किया है। और नारी के आभूषण लगाव से कितने प्रश्न निर्माण होते हैं, इसका सटीक चित्रण देखने को मिलता है। उपन्यास के आरंभिक हिस्से में सामाजिक जीवन प्रमुख है तो अंतिम हिस्से में राजनीतिक उपन्यास हो जाता है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने गांधीवादी विचारधारा की व्यंजना की है।

प्रेमचंद को भारतीय समाज की गहरी समझ थी। मध्यवर्ग भी उनसे छूटा नहीं था। वे अच्छी तरह जानते थे कि आमदनी अधिक न होने पर भी यह वर्ग दिखावे के लिए खर्च करता है और अनेक विपत्तियों को स्वयं निमंत्रण देता है। उपन्यास में दयानाथ अपने बेटे रमानाथ के विवाह में अपनी हैसियत से अधिक खर्च करता है। रमानाथ भी अपने पिता से कम नहीं है, अपितु इस कार्य में अपने पिता से पांच कदम आगे ही हैं। उसकी पत्नी जालपा में भी आभूषणों के प्रति स्वाभाविक लगाव है। रमानाथ अपनी पत्नी को प्रसन्न रखने के लिए भ्रष्टाचार का सहारा लेता है। परिणामस्वरूप घोर संकट में फंस जाता है। इस उपन्यास की घटनाओं का मूल कारण रमानाथ ही है। यदि रमानाथ वास्तविक विषयों का परिचय जालपा से करा देता, तो वह चंद्रहार के लिए कभी हठ नहीं करती। इसी प्रकार कई परिवारों में लोग वास्तविक परिस्थिति से अनभिज्ञ होने के कारण कई प्रकार के कष्ट झेलते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचंद ने वेश्या जोहरा का चरित्र-चित्रण भी बहुत ही उदार एवं मानवतावादी गुणों से किया है। जोहरा कहती है, **'इतना मैं जानती हूं कि**

हम में जितनी बेचारियां मर्दों की बेवफाई से निराश होकर अपना आराम-चैन खो बैठती है, उनका पता अगर दुनिया को चले, तो आंखें खुल जाएं। यह हमारी भूल है कि तमाशबीनों से वफा चाहते हैं, चील के घोंसले में मांस ढूंढ़ते हैं, पर प्यासा आदमी अंधे कुएं की तरफ भी दौड़े तो मेरे खयाल में उसका कोई कसूर नहीं।' [20] प्रेमचंद अपने साहित्य में मनुष्य की दुर्बलता का चित्रण करते हैं, पर उसे ऊपर उठने के लिए संघर्ष का अवसर देते हैं। उनके पात्रों में परिवर्तन उनके भीतरी जगत् से होता है, इसीलिए वे स्थायी होते हैं। आगे फिर वे लिखते हैं कि, **'जोहरा ने अपनी सेवा, आत्मत्याग और सरल स्वभाव से सभी को मुग्ध कर लिया था। अपने अतीत को मिटाने के लिए अपने पिछले दागों को धो डालने के लिए, उसके पास इसके सिवा और क्या साधन था। उसकी सारी कामनाएं, सारी वासनाएं सेवा में लीन हो गई।'** [21] अंत में इसी सेवा कार्य में वह प्राण तक समर्पित करती है। अर्थात् प्रेमचंद ने सेवा को सर्वोच्च माना है-सारा प्रायश्चित सेवा में है। जोहरा के चरित्र में जो आध्यात्मिक परिवर्तन हुए, वे मानव के पतन-उत्थान की पुष्टि करते हैं। मनुष्य की अदम्य इच्छाशक्ति, उसके आत्मविश्वास की यह जीत है। अपितु 'बन' ब्रिटिश कालीन भारतीय परिवेश को उजागर करनेवाली एक उत्कृष्ट औपन्यासिक कृति है।

9. कर्मभूमि (1933 ई.) :

'कर्मभूमि' इस उपन्यास में प्रेमचंद ने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं पर समग्र रूप से प्रकाश डालने का प्रयास किया है। सन् 1930 ई. में गांधीजी का नमक सत्याग्रह, किसान आंदोलन, अछूतोद्धार, हरिजनों का मंदिर प्रवेश, अस्पृश्यों में शिक्षा का प्रचार आदि समस्याओं पर प्रेमचंद ने इस उपन्यास के माध्यम से विचार किया है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र अमरकांत बनारस के एक बड़े स्वार्थी एवं लोभी सेठ समरकांत का पुत्र है। समरकांत शिक्षा पर अर्थ व्यय करना व्यर्थ समझता है। वह कभी-कभार अमरकांत को स्कूल की फीस भी नहीं देता है। ऐसे समय में अमरकांत का एक मुस्लिम मित्र सलीम उसकी फीस भरने में मदद किया करता है। 'अमरकांत की आंखें फिर भर आईं। लाख यत्न करने पर भी आंसू न रूक सके। सलीम समझ गया। उसका हाथ पकड़कर बोला-**क्या फीस के लिए रो रहे हो - भले आदमी, मुझसे क्यों न कह दिया-तुम मुझे भी गैर समझते हो। कसम खुदा की, बड़े नालायक आदमी हो तुम। ऐसे आदमी को गोली मार देनी चाहिए दोस्तों से भी यह गैरियत चलो क्लास में, मैं फीस दिए देता हूं।'** [22] अमरकांत बचपन में ही मातृप्रेम से वंचित हो जाता है। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद समरकांत फिर दूसरा विवाह कर लेते हैं। दूसरी पत्नी की पुत्री का नाम नैना है। विमाता की पुत्री होने पर भी अमरकांत और नैना आपस में बहुत प्यार करते हैं। छात्र अवस्था में ही अमरकांत का विवाह सुखदा से होता है और इसी समय अमरकांत पर गांधीजी के सिध्दांतों का प्रभाव पड़ता है। वह हमेशा खादी पहनता है, चरखा भी चलाता है। निरंतर सार्वजनिक कार्यों में सहभागिता से जनता की सेवा करने में अधिक समय व्यतीत करने लगता है। पहले सुखदा इन सेवा कार्य से नाराज रहती और पति को निरंतर सलाह देती रहती कि आप अनावश्यक कार्य न करें, अपितु अपने पिता के व्यापार में सहयोग करते रहे।

प्रेमचंद ने इस उपन्यास में संघर्षमय जीवन का यथार्थ चित्रण कराके पात्रों को कर्तव्यशील बनाया है। वे समाज के सच्चे चितेरे होकर तत्कालीन समाज का चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से करते हैं। 'कर्मभूमि' हिंदुस्तान के स्वाधीनता-आंदोलन की गहराई और प्रसार का उपन्यास है। इस उपन्यास में भारतीय जनता के उन स्तरों को रंगमंच पर ला खड़ा करती है, जिनके दर्शन पहले हिंदी-कथा-साहित्य में कम हुए थे। ये शहर और गांवों के गरीब अछूत हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा हैं, **'कर्मभूमि' में वह सबसे ज्यादा जोर जमीन की समस्या, लगान कम करने की समस्या, खेत-मजदूरों और गरीब किसानों के लिए जमीन की समस्या पर देते हैं।'** [23]

10. गोदान (1936 ई.) :

'गोदान' प्रेमचंद का यह अंतिम और सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। समीक्षकों ने 'गोदान' को ग्रामीण जीवन का गद्यात्मक महाकाव्य कहा है। इस उपन्यास में दो स्वतंत्र कथाएं हैं।

पहली कथा का संबंध ग्रामीण जीवन से है, तो दूसरी कथा का संबंध शहर से है। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा हैं, **'प्रेमचंद ने जब 'गोदान' लिखा था, तब वह खुद भी कर्ज के बोझ से दबे हुए थे। 'गोदान' की मूल समस्या ऋण की समस्या है। इस उपन्यास में किसानों के साथ मानो वह आपबीती भी कह रहे थे।'**[24]

'गोदान' उपन्यास का आरंभ किसान जीवन के लंबे ऐतिहासिक आकलन पर आधारित है। 'गोदान' सेमरी और बेलारी नामक अवध प्रांत के दो गांवों की कहानी है। जमींदार रायसाहब सेमरी में रहते हैं और होरी बेलारी में रहता है। इस उपन्यास में होरी और धनिया की कहानी है। धनिया कर्तव्य परायण कर्मठ और अन्याय का विरोध करनेवाली साहसी नारी है। होरी के परिवार में बेटा गोबर तथा बिटियां सोना और रूपा है। होरी के हीरा और शोभा नामक दो भाई हैं। तीन वर्ष पूर्व अपने संयुक्त परिवार से अलग होकर खेती करते हुए होरी अपना निर्वाह करता है। होरी बड़ा व्यवहार-कुशल है। वह अपने इलाके के जमींदार रायसाहब अमरपाल सिंह की खुशामद और सलाम करने प्राय: जाया करता है। वह सोचता है कि इस तरह खुशामद करने से वे लगान के लिए तंग नहीं करेंगे, परंतु होरी के पुत्र गोबर को यह खुशामद अच्छी नहीं लगती और वह बार-बार इस विषय को लेकर अपने पिता से विरोध करता है। होरी निरंतर कडी मेहनत एवं मशक्कत करने के बावजूद भी अपने जीवन से दरिद्रता को मिटा नहीं पाता है।

प्रेमचंद ने 'गोदान' उपन्यास में होरी के माध्यम से महाजनी सभ्यता द्वारा किए गए शोषण को संपूर्णता में चित्रित किया है। होरी आजीवन कर्ज और अत्याचार को सहन करता है और अंत में किसान से मजदूर हो जाता है। भाई, पुत्र-पुत्री आदि संबंधियों से वह केवल पत्नी धनिया का सहारा पाता है। अंत में मजदूरी के बीस आने पैसे से गोदान की रस्म अदा कर स्वर्ग की इच्छा लिए मर जाता है।

'गोदान' में शहर की कथा को ग्रामीण कथा से जोड़ने के सूत्र अत्यंत क्षीण हैं। वह शहरी जीवन को भी पूरी तरह चित्रित नहीं कर पाती है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास में अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों की तरह किसी आदर्श की स्थापना नहीं की है। यहां पर वे पूरी तरह यथार्थवादी हुए हैं। 'गोदान' में ऐसा क्या है, जो इसे हिंदी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास बनाता है? अन्य उपन्यासों की भांति इसमें भी किसान की कथा है, जो समसामयिक है। परंतु 'गोदान' उपन्यास में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना की अनुभूति ही उसे महत्त्वपूर्ण बनाती है। विघटित होते हुए परिवार का गहरा दर्द जो 'गोदान' में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। 'झुनिया' को सारी मर्यादा के विरुद्ध अपने घर में जगह देने से बढ़कर मानवता क्या हो सकती है। अपने बेटे को, जो होरी से तना हुआ था, अपना पैर छूते देखकर भावुक हो जाता है।

होरी एक दिन रायसाहब अमरपाल सिंह के दर्शन करने जाता है। रास्ते में भोला नामक एक ग्वाले से उसकी मुलाकात होती है। भोला के पास बहुत गायें हैं। भोला की पत्नी की मृत्यु हुई है, वह होरी को अपने विधुर जीवन की दु:खद कथा सुनाता है। होरी मौका पाकर भोला को कई सगाई करने की लालसा दिखाकर उससे एक गाय उधार मांगता है। भोला अस्सी रुपये के दाम पर उसे एक गाय उधार में देता है। गांव के सभी लोग गाय को देखने आते हैं। केवल होरी के भाई हीरा और शोभा ईर्ष्यावश गाय को देखने नहीं आते।

एक दिन हीरा ईर्ष्या भाव के कारण गाय को विष खिला देता है। विष खाने से गाय मर जाती है। गाय के मरने से पूर्व होरी हीरा को गाय के नांद के पास खड़ा देखता है। अत: होरी अपने भाई को गाय का हत्यारा समझता है। भेद खुल जाने के डर से हीरा घर छोड़कर भाग जाता है। दारोगा गांव में पहुंच जाता है। होरी को दारोगा पूछता है कि तुझे किस पर संदेह है? होरी जानता है कि अपना ही भाई हत्यारा है। उसका भ्रातृभाव जाग उठता है। वह अपने भाई की रक्षा करता है और झूठ बोलता है कि गाय अपनी मौत से मरी है।

'गोदान' में धनिया बहुत ही साहसी, मुंहतोड़ जवाब देनेवाली औरत है। उसके लिए मानवता, समाज तथा

बिरादरी से बढ़कर है। धनिया के मानवता के कारण ही झुनिया और सिलिया उसके घर में आश्रय पाती हैं। होरी की अपेक्षा धनिया में धैर्य और व्यवहार ज्ञान अधिक है।

होरी 'गोदान' उपन्यास की आत्मा है। **'होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएं मानो उसके चरणों पर लौट रही थी। कौन कहता है, जीवन-संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय-पताकाएं हैं। उसकी छाती फूल उठी है, मुख पर तेज आ गया है।'** [25] होरी का चरित्र भारतीय कृषक का प्रतीक है। 'गोदान' की कथा समाप्त होकर भी होरी की शोक-कथा समाप्त नहीं होती है। **'उसकी आंखें बंद हो गईं और जीवन की सारी स्मृतियां सजीव हो-होकर हृदय-पट पर आने लगीं, लेकिन बे-क्रम, आगे की पीछे, पीछे की आगे, स्वप्न-चित्रों की भांति बेमेल, विकृत और असम्बद्ध।'** [26] 'गोदान' हिंदी का ऐसा उपन्यास है, जिसमें समग्र उत्तर-भारत का चित्रण मिलता है।

'गोदान' उपन्यास के अंत में करुण-प्रसंग केवल होरी की मौत ही नहीं है, अपितु उसकी मौत की करुणा का अहसास तब होता है, जब धनिया गिर पड़ती है। **'धनिया यंत्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खडे दातादीन से बोली-महराज! घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है। और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।'** [27] वह धनिया, जो किसी को कुछ नहीं समझती थी, आखिर उसकी शक्ति का स्रोत यह ढीला-ढाला गमखोर होरी ही था। धनिया की शक्ति में होरी की उपस्थिति का तेज निहित है।

'गोदान' भारतीय ग्रामीण जीवन का महाकाव्य है। इसमें गांव और किसान अपनी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों के साथ जीवित है। इस उपन्यास में 'होरी' अपने अस्तित्व की रक्षा में मर-मिटता है और मजदूर के रूप में मर जाता है। उसकी मृत्यु कृषि संस्कृति के ध्वंस का आख्यान है और यह त्रासदी उसे महान उपन्यास बनाती है।

11. मंगलसूत्र (अपूर्ण उपन्यास) :

'मंगलसूत्र' शीर्षक से प्रेमचंद ने यह उपन्यास लिखना आरंभ किया था। परंतु इसे वह अपने जीवनकाल में पूर्ण न कर सके। इस उपन्यास के चार परिच्छेद ही लिख पाये थे कि उनका देहावसान हो गया। 'मंगलसूत्र' में तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के प्रति प्रेमचंद का बढ़ता असंतोष व्यक्त हुआ है। इस अपूर्ण उपन्यास में प्रेमचंद ने देवकुमार, उनके पुत्र संतकुमार, साधुकुमार, कन्या पंकजा, डॉ. सिन्हा, गिरधरदास आदि को कथा का आधार बनाया है। संयुक्त परिवार में अलग-अलग विचारों के कारण जो क्लेश और कलह होता रहता है, इसका चित्रण भी यहां पर विस्तार से मिलता है। यह अधूरा उपन्यास 'मंगलसूत्र' नाम से ही बनारस के हिंदुस्तान पब्लिशिंग हाऊस से प्रकाशित हुआ है।

निष्कर्ष :

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि प्रेमचंद सत् साहित्य के प्रणेता है। सत् का अर्थ है, जिससे समाज का कल्याण हो, जिससे लोगों को प्रेरणा मिले परिस्थितियों एवं कठिनायों से जूझने के लिए। उनका मानना है कि प्रत्येक मनुष्य में सकारात्मक और नकारात्मक दो शक्तियां होती हैं। जो साहित्य मनुष्य को सर्जनात्मक और रचनात्मक दिशा की ओर उन्मुख कर सके वही सत् है, वही सुंदर है, वही हितकर है। साहित्यकार को केवल मनुष्य की दुर्बलता, उसकी दीनता, उसकी गरीबी, उसकी हीन भावना का ही अंकन नहीं करना है। उसे यथार्थ का चित्रण करते हुए आदर्श की ज्योति, आशा का उल्लस और कर्मठता का संदेश भी देना चाहिए। प्रेमचंद गांधीयुग अथवा भारत के नवजागरण काल की देन है। उनके उपन्यास साहित्य में सत्य, अहिंसा, प्रेम, सद्भाव, सेवा, त्याग, श्रम आदि के उदात्त अंकन है। वे समता के पक्षधर है। उनकी दृष्टि में वर्ण भेद, जाति भेद, संप्रदाय भेद समाज के लिए जहर हैं।

वे समाज को इनसे मुक्त करना चाहते हैं। वे मानते हैं कि हमें विचारों में महान् होना चाहिए भले ही हम गरीब निर्धन और साधनहीन हों। उनके पात्र असत् से सत् की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने के लिए द्वंद्व करते हैं। अर्थात् प्रेमचंद बाह्य द्वंद्व और अंतर्द्वंद्व के चित्रण में भी शत-प्रतिशत सफल एवं यशस्वी हुए हैं। ❑

संदर्भ :

1. डॉ. रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (पांचवां सं. 2008), पृ. 21
2. उपर्युक्त, पृ. 23
3. डॉ. मजीद शेख, आधुनिक हिंदी साहित्य के विविध परिदृश्य, अतुल प्रकाशन, कानपुर (द्वितीय सं. 2016), पृ. 161
4. डॉ. रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (पांचवां सं. 2008), पृ. 25
5. उपर्युक्त, पृ. 26
6. सं. डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, शोध दिशा, शोध अंक-50 (डॉ. कमल गोयनका सृजन अंक), हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ.प्र.), पृ. 199
7. डॉ. रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (पांचवां सं. 2008), पृ. 17
8. उपर्युक्त, पृ. 17
9. प्रेमचंद, सेवासदन, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद (Online PDF), पृ. 336-337
10. डॉ.रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (पांचवां सं. 2008), पृ. 39
11. प्रेमचंद, वरदान, 222.hindikosh.in, पृ. 125
12. प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद (वर्तमान सं. 1979), पृ. 386
13. कमल किशोर गोयनका, प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद (प्र.सं.1974), पृ. 223
14. डॉ.रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (पांचवां सं. 2008), पृ. 45
15. प्रेमचंद, रंगभूमि, स्टार पब्लिकेशन्स (प्रा.लि.), नई दिल्ली (सं. 2002), पृ. 5
16. उपर्युक्त, पृ. 10
17. प्रेमचंद, कायाकल्प, 222.hindikosh.in, पृ. 127
18. प्रेमचंद, निर्मला, 222.hindustanbooks.com, पृ. 66
19. प्रेमचंद, प्रतिज्ञा, सरस्वती-प्रेस, बनारस (चौथा सं. 1939), पृ. 216
20. प्रेमचंद, जबन, भाषा साहित्य-संस्थान, इलाहाबाद (सं. 1992), पृ. 172
21. उपर्युक्त, पृ. 185-186
22. प्रेमचंद, कर्मभूमि, 222. hindustanbooks.com, पृ. 3
23. डॉ. रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (पांचवां सं. 2008), पृ. 81
24. उपर्युक्त, पृ. 96
25. प्रेमचंद, गोदान, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली (सं. 2003), पृ. 278
26. उपर्युक्त, पृ. 279
27. उपर्युक्त, पृ. 280

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

निरालाकृत 'तुलसीदास' की सांस्कृतिक चेतना

डॉ. मालविका शर्मा

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
राधा गोविंद बरुवा महाविद्यालय
फटाशील आमबाड़ी
गुवाहाटी (असम)-781025
मो. 9435551073
ई-मेल : malabika.sarma123@gmail.com

शोध सार :

महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' आधुनिक हिंदी साहित्य के एक समर्थ हस्ताक्षर हैं। वे छायावाद के प्रमुख प्रवर्तकों में से एक हैं। उनकी कविताओं में विषय की विविधता और नवीन प्रयोग की बहुलता मिलती है। राष्ट्र प्रेम, प्रकृति प्रेम, नारी चेतना, शोषण और वर्गभेद के विरुद्ध विद्रोह तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान उनकी काव्यों की विशेषताएं हैं। निराला कृत 'तुलसीदास' एक प्रसिद्ध प्रबंध काव्य है। इसका प्रकाशन सन् 1938 में हुआ था। 'तुलसीदास' का कथानक जन सामान्य में प्रचलित तुलसीदास के निजी जीवन में घटित घटनाओं से संबंधित है। प्रस्तुत कृति के माध्यम से निराला ने भारतीय परंपरा के गौरवशाली मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का प्रयाास किया है। वस्तुत: तुलसीदास प्रबंध काव्य की दृष्टि से एक सफल कृति है।

बीज शब्द :

संस्कृति, अध्यात्म, चेतना, दर्शन, स्त्री-विमर्श, मानवता, छायावाद।

प्रस्तावना :

महाप्राण निराला आधुनिक हिंदी काव्य के इतिहास में एक समर्थ हस्ताक्षर तथा छायावादी काव्य के आधार स्तंभ हैं। वे एक ऐसे युगांतकारी कवि हैं, जिनकी रचनाओं में तत्कालीन मानव की पीड़ा, सांस्कृतिक पुनरुत्थान, परतंत्रता के प्रति उत्पन्न तीव्र आक्रोश की ध्वनि सुनाई पड़ती है। उनके काव्यों में भी वही स्वर प्रमुख रूप से व्यक्त होता है।

निराला कृत्त 'तुलसीदास' हिंदी काव्य जगत में एक आलोक स्तंभ है। महाप्राण निराला उन चार छायावादी स्तंभों में से एक हैं, जिनके आधार पर छायावाद का विशाल भवन खड़ा है। छायावाद युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है। अर्थात् छायावाद भारत की आत्मिक पहचान का युग है। इसीलिए छायावादी काव्य की मूल चेतना भारतीय संस्कृति है।

विषय का महत्व :

सदियों की दासता के कारण भारतीय जनता आत्म केंद्रित होती हुई रूढ़िग्रस्त हो गई थी। पाश्चात्य शिक्षा के फलस्वरूप भारतीय मनीषी अपनी त्रासदीपूर्ण विघटनमयी स्थिति तथा सांस्कृतिक निस्सारता के प्रति सजग हुई। सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए भारतीय जनगण उद्दीप्त हो उठा। इसके फलस्वरूप छायावादी काव्य की सृष्टि हुई। छायावादी काव्यों में सांस्कृतिक नवजागरण व्यापक भावभूमि पर आधारित है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी छायावाद को केवल अभिव्यक्ति की लाक्षणिक प्रणाली विशेष न मानकर उसमें नूतन सांस्कृतिक मनोभावना तथा स्वतंत्र जीवन दर्शन का पोषण मानते हैं।[1]

कवि एक विशिष्ट प्रतिभा से संपन्न सामाजिक प्राणी होता है। उसके व्यक्तित्व का निर्माण उस समाज की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिवेशों के बीच होता है, जिसका वह अंग होता है। संस्कृति उन गुणों की समुदाय समझी जाती है, जो व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं।

व्यक्तित्व और कृतित्व का गहरा संबंध होता है। छायावादी कवियों के व्यक्तित्व के निर्माण में महान भारतीय संस्कृति का अमिट प्रभाव है, अत: भारतीय संस्कृति के विविध तत्व छायावादी काव्य में अनायास ही परिलक्षित होते हैं।

जनता में आत्मविश्वास का संचार करने का एक उपाय है-अतीत की गरिमा का सजीव चित्रण। परिणामस्वरूप छायावादी कवियों ने संस्कृति के गौरव गान के माध्यम से भारत के गौरवमय अतीत के प्रति देशवासियों का ध्यान आकर्षित करने का पूर्ण प्रयास किया है। छायावादी कवियों ने अतीत के विशेष रूप से महापुरुषों, महाकवियों, राजाओं का गौरव गान किया है- जैसे 'कामायनी' महाकाव्य में जयशंकर प्रसाद ने उस प्राचीन कथानक को आधार बनाया है, जिसके अनुसार मनु को छोड़कर संपूर्ण देव-जाति का प्रलय- जल में विनाश हो जाता है तथा मनु और श्रद्धा के संयोग से मानव सभ्यता का श्रीगणेश होता है। इसी प्रकार महाप्राण निराला ने देवी सरस्वती, तुलसीदास, राम की शक्तिपूजा, जागो फिर एक बार नामक कविताओं में अतीत के

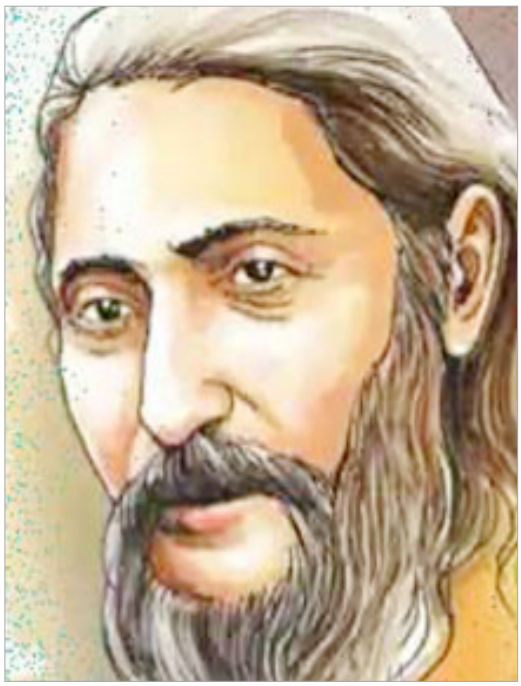

महापुरुषों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि के पुष्प चढ़ाए हैं। उन्होंने तत्कालीन भारत की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण करके देशवासियों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है-

'क्या यह वही देश है -
भीमार्जुन आदि का कीर्तिक्षेत्र।'[2]

भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि दार्शनिक और आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित है। छायावादी कवियों के काव्य में अद्वैतवाद, अध्यात्मवाद, अरविंद दर्शन, भौतिकवाद, क्षणवाद चेतन, चैतन्य और चेतना संबंधित विचार, नियतिवाद, मानवतावाद आदि के साथ-साथ विशिष्ट द्वैतवाद जैसी अनेक दार्शनिक मान्यता पाई जाती हैं। उदाहरण के रूप में प्रसादजी के 'कामायनी', निराला के 'जागो फिर एक बार' आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतीय संस्कृति का मूलभूत तत्व - नारी सम्मान की भावना छायावादी कवियों के काव्य में चरम उत्कर्ष पर है। छायावादी कवियों ने अनंत स्वरूपा नारी की महत्ता स्थापित करके उसे मानव की चिर सहचरी ही नहीं, बल्कि असीम प्रेरणा और अखंड विश्वास का स्रोत सिद्ध किया है। प्रसादजी के शब्दों में-

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पगतल में,
पीयूष स्त्रोत ही बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।' [3]

छायावादी कवियों में से सुमित्रानंदन पंतजी की नारी के प्रति दृष्टि कोमल थी। महादेवीजी की दृष्टि में भी नारी त्याग, बलिदान, साधन, भक्ति भावना आदि की साकार मूर्ति है और अबोध शक्ति का भंडार है। कवि निराला के काव्यों में नारी एक ओर सौंदर्यमयी मनमोहिनी और मनोरंजना है तो दूसरी ओर वह निष्काम प्रेममयी, शांति सुखदायी, पतिपरायणा और विषय-वासना को तुच्छ समझने वाली भी है।

छायावादी काव्यों में प्रेम का उदात्त चित्रण मिलता है। यह प्रेम मूलत: नारी प्रेम, प्रकृति प्रेम, राष्ट्र-प्रेम मानव-प्रेम, ईश-प्रेम आदि के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

प्रकृति मानव की चिर सहचरी है। प्रकृति में ही भारतीय कविता का जन्म हुआ। प्रकृति का मानवीकरण छायावादी काव्य की विशिष्टता है। इसीलिए प्रसादजी ने प्रकृति को निर्जीव न मानकर चेतन और स्पंदनशील माना है। पंतजी को कविता की प्रेरणा प्रकृति से ही मिली। निराला के काव्यों में प्रकृति का सजीव चित्रण उपलब्ध होता है।

विषय का उद्देश्य :

निराला कृत 'तुलसीदास' छायावादी महाकाव्यों में से एक है। अन्य छायावादी कृतियों की भाँति 'तुलसीदास' की मूल-चेतना भारतीय संस्कृति है। तुलसीदास के माध्यम से उन्होंने प्रस्तुत काव्य में भारतीय परंपरा के गौरवशाली मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया है।

'तुलसीदास' प्रबंध काव्य की दृष्टि से अत्यधिक सफल है। 'तुलसीदास' में ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक अर्थ स्पष्ट हैं। उसमें उनकी दुहरी अर्थ व्यंजना है, जिसे पकड़ने में कोई कठिनाई नहीं होती। यहाँ कवि ने तुलसी के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक चेतना को उजागर किया है।

निराला ने 'तुलसीदास' काव्य लिखने की प्रेरणा कविवर तुलसी के निजी जीवन में घटित घटना से प्राप्त किया और रत्नावली से संबंधित लोककथा के आधार पर इस रचना का ताना-बाना बुना है।

उपर्युक्त उल्लेखित विषय के बारे में विश्लेषण करना प्रस्तुत विषय का उद्देश्य है।

अध्ययन की पद्धति एवं विश्लेषण :

प्रस्तुत विषय का अध्ययन की पद्धति विश्लेषणात्मक है। इसी पद्धति से 'तुलसीदास' काव्य की सांस्कृतिक चेतना का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। विश्लेषण करते समय भारतीय संस्कृति से संबंधित विभिन्न ग्रंथों की सहायता ली गई है। प्रस्तुत शोध पत्र के लिए आधुनिक भाषा पद्धति के अंतर्गत सातवें संस्करण की प्रणाली को अपनाया गया है।

विषय का अध्ययन :

'तुलसीदास' के कथानक का प्रारंभ मुगलों के आक्रमण के वर्णन से हुआ है। उनके आक्रमण से हिंदू शासन-सत्ता ही पराजित नहीं हुई, वरन उनकी सभ्यता और संस्कृति को भी भारी धक्का पहुँचा। इस सांस्कृतिक अंधकार का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है -

'भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलोच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे-तमस्तुर्य दिमंडल दिङ्मण्डल,
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,।' [4]

इस प्रकार हिंदू सभ्यता का सूर्य अस्त हो गया और मुस्लिम चंद्रमा का उदय हुआ। इस अंधकारमय परिस्थिति में तुलसीदास का जन्म हुआ। एक दिन तुलसीदास अपने मित्रों के साथ घूमने गए और चित्रकूट की प्रकृति की शोभा देखकर उनका हृदय विशेष रूप से प्रभावित होकर स्फूर्ति से परिपूर्ण हो गया। प्रकृति से उन्हें संदेश मिला जड़ से चेतन की ओर बढ़ने का, रात्रि से दिन की खोज करने का। मन की अत्यंत ऊँची उड़ान से उन्होंने देखा कि भारत की सभ्यता एक जाल में फँसी हुई है, जैसे कि सूर्य की आभा को राहु ने ग्रास लिया। अर्थात देश में छोटे-छोटे संप्रदाय परस्पर संघर्ष में लगे हैं, वर्ण-व्यवस्था विशृंखल हो गई है। इसीलिए ये विरोध से द्वंद्व समर करने के लिए तैयार हो उठे और देश के अंधकार को विनष्ट करने के लिए हृदय में संकल्प जगाने लगे। यथा-

'करना होगा यह तिमिर पार -
देखना सत्य का मिहिर-द्वार-' [5]

उसी समय तुलसीदास को अपनी प्रिय पत्नी के यौवन तरंगों से आलोड़ित नेत्रों के आगे समस्त संसार के अन्य सभी भोग, ऐश्वर्य, रूप तुच्छ प्रतीत हुए।

एक दिन जब तुलसीदास बाजार चले गए, तब रत्नावली का भाई रत्नावली को मायके ले गया।

घर आने पर तुलसी को जब उनकी पत्नी नहीं मिली तो वे भी ससुराल चल पड़े। यद्यपि ससुराल में बड़ी खातिर हुई फिर भी वहाँ के कुछ लोग तुलसीदास के संबंध में कानाफूसी करने लगे। भाभी के व्यंग्य से रत्नावली जल उठी और उसे लगा कि पति के मन में बैठा हुआ चोर उसे निरावरण करना चाहता है। रात में एकांत होने पर तुलसीदास ने अपनी पत्नी का एक नवीन रूप देखा है। रत्नावली योगिनी की तरह उठकर खड़ी हो गई और लक्ष्मी की तरह बोली-

'धिक! धाए तुम अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कूल धर्म धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए!' [6]

पत्नी रत्नावली के इन शब्दों को सुनकर तुलसीदास के हृदय में प्रबल वेग से ज्ञान के संस्कार जागृत हो उठे और तत्क्षण ही उनकी पत्नी के प्रति कामुक आसक्ति भस्म-सी हो गई। तुलसी ने आश्चर्य से देखा कि जैसे वह पत्नी नहीं, बल्कि नीलवसना स्वयं शारदा देवी ही समक्ष उपस्थित हैं, जो सृष्टि का संदेश सुना रही हैं। इस प्रकार तुलसीदास रत्नावली को समझाकर घर से बाहर आए। हृदय में वही परिचित मूर्ति थी और वह अपना क्षुद्र रूप छोड़कर विश्व का आश्रय बन गई। तुलसीदास की यह विजय भारतीय संस्कृति की विजय है। यही है तुलसीदास नामक काव्य कृति का संक्षिप्त कथानक ।

'तुलसीदास' के कथानक के संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा ने यह कहा कि - ''तुलसीदास में मूल चित्र गोस्वामी तुलसीदास के अंतर्द्वंद्व का है।'' [7]

वास्तव में 'तुलसीदास' के कथानक का ताना-बाना 'तुलसी' और 'तुलसीदास' से संबंधित कथा के आधार पर बुना गया है। इसके साथ ही इस काव्य का मूल स्रोत महाकवि तुलसीदास का मध्यकालीन भारतीय संस्कृति के पतन का उद्धार करने के लिए बेचैन होना भी। महाप्राण निराला भी अंग्रेजी सभ्यता-संस्कृति के चंगुल से महान भारतीय संस्कृति की मुक्ति के लिए बेचैन थे।

सांस्कृतिक चेतना का संबंध राष्ट्र के सांस्कृतिक जीवन से होता है। संस्कृति राष्ट्र के जीवन का प्राण तत्व होती है। निराला कृत 'तुलसीदास' को छायावादी काव्य-कला सांस्कृतिक चेतना का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत करने का प्रयास करेंगे -

(अ) नायक तुलसीदास सांस्कृतिक - पुनरुत्थान के प्रतीक
(आ) दार्शनिकता और आध्यात्मिकता
(इ) नारी : उद्बोधिका शक्ति
(ई) राष्ट्रीय चेतना
(उ) प्रेम
(ऊ) सौंदर्य
(ऋ) प्रकृति
(ए) पारिवारिक और सामाजिक रीति-रिवाज
(ऐ) शोषकों के प्रति आक्रोश और शोषितों के प्रति सहानुभूति
(ओ) लोक-संस्कृति
(औ) सांस्कृतिक भाषा शैली

(अ) नायक तुलसीदास - सांस्कृतिक पुनरुत्थान के प्रतीक :

'तुलसीदास' काव्य के नायक तुलसीदास सांस्कृतिक पुनरुत्थान का प्रतीक हैं। सर्वप्रथम वे काव्य तथा शास्त्र अध्ययन करने वाले व्यक्ति के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे अच्छे संस्कार वाले व्यक्ति हैं। विद्याध्ययन के पश्चात वस्तु जीवन में उतरते हैं। भ्रमण के लिए चित्रकूट की ओर जाते हैं। चित्रकूट पहुँचने पर उनके सम्मुख रहस्य स्पष्ट हो जाता है। वे यह जान जाते हैं कि मुसलमानों के प्रभाव से भारतीय संस्कृति मलिन है। प्रकृति तुलसी के जातीय संस्कारों को जगाती है। वे देश की आजादी की कल्पना करते हैं। कवि का मन निरंतर ऊँचाई की ओर बढ़ता चला जाता है और सत्य के द्वार को देखना चाहते हैं-

'करना होगा यह तिमिर पर
देखना सत्य का मिहिर-द्वार-'[8]

तुलसीदास के संकल्प में रत्नावली का सौंदर्य बाधक बन जाता है। फलस्वरूप उनका मन ऊँचाई से नीचे उतर आता है ।

कवि तुलसीदास के जीवन में दूसरा मोड़ उस समय आता है, जब वे बिन बुलाए पत्नी के पीछे-पीछे ससुराल पहुँच जाते हैं। रत्नावली के धिक्कार से कवि की जड़ता टूट जाती है और उनका राष्ट्र-प्रेम पुन: जाग उठता है। वे यह सोचते हैं कि सुबह होते ही अपने संकल्प को पूरा करने में लग जाना चाहिए-

'जागो जागो आया प्रभात,
बीती वह बीती अंध रात,'[9]

इस प्रकार निराला ने 'तुलसीदास' में कवि तुलसी का चित्रण भारतीय संस्कृति के रक्षक के रूप में किया है। बाबुराम त्रिपाठी के अनुसार **जिस प्रकार तुलसीदास उसके जीर्णोद्धार के लिए छटपटा रहे थे, उसी समय इसमें निराला भी अपने देश की आजादी के व्याकुल दिखाई देते हैं।**[10] जिस प्रकार तुलसीदास का युग दासता तथा पराधीनता का युग था, उसी प्रकार निराला का युग भी दासता और पराधीनता का युग था। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के माध्यम से जहाँ एक ओर आक्रोश व्यक्त किया, वहीं दूसरी ओर अपने चरित्र के माध्यम से विकल्प प्रस्तुत करते का भी सफल प्रयास किया है। इसीलिए निराला ने प्रस्तुत 'तुलसीदास' शीर्षक काव्य में तुलसीदास को नायक के रूप में लेकर तुलसीकालीन भारतीय संस्कृति को चित्रित करके युग की सामाजिक, आर्थिक दुर्व्यवस्था को अंकित करने का प्रयास किया है।

(आ) दार्शनिकता और आध्यात्मिकता :

प्राचीनकाल से भारतभूमि ऋषि-मुनियों और दार्शनिकों की भूमि रही है। साहित्य में 'दर्शन' का प्रयोग जीवन और जगत के संदर्भ में किया जाता है। जीवन और जगत से संबंधित 'सत्य' को युक्ति-युक्तता से दिखाने वाला ज्ञान दर्शन कहलाता है। अद्वैत दर्शन को विद्वानों ने आधुनिक हिंदी काव्य का मेरूदंड कहा है। निराला के तुलसीदास काव्य में भी इस अद्वैतवादी दर्शन की झलक मिलती है। नायक तुलसीदास ब्रह्म से मिलने में बाधाग्रस्त होते हैं, क्योंकि उनकी आत्मा पर माया का प्रभाव है। माया के कारण प्रकृति का स्वरूप उन्हें कुछ चेतन-अचेतन जैसा लगता है।

निराला, अरविंद-दर्शन से प्रभावित थे। तुलसीदास में अरविंद-दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। विशेष रूप से नायक तुलसीदास के संदर्भ में मन की ऊर्ध्वगति तथा अधोगति का बड़ा ही आकर्षक चित्रण हुआ है। चित्रकूट की प्राकृतिक छटा का उपभोग करते-करते तुलसी के मन का ऊर्ध्वगमन होता है। उनके ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं। वे राम के अहल्योद्धार की तरह भारतीय संस्कृति का उद्धार करने का संकल्प लेते हैं। किंतु पत्नी का सौंदर्य उनके मन का बाधक बन जाता है। परंतु जब पत्नी की फटकार उनके कानों में पड़ती है तो माया का आवरण फट जाता है और उनके संस्कार जाग उठते हैं-

'जागा, जागा, संस्कार प्रबल,
रे गया काम तत्क्षण वह जल'[11]

(इ) नारी : उद्‌बोधिका शक्ति :

किसी भी देश संस्कृति की स्थिति उसमें निहित नारी की सामाजिक स्थिति से पता चलता है। भारतीय संस्कृति के आधार स्रोत वेद हैं और वेदों में नारी का उदात्त रूप देखने को मिलता है। भारतीय संस्कृति में नारी को शक्ति का प्रतीक माना गया है। एक ओर वह पुरुष की सहचरी है तो दूसरी ओर 'माँ'।

महाप्राण निराला नारी को अत्यंत सम्मान की दृष्टि से देखते थे। तुलसीदास में निराला ने नारी के उदात्त रूपों का चित्र अंकित किया है। रत्नावली हमारे सामने दो रूपों में आती है। उसका पहला रूप है भारतीय गृहिणी का। रत्नावली इस रूप में एक पतिपरायणा नारी के रूप में चित्रित है। वह अपने नाम के अनुरूप सुंदर है और हमेशा पति को प्रसन्न रखती है। उसके चरित्र का विश्लेषण करने हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने इस प्रकार कहा है - **''अज्ञान को अंधकार में सत्य की यष्टि की तरह वह प्रिय को पार ले जाने वाली है। श्रद्धा की प्रतिमा की तरह वह माया के घर में प्रिय की निद्रा की**

सीमाएँ बाँधे हुए है।'' [12]

रत्नावली का दूसरा रूप प्रेरक और असाधारण देवी के रूप में प्रतिष्ठित है। आदिकाल से ही भारतीय नारी पति के लिए प्रेरणादायिनी रही है। निराला ने तुलसीदास में इसी भारतीय संस्कृति से प्रभावित पति के लिए आत्मदर्शन की प्रेरणादायिनी नारी का रूप खींचा है। उनकी प्रेरणा से ही तुलसी में अतीत संस्कार जाग उठता है। नारी के इस रूप पर उन्होंने सरस्वती और भारती का रूप आरोप किया है।

(ई) राष्ट्रीय चेतना :

कवि निराला की राष्ट्रीय चेतना अन्य छायावादी कवियों की तरह न होकर परोक्ष है। 'तुलसीदास' काव्य में कवि ने भारत की दुरवस्था का जो चित्र खींचा है, उससे उनकी राष्ट्रीय चेतना मुखरित होती है–

'भारत के नभ का प्रभापूर्ण
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे- तमस्तुर्य दिङ्गण्डल
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान' [13]

प्रस्तुत काव्य में निराला ने जिस सांस्कृतिक पतन का चित्र खींचा है वह तुलसी के युग का सत्य है। नायक तुलसी के मन में यह विचार उत्पन्न होता है कि विदेशियों का प्रभाव निजी कमजोरी का कारण है। इस तरह का विचार आते ही तुलसी में राष्ट्रीयता की भावना जमती है और वे देश की आजादी के लिए संकल्पबद्ध होते हैं।

निराला ने इसीलिए अपने राष्ट्रप्रेम को व्यक्त करने के लिए तुलसी जैसे समन्वयकारी कवि को अपनी कविता का नायक चुना, क्योंकि वे जानते थे कि उनके और कवि तुलसीदास के युग की परिस्थितियाँ समानधर्मी थीं।

(उ) प्रेम :

प्रेम एक शाश्वत वृत्ति है। प्रेम भाव कल्याणकारी होता है । अत: इसे संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पक्ष माना जाता है। 'तुलसीदास' काव्य में उन्होंने प्रेम के विविध रूपों का चित्रण किया है, जिसमें नारी प्रेम प्रमुख है। उन्होंने नारी के प्रति प्रणय और श्रद्धा समन्वित दृष्टिकोण व्यक्त किया है।

निराला ने तुलसीदास में प्रकृति-प्रेम का व्यापक चित्रण किया है। उन्होंने प्रकृति के स्वतंत्र अस्तित्व को प्रतिपादित करते हुए प्रकृति के माध्यम से नायक को उद्‌बोधित करवाया है यथा–

'तुम रहे छोड़ गृह मेरे कवि,
देखो यह धूलि धूसरित छवि
छाया इस पर केवल जड़ रवि खर दहता।' [14]

तुलसीदास काव्य में कवि ने भारत के सांस्कृतिक पतन का चित्र अंकित करके राष्ट्र प्रेम का परिचय दिया है।

मानव-प्रेम भारतीय संस्कृति का मूलभूत तत्व है। तुलसीदास काव्य में भी निराला ने दीन-हीन के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त किया है।

(ऊ) सौंदर्य :

सौंदर्य-बोध और उसकी खोज भारतीय सांस्कृतिक जीवन की मूलभूत विशेषता है। निराला एक सांस्कृतिक चेतना के कवि हैं। उनका सौंदर्यबोध उनके हृदय में स्थित व्यापक प्रेम भावना का परिणाम है। उन्होंने अपने तुलसीदास काव्य में प्रकृति-सौंदर्यबोध का चित्रण किया है।

मानवीय सौंदर्य के दो आधार हैं- स्त्री और पुरुष। तुलसीदास काव्य में उन्होंने इन दोनों को अपनी अभिव्यक्ति की माध्यम बनाया है। उन्होंने तुलसीदास के बाह्य और आंतरिक सौंदर्य के साथ-साथ रत्नावली के दिव्य सौंदर्य का भी चित्रण किया है। यथा–

'देखा शारदा नील-वसना
है सम्मुख स्वयं सृष्टि रशना' [15]

(ऋ) प्रकृति :

भारतीय संस्कृति में प्रकृति का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। निराला ने तुलसीदास में प्रकृति का उदात्त चित्रण किया है। जब तुलसीदास अपने मित्रों के साथ चित्रकूट का पर्यटन करने जाते हैं, तब वहाँ उनको

प्रकृतिगत आह्लाद का आभास होता है। प्रकृति के कण-कण उन्हें नूतन संदेश देते हैं।

(ए) पारिवारिक एवं सामाजिक रीति-रिवाज :

परिवार सामाजिक संगठन की एक महत्वपूर्ण इकाई है। निराला ने 'तुलसीदास' काव्य में तुलसीदास के पारिवारिक जीवन का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह भारतीय समाज के सामान्य परिवार के जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है। रत्नावली के रूप में निराला ने पति-प्रेम में अनुरक्त श्रद्धा और त्याग की मूर्ति का चित्रण किया है।

प्रत्येक समाज में सामाजिक जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए कुछ रीति-रिवाजों की व्यवस्थाएँ हैं। इन व्यवस्थाओं में जब तक युगांतरूप परिवर्तनशीलता एवं गतिशीलता के गुण विद्यामान रहते हैं, तब तक ये समाज के लिए उपादेय रहते हैं, जब इनमें रूढ़िवादी जड़ता आ जाती है तो वह समाज के पतन का कारण बनते हैं। कवि निराला ने तुलसीदास काव्य में विविध वर्णों के पतित जीवन का जो चित्रण किया है, वह कवि तुलसी के समय में जैसा था, वैसा ही निराला के युग में था। उनमें अंतर केवल मुगल और अंग्रेज शासन का था। जीर्ण-शीर्ण व्यवस्था को सांस्कृतिक पतन और विघटन का मुख्य कारण माना है।

(ऐ) शोषकों के प्रति आक्रोश और शोषितों के प्रति सहानुभूति :

शोषकों के प्रति आक्रोश और शोषितों के प्रति सहानुभूति भारतीय जीवन तथा संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता है। छायावादी कवि निराला मूलत: मानवतावादी रहे हैं। इसीलिए उनके काव्य में पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति व्यंग्य और उनके शोषण के प्रति तिरस्कार भाव व्यक्त किया है। तुलसीदास काव्य में कवि मानव के सम्मुख उस राजा का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसने छल-बल से राजा बनकर सभी भौतिक सुख साधना को प्राप्त किया।

(ओ) लोक संस्कृति :

साहित्य को लोक संस्कृति प्रभावित करती है। भारतीय संस्कृति पर विभिन्न लोक संस्कृतियों का प्रभाव पड़ा है।

निराला के काव्यों में लोक संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट है। तुलसीदास काव्य में लोक संस्कृति संबंधी चेतना प्रखर रूप से अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने इस काव्य की कथा-वस्तु का चुनाव लोक प्रचलित जनश्रुतियों के आधार पर किया है। तुलसी और रत्नावली का प्रसंग ऐतिहासिक न होते हुए भी भारतवर्ष में उसे ग्रहण कर लिया गया है।

औ) सांस्कृतिक भाषा-शैली :

निराला के काव्यों की भाषा-शैली सांस्कृतिक तत्वों से सन्निविष्ट है। तुलसीदास काव्य में सांस्कृतिक संवेदन के निर्माण में भाषागत सभी सांस्कृतिक उपकरणों का प्रयोग किया है। उन्होंने पंजाब, बुंदेलखंड, कालिंजार, राजापुर, चित्रकूट आदि के अतिरिक्त निर्वाण, मुक्त, वर्णाश्रम आदि संस्कृतिक प्रत्ययों का भी प्रयोग किया है। निराला ने तुलसीदास काव्य में प्रतीक-योजना भी की है। तुलसीदास शब्द प्रतीकात्मक है। एक ओर वे 'रामचरितमानस' के रचयिता कविवर तुलसीदास हैं तो दूसरी ओर वे आध्यात्मिक साधना पथ के पथिक भी। तुलसी के पौधे को भारतीय संस्कृति में पवित्र माना जाता है। इसीलिए तुलसीदास का प्रतीकात्मक अर्थ - पवित्रता की सेवा या साधना करने वाला लिया जा सकता है। इसके अलावा 'विहंग' मन का प्रतीक बनकर आया है-

'गाओ विहंग! सद्ध्वनित गान'[14]

इस प्रकार 'तुलसीदास' काव्य की भाषा सांस्कृतिक शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों से युक्त है।

उपलब्धियाँ :

- तुलसीदास एक प्रबंध काव्य है।
- तुलसीदास का कथानक जनमानस में प्रचलित कथाओं के आधार पर है।
- तुलसीदास में भारत की सांस्कृतिक पतन का चित्र चित्रित किया है।
- तुलसीदास में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना का स्वर प्रमुख है।
- तुलसीदास में नारी को उद्बोधिका शक्ति के रूप

चित्रित किया गया है।

- तुलसीदास को कवि ने भारतीय संसकृति के पुनरुत्थान का प्रतीक माना है।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला कृत 'तुलसीदास' में सांस्कृतिक चेतना प्रखर है। 'तुलसीदास' में निराला ने एक ओर मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का पतन और उसके उद्धार के लिए तुलसीदास को बेचैन होना दिखाया है तो दूसरी ओर उनके इस वर्णन में उनके युग के परतंत्र भारत का पतन प्रतिबिंबित हुआ है।

जिस प्रकार तुलसीदास अपने समय में पतनोन्मुख भारतीय संस्कृति के उद्धार के लिए छटपटा रहे थे, उसी प्रकार कविवर निराला भी देश की स्वाधीनता के लिए व्याकुल हो रहे थे। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला कृत 'तुलसीदास' में सांस्कृतिक चेतना प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुई है। इसमें कवि की सांस्कृतिक चेतना कहीं राष्ट्रीयता का रूप धारण करती है तो कहीं दमन और शोषण के विरुद्ध प्रतिवाद करती है और कहीं व्यापक मूल्य की स्थापना करती है। ❑

संदर्भ ग्रंथ-सूची :

1. सिंह, डॉ. विजयपाल-छायावाद के प्रतिनिधि कवि पृ.1
2. निराला-अनामिका पृ.51
3. प्रसाद, जयशंकर - कामायनी पृ.24
4. निराला-तुलसीदास पृ.9
5. निराला - तुलसीदास पृ.20
6. निराला - तुलसीदास पृ.37
7. शर्मा, डॉ. रामविलास - निराला पृ.102
8. निराला - तुलसीदास पृ.40
9. निराला - तुलसीदास पृ.20
10. त्रिपाठी,बाबुराम - निराला काव्य : पुनर्मूल्यांकन पृ.10
11. निराला - तुलसीदास पृ.37
12. शर्मा, डॉ. रामविलास - निराला पृ.106
13. निराला - तुलसीदास पृ.9
14. निराला -तुलसीदास पृ.14

प्राथमिक स्त्रोत :

1. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला-तुलसीदास, राजकमल प्रकाशन : 2009

द्वितीय स्त्रोत :

1. अग्रवाल, डॉ. वासुदेव शरण - कला और संस्कृति, साहित्य भवन, संस्करण-1958
2. अवस्थी, डॉ. विश्वम्भर दयाल - छायावादोत्तर हिंदी प्रबंध-काव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, सं : 1970
3. गोयल, डॉ. संतोष-निराला का काव्य प्र. लक्ष्मीनारायण अग्रवाल सं : 1972
4. डॉ. नगेन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, सं : 1988
5. बाजपेयी, डॉ. नन्द दुलारे-हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, लोक भारती प्रकाशन, सं: 1963
6. बाजपेयी, डॉ. नन्द दुलारे-कवि निराला, वाणी वितान प्रकाशन, सं : 1965
7. सिंह, डॉ. बच्चन - क्रांतिकारी कवि निराला, एन, के. सिंह एंड संस, सं : 1965
8. सिंह, डॉ. प्रमोद - छायावादी कवियों का सांस्कृतिक दृष्टिकोण, लोकभारती प्रकाशन सं : 1973

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव के बरगीतों में राम-वंदना

डॉ निबेदिता नाथ

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
लंका महाविद्यालय, लंका
होजाई, असम-782446
मो. 7002999513
ई-मेल : nnathbaruah@gmail.com

शोध सार :

असमिया जाति, समाज-संस्कृति, भाषा, साहित्य के प्राण प्रतिष्ठापक हैं महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव के बारे में जितना लिखा जाए उतना कम ही है। वे क्या नहीं थे- धर्म प्रचारक, साहित्यकार, समाज सुधारक आदि जितने भी विशेषण दिए जाए, कम ही हैं। उन्होंने असमिया भाषा साहित्य को समृद्ध ही नहीं बल्कि एक नई पहचान भी दी। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव व माधवदेव के बरगीत दो मूलत: ईश्वरोपासना के गीत कहलाते हैं।

बीज शब्द :

बरगीत, राम, असमिया, गुरुजन, धर्म आदि।

प्रस्तावना :

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव ने असमिया समाज को नया मार्ग दिखाया। उन्होंने न केवल असमिया जाति का उद्धार किया, बल्कि समाज में फैली कुरीतियों को भी दूर किया। उनके द्वारा लिखे गए बरगीतों में राम और कृष्ण की वंदना की गई हैं। ''चरित पुथि के अनुसार शंकरदेव ने लगभग 240 बरगीतों की रचना की, किंतु उनमें अधिकांश आग लगने से नष्ट हो गए। मात्र 34 बरगीत ही बचे हैं। परवर्ती समय में माधवदेव ने गुरु की आज्ञा मानकर 157 बरगीतों की रचना की और शंकरदेव के 34 बरगीतों से माधवदेव के बरगीत मिलाकर कुल 191 बरगीत वर्तमान में प्रचलित हैं।''[1] डिंबेश्वर नेओग के अनुसार शंकरदेव के बरगीतों की संख्या 34 हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार 35 हैं। महेश्वर नेओग के मतानुसार माधवदेव के बरगीतों की संख्या 157 हैं। महापुरुष शंकरदेव और माधवदेव के आध्यात्मिक गीत समूहों को बरगीत कहा जाता है। दोनों महापुरुषों ने अपने गीतों को बरगीत नहीं कहा। ''महेश्वर नेओग के अनुसार बरगीत शब्द का प्रथम उल्लेख 'कथागुरु चरित' में

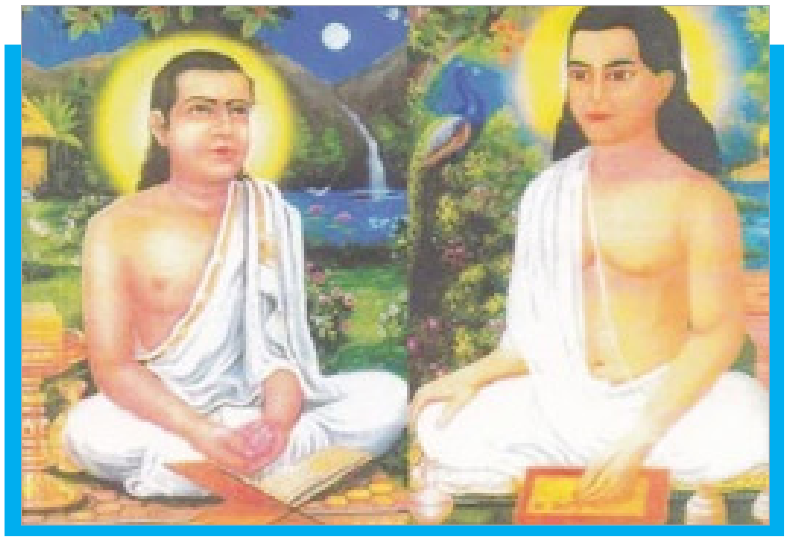

पाया जाता है। वाणीकांत काकति ने इस श्रेणी के गीत समूहों को नोबल नंबर्स (Noble numbers), कालीराम मेधी ने ग्रेट सांग (great song) और देवेन्द्र नाथ बेजबरुवा ने होली सांग (holy song) कहा।''[2] 'बारकुरी बरगीत तेरकुरी फकरा'- यह जनसमाज में प्रचलित हैं। राग, सुर, वाद्ययंत्र और चौदह प्रसंग से निर्धारित सीमाबद्धता से बरगीत प्रस्तुत किए जाते हैं।

अध्ययन का महत्व :

असमिया समाज के लिए श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव प्राणबिंदु हैं। उनके द्वारा लिखे गए बरगीत का अत्यंत महत्व है। उनके बरगीतो में राम और कृष्ण का वर्णन मिलता है। शंकरदेव और माधवदेव ने भी भक्तिकाल में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसी कारण से इस अध्ययन का महत्व है।

अध्ययन का शीर्षक :

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव के बरगीतों में राम वंदना।

अध्ययन का उद्देश्य :

प्रस्तुत अध्ययन के कई उद्देश्य हैं। असमिया साहित्य की चर्चा करना, महापुरुष शंकरदेव और माधवदेव द्वारा रचित बरगीतों की चर्चा करना तथा दोनों गुरुजनों के साहित्य को और आगे बढ़ाना।

अध्ययन का सीमांकन :

प्रस्तुत अध्ययन में दोनों गुरुजनों के राम को लेकर लिखे गए बरगीतों की ही चर्चा की गई है। उनके कृष्ण संबंधित बरगीतों की चर्चा यहाँ नहीं हुई है।

अध्ययन में व्यवहृत पद्धति एवं उपाय :

प्रस्तुत अध्ययन की पद्धति विश्लेषणात्मक है। पत्र MLA पर आधारित है। इस अध्ययन में शंकरदेव और माधवदेव पर लिखित कई लेखों की सहायता ली गई है।

विश्लेषण :

बरगीतों की भाषा मुख्य रूप से ब्रजावली थी। इन गीतों में आंचलिकता का बहुत प्रभाव पड़ा।

डॉ. महेश्वर नेओग ने बरगीत की विशेषताएँ निम्नलिखित बताई हैं-

''1. बरगीत की भाषा असमिया और मैथिली भाषा के सम्मिश्रण से बनी है। ब्रजावली भाषा में इन गीत समूहों की रचना हुई है।

2. विषय-वस्तु संरक्षणशील या संयम।

3. बरगीत समूहों का सुर उद्देश्य और परिवेश के अनुसार शंकरदेव और माधवदेव ने संयोजन किया।

4. चौदह प्रसंग की परिक्रमा में बरगीत का स्थान, जैसे प्रात: प्रसंग के प्रारंभ में बरगीत तूती, उसके बाद भटिमा, कीर्तन आदि गाया जाता है।

5. बरगीत की सीमाबद्धता पवित्रता है। सत्र और पंथ भेद के कारण रामचरण ठाकुर, गोपाल आता, दैत्यारी ठाकुर, नारायण ठाकुर आता, पुरुषोत्तम ठाकुर आदि के गीतों को भी बरगीत माना जाता है। किंतु दूसरे सत्र या पंथ इसको नहीं मानते।''[3]

सत्येन्द्र नाथ शर्मा ने बरगीत के छह विषय उल्लेख किए हैं। 'चरित पुथि' में इन छह विषय को ही बरगीत का 'छठि रस' कहा गया है। वह विषय हैं-

1. परम पुरुष भगवान अवतार लीला
2. यशोदा और गोपियों का विरह
3. परमार्थ
4. संसार के प्रति विरक्ति
5. कृष्ण की शौर्य क्रिया
6. कृष्ण का चातुर्य।

लीला विषयक बरगीत समूहों में - जागन, चलन, खेलन, नृत्य आदि विषयों को पाया जाता है। बरगीत की संख्या, विषय और भाषा के क्षेत्र में शंकरदेव और माधवदेव के बरगीत में साधारण अंतर देखने को मिलता है। दोनों गुरुजनों के बरगीत समूहों में मुख्यत: श्रीकृष्ण लीला का वर्णन होते हुए भी कुछ बरगीतों में श्रीराम या रामायण का उल्लेख देखने को मिलता है, किंतु यह संख्या में कम है। शंकरदेव के प्रथम बरगीत में राम की वंदना है, जहाँ उन्होंने श्रीराम के चरण में अपने आप को समर्पित किया। साथ ही उल्लेख किया- राम बीने नाई गति।

राग धनश्री में रचित बरगीत इस तरह है-

मन मेरी राम चरणहि लागु।
तई देखना अंतक आगु।

पद :

मन आयु क्षणे क्षणे टूटे।
देखु प्राण कोन दिने छूटे॥
मन काल अजगरे गिले।
जान तिलेके मरण मिले॥
मन निश्चय पतन काया।
तइ राम भज तेजि माया॥
रे मन इसब विषय धांधा।
केने देखि नेदेखस आंधा॥
मन सुखे पार कैछे निंद।
तइ चेतिया चिन्त गोविंद॥
मन जानिए शंकरे कहे।
देखा राम बिने गति नहे॥

इस बरगीत में गुरुजन ने अपना मन और चेतना राम के चरण में समर्पित किया। गुरुजन के अनुसार इस पार्थिव चेतना, दुख-यंत्रणा से राम ही मुक्ति दिला सकते हैं। ठीक उसी तरह शंकरदेव द्वारा रचित 'शुन शुन रे सुर' बरगीत में राम के बारे में कहा गया है। यह बरगीत आशोवरी राग में है। राम की लंका यात्रा का अनुपम वर्णन देखने को मिलता है।

शुन शुन रे सुर बैरी प्रमाना निशाचर नाश निदाना।
राम नाम यम समरक साजि समदले कयलि पयाना।

पद :

ठाट प्रकट पटु कोटि कोटि कपि
गिरि गरगर पद घावे।
बारिधि तीर तरि। करे गुरु तर गिरि
धरि धरि समरक धावे।
हाट घाट बहु बात बियापि
चौगरे बेरहली लंका।
गुरु घन घन घोष घरिशन गरज्जन
श्रमने जन्मय शंका॥
धीर बीर शूर शेखर राघव
रावण तुव परी झांपे
सुर नर किन्नर फंधर थरथर
महीधर तरषि प्रकम्पे॥
अंधा मुन्द्ध डैश कंध पाप बुध
जानकी शीरत चराई।
रघुपति पदभार। धर रजनी चर
शंकरे कहतू उपाय॥

बरगीत में निहित उपदेश वाणी ने सर्वसाधारण को मुक्ति का पथ दिखाया। मुक्ति है परम सुख। मनुष्य के सभी कर्मों का उद्देश्य है सुख प्राप्ति। मुक्ति में मनुष्य को सर्वोत्तम सुख लाभ होता है। मुक्ति किस तरह प्राप्त किया जा सकता है, इस बरगीत में बताया गया है-

बोलहु राम नामेसे मुकुति निदाना।
भव बैतरणी तरनी सुख सरणी।
नाही नाही नाम समाना।।
बचने बुली राम। धर्म अर्थ काम
मुकुति सुख सूखे पाय।

राम नाम ले। राम नाम ही मुक्ति का पथ है। भव अर्थात संसार पापियों की आत्मा मुक्ति के लिए रुदन करने वाली बैतरणी नदी के समान है। राम नाम है इस नदी को पार करने की एकमात्र नाव। राम नाम के द्वारा भिन्न स्तर (धर्म, अर्थ, काम) सुख लाभ करने के पश्चात परम सुख 'मुक्ति सुख' लाभ कर सकते हैं।

राम वंदना को लेकर शंकरदेव का अन्य एक बरगीत है- ''**पामरु मन राम चरने चित्त देहु।**'' राग धनश्री और ताल पोरिताल में रचित इस बरगीत के जरिए शंकरदेव ने राम नाम को जीवन का संबल बनाने का उपदेश दिया।

''पामरु मन राम चरने चित्त देहु।
अथिर जीवन राम माधव केरी नाम,
मरनक संबल लेहु।।''

गुरुजन के अनुसार इस भव संसार तथा वैषयिक माया-मोह से मुक्ति का उपाय राम नाम में ही निहित है।

राग धनश्री और पोरिताल में रचित शंकरदेव का और एक बरगीत है-''**राम मेरे हृदय पंकजे रैसे।**'' इस बरगीत में गुरुजन ने राम को परम सुहृद, जगतारक, अभयदाता, परमनिधि कहा है। गुरुजन का मत है कि-

''जग तारक जाकेरी नाम।
देखो सो पूनू आपुन ठाम।।
राम सुहृद सोदर माता।
जान रामेसे अभयदाता।।
राम भक्त परम निधि।
राम बिने नाहि आर सिद्धि।।
राम इह परलोक गति।
ताहे देखो नाही मंदमति।।''

राम नाम पाप से उद्धार करता है। राम नाम ही है मुक्ति का पथ। इसी कारण महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने अन्य एक बरगीत में लिखा है कि-

'श्रीराम, मोई अति पापी पामरु, तेरि भावना नाइ।
जनम चिंतामनि काहेगयो जैसे कासक लाई।।'

राग सुहाई, ताल पोरी में रचित बरगीत में राम नाम को अपार्थिव सुख का मूल माना हैं।

'दिवसे विषये बियाकूल,
निशि शयने गोवाई।
मने धन खुजि बिमोहित,
तेरी आरति नापाई।
हृदय कमले हरि बैठह,
चिंटू चरण ना तेरी।
करल गरल जस भोजन
हामु अमिया हेरि।।
परम मूरुख हामु माधव।
एको बकती ना जाना।
दास दास बुली तारहु एहु शंकरे भाना।।'

शंकरदेव और माधवदेव -दोनों गुरुओं के बरगीतों में आशोवारी, धनश्री, सुहाई, वसंत, श्री, केदार, गौरी, नात मल्लार, माहुर, तूर वसंत, कल्याण, भूपालि और अहिर राग का व्यवहार किया गया है। किस समय कौन-सा बरगीत गाना है, उसका भी नियम है। जैसे अहिर , कल्याण आदि राग सवेरे-सवेरे गाए जाते हैं। गौरी, धनश्री, श्री, माहुर आदि राग दोपहर के समय गाए जाते हैं। संध्या के समय गाने वाले राग हैं आशोवारी, बेलोवार आदि। रात के प्रथम भाग में सुहाई, मल्लार आदि राग गाते हैं। रात के द्वितीय भाग मे भूपाली, कामोद आदि राग गाते हैं। आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व से अधिक काल से सत्र समूहों में ये रीति-नीति कठोरता के साथ पालन करते आ रहे हैं। बरगीत के भाव भक्ति के बीच भक्तगण अपने जीवन में एक संस्कृत रूप लाभ करने में सक्षम हैं।

उधर माधवदेव रचित रामायण की कथा का अवतारणा करने वाले बहुत सारे बरगीत हैं। इसमें दो उदाहरण हैं- देखो रे नयन भरि लोई और जय जय राम राघव रघुकुल पंकज। इसकी प्रथम उल्लेखित बरगीत में बेलोवार राग प्रयोग किया गया है। राम और कृष्ण का स्थान संपर्याय कहकर माधवदेव ने नव वैष्णव धर्म का आदर्श राम कृष्ण की अभिन्नता का प्रचार करना चाहा था। द्वितीय उल्लेखित बरगीत है राग सिंधुरा में। इस बरगीत में राम अभिषेक का उल्लासपूर्ण वर्णन परिलक्षित होता है-

जय जय राघव रघुकुल पंकज
दिनकर राम मुरारी।
योपद कमल सुरासुर सेवत
सकल भुवन अधिकारी॥

पद–

बालि घालि पालिसग्रीव कपि
बारिधि बाँधल सेतु।
निशाचर नाशन दशानन घाटन
जग जन मंगल हेतु॥
जानकी लक्ष्मण सुग्रीव विभीषण
मारुति सब सैन्य साथे।
पुष्पक जानही आशी आपुन पूरी
भयो नरपति रघुनाथे॥
शिरे शशिमण्डल छत्र सुनिर्मल
श्वेत चामर दोहो दोले।
मिलल महोत्सव परम कोलाहल
सब लोई मंगल रोले।
शंख मृदंग सुरुज ध्वनि बाजत
दुमू दुमू दुंदुभि बोले।
ब्रह्मा पुरंदर हर मुनि किन्नर
चारण मिलल रंगे।
रतन सिंहासने बसि रघु नंदन
राजत जानकी संगे।
निता निरंजन जगजन कारन
कामरूपे अवतारा।
रघुपति चरण कमल भृंग माधव
कहगति राम हामारा॥

ठीक उसी तरह माधवदेव ने 'देखोरे नयन भरि लोई ' बरगीत में भगवान श्री रामचंद्र का वर्णन किया। रावण वध, सीता उद्धार, अयोध्या वापसी के बाद रत्न सिंहासन में विराजमान होकर उन्होंने राजकार्य संभाला–

''रतन सिंहासने राजतू राम।
तनू सुकुमार दुर्बादल श्याम॥
रतन भूषित अंग उजोरे।
पूर्णचंद्रज्योति छत्र उवरे॥
पाश लास श्वेत चामर डोले
मिलिल महोत्सव जय राम बोले॥''

माधवदेव के अनुसार भी मनुष्य की मुक्ति का उपाय हैं राम। वैषयिक माया–मोह मानवीय जीवन को अंधा बना देते हैं। इसी कारण गुरुजन ने राग माहुर और ताल पोरिताल में रचित अन्य एक बरगीत के जरिए कहा–

''हमारू रामचरने मन लागू।
मायामय सयल दुनियाई जानि
भरम तेजि जागु।।
धन जन जीवन यौवन जाया
काया ऐसव धांधा।
जैचन बिजूरि उजूरि मिलावट
ताहे नाहि देखा आंधा॥''

इसलिए गुरुजन ने अन्य एक बरगीत द्वारा भगवान रामचंद्र को हृदय में स्थापित करने का आह्वान किया।

''राम गोसाई करोहो गोहारि।
बहु हृदि पंकज ठाम हामारी॥
माया छोरी भकती करु दाना।
करो टूवा चरण पंकज मधुपाना॥
माधव दास कहय राम तेरा।
याहा याहा चरण ताहा शिरो मेरा॥''

गुरुजन का मूल आदर्श हैं–'एक देव एक सेव एक बिना नाही केव।' शंकरदेव और माधवदेव ने मूर्ति पूजा का भी विरोध किया था। राम नाम के माहात्म्य वर्णन कर माधवदेव ने 'मोई सेवहु रामचरण दूजा' बरगीत में लिखा–

''घटे घटे राम बियापक होई।
आत्मा राम बिने नाहि कोई॥
चैतन्य छोरी काहे जड़ सेवा।
राम बिने नाहि आवर देवा॥
कहय माधव शुनः नर लोई।
राम बिने कटी मुकुति नाहोई॥''

राग माहुर धनश्री, ताल पोरी में रचित माधवदेव का एक बरगीत है– 'राम तेरि चरणकमले रति लागो।' इस बरगीत मे भी गुरुजन ने राम की महिमा का वर्णन किया। साथ ही प्रभु श्री रामचंद्र से करुणा चाही।

''राम तेरि चरणकमले रति लागो,
मागो भकती गोसाईं।
हामु अनाथ नाथ तूह गोविंद
गतिक गति आवरि कोई नाई॥''

झूठ, विषय ,वासना छोड़कर राम का गुण गाने के लिए गुरुजन ने आह्वान किया। दुख की महौषधि ही

राम नाम है। प्रभु राम भक्तों के बंधु हैं। गुरुजन ने इसका उल्लेख एक बरगीत में किया–

''रे मन, राम चरण रति लावत।
झूंता बात, विषय विष छोड़ि राम अमिया गोईं गावत॥''

राग गौरी और ताल यति में रचित गुरुजन ने राम के संदर्भ में एक और बरगीत लिखा–

''राम परम धन चिंतहु मन भाई।
तनू चिंतामणि बिफलही जाय॥
विषय सुख शुकरकहु पाय।
हरि पद सेवा मानवी बिने नाइ।''

ठीक उसी तरह राम वंदना से गदगद होकर माधवदेव द्वारा रचित और कुछ बरगीत हैं–

राग आशोवारी, ताल पोरी में रचित 'रामक बानी जपहु मन भाई', राग धनश्री, ताल पोरी में रचित 'रे मन राम चरन धन सेवना' और राग सिंधुरा में रचित 'जय जय राम राघव रघुकुल पंकज दिनकर राम मुरारी।'

इसी तरह हमें महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और महापुरुष माधवदेव, दोनों गुरुओं के बरगीत में राम की वंदना देखने को मिलती है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर गुरुजन के बरगीत समूहों में राम की वंदना में दो मुख्य विषय सामने आते हैं –

1. परम पुरुष के रूप में श्री रामचंद्र, जहाँ श्री राम की मानवीय विशेषताएँ प्रतिफलित होती हैं।
2. भगवान के अवतार के रूप में श्री रामचंद्र।

जहाँ भगवान विष्णु के अवतार के रूप में श्री रामचंद्र को प्रतिष्ठित किया गया है। महेश्वर नेओग का कहना है कि ''बरगीत गाकर और सुनकर हमारे मन में भक्त कवि सूरदास का बाल श्रीकृष्ण विषयक पदसमूह की स्मृति उत्पन्न होती है, विद्यापति या बंगीय महाजनों के वैष्णव पदावली नहीं। नामघोषा के विषय विभाग महापुरुषों ने स्वयं करके रखा है। बरगीतों में भी उसी तरह के विभाग हैं, केवल उसे महापुरुषों ने लिखित रूप में नहीं रखा है।''[5]

सत्य और शांति की प्रतिष्ठा के लिए भगवान विष्णु ने विभिन्न अवतार धारण किए। दुष्ट का दमन, शांति का पालन किया। भगवान राम को विष्णु का अवतार माना जाता है। गुरुजन द्वारा रचित इस बरगीत की पंक्तियाँ इसकी यथार्थता प्रमाणित करती हैं–

''नित्य निरंजन जगजन कारण
रामरूपे अवतारा।।
रघुपति चरण कमल भृंग माधव
कहगति राम हामारा॥''

निष्कर्ष :

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव ने संपूर्ण असम में ही एक नए जागरण की सृष्टि कर दी। असम में एक शरणिया नामधर्म का प्रचलन होने लगा। सभी ऊँच-नीच जाति के लोग एक साथ बैठकर नामघर में ईश्वरोपासना करने लगे। आर्थिक दुर्दशा और अनैतिक द्वंद्व से आज के समय में शंकर-माधव की धर्म चर्चा का आवेदन हमारे लिए शिथिल हो सकता है, किंतु दोनों गुरुजनों ने एक नए समाज का निर्माण किया। असमिया भाषा-साहित्य को एक अलग पहचान दिलाई। ❑

संदर्भ सूची :

1. महंत, बापचंद्र : प्रबंध गानर परंपरागत बरगीत; बनलता, 2006
2. महंत, बापचंद्र : प्रबंध गानर परंपरागत बरगीत; बनलता, 2006
3. नेओग, डॉ. महेश्वर : श्री श्री शंकरदेव; चंद्रप्रकाश, 1999
4. शर्मा, डॉ सत्येन्द्रनाथ : असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त; सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2001
5. नेओग, डॉ. महेश्वर, श्री श्री शंकरदेव, चंद्रप्रकाश, 1999

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

समकालीन कविता का मानवीय चेहरा

प्रो. प्रमोद कोवप्रत

प्राध्यापक अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय
मलापुरम जिला, केरल-673635
मो. 9447887384
ई-मेल : drpramodcu@uoc.ac.in

समय का प्रवाह तेज है। हमारा पूरा परिवेश एवं सभ्यता संस्कृति में भारी परिवर्तन हो रहे हैं। भूमंडलीकरण सूचना क्रांति और मीडिया का वर्चस्व समाज के हर हिस्से में व्याप्त है। हमारे परंपरागत जीवन एवं आचार-विचारों पर नए प्रकार का दबाव पड़ रहा है। सब कुछ पैसा, मुनाफा और बाजारवादी दृष्टि पर केंद्रित है। अर्थव्यवस्था सर्वोपरि है। उसके बीच संस्कृति, मूल्य बोध, लोकतंत्र, प्रकृति, ग्रामीणता, परंपरा आदि की दुहाई देना निष्फल जैसा लगता है। डॉक्टर पशुपति नाथ उपाध्याय के शब्दों में, ''**सामाजिक मूल्यों और राजनीतिक चरित्रों का द्रुतगति से पतन हुआ है, ह्रास हुआ है । ऐसी स्थिति में सूचना तंत्र को मानवीय मूल्यों के प्रति निष्पक्ष दृष्टि से राष्ट्रहित में सूचना प्रसारित करना चाहिए। मानवी मूल्यों की स्थापना में सूचना तंत्र के दोनों सघन साधन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और प्रिंट मीडिया ब्रैकेट समाचार पत्र बहुत बड़ी भूमिका अदा कर सकते हैं।**'' [1] कभी-कभी मीडिया एवं सूचना तंत्र की तरफ से अप-संस्कृति भी फैलाई जा रही है। साहित्य का काम अप-संस्कृति के खिलाफ जनता को सचेत करना है। चाहे मीडिया हो या भूमंडलीकरण हो, इससे समाज में मानवीय चेहरा जिस तरह खोता जा रहा है, उसके प्रति जागरूक बनाना, मनुष्य का मूल्यबोध जगाना और मनुष्यता को पुन: प्राप्त करना समकालीन साहित्य का दायित्व है। समकालीन कविता मानवीय पक्ष पर विशेष बल देती है।

वर्तमान समय में मनुष्य का जीवन यापन अत्यंत दुष्कर होता जा रहा है। पूँजी और मुनाफे की दुनिया में जूझना ही मनुष्य की नियति बन गई है। अपने खौफनाक समय में योग जीवन की गाड़ी खींच-खींच कर चला रहे हैं। आजीविका के लिए, अपने अस्तित्व के लिए, अपनी अस्मिता के लिए और अपने पेट के लिए संघर्ष जारी है। कुमार अंबुज की कविता 'एक राजनीतिक प्रलाप' की पंक्तियाँ इस संदर्भ में अत्यंत मार्मिक हैं-

इतनी ज्यादा मुश्किलें जिनमें जीवित हैं लोग
करोड़ों लोग गरीबी के नर्क में हैं
करोड़ों बच्चे झुलस रहे हैं फैक्टरियों में
करोड़ों स्त्रियाँ जर्जर शोकमय शरीरों में मुस्कुरा रही हैं [2]

बिल्कुल सही है कि विशंभर नाथ उपाध्याय ने 'बिकमिंग' की कविता के रूप में समकालीन कविता को माना, क्योंकि उसमें धड़कन है, तड़प है, गर्जन है और कराह भी। समय की क्रूरता, अमानवीयता, अत्याचार एवं शोषण ऐसे कविताओं में अंकित हैं कि मानवीयता विलुप्त हो रही है तो उसे सुरक्षित रखना कवियों का दायित्व बन जाता है। वर्तमान अप-संस्कृति कितनी डरावनी लगती है इसकी सीधी अभिव्यक्ति हमें निर्मला पुतुल की कविता में मिलती है। 'इतनी दूर मत ब्याहना बाबा' की पंक्तियाँ हमें बहुत कुछ सोचने के लिए प्रेरित करती हैं-

उस घर से मत जोड़ना मेरा रिश्ता
जिसमें बड़ा सा खुला आँगन न हो
मुर्गी की बाँग पर होती नहीं हो जहाँ सुबह
और शाम पिछवाड़े से जहाँ
पहाड़ी पर डूबता सूरज न दिखे [3]

अर्थात् महँगाई के जमाने में हमें कभी कभार लगता है कि आज मनुष्य के सिवाय बाकी सब कीमत बढ़ गई है। मनुष्य जीवन का मूल्य घटता जा रहा है। इसलिए मनुष्य क्रूरता बढ़ रही है। राजेश जोशी को इसीलिए 'मारे जाएँगे' कविता लिखनी पड़ी। बेकसूर एवं गरीब लोगों की स्थिति दयनीय है। भगवत रावत की कविता की पंक्तियाँ हमें व्याकुल करती हैं-

मनुष्य दिखते भर रहने के लिए हम
करते हैं न जाने क्या-क्या उपाय

.....

अब किसी आवाज पर
दौड़ नहीं पड़ते अचानक नंगे पाँव
कमरों से आराम से बैठे - बैठे
देखते रहते हैं नरसंहार। [4]

वास्तव में आज मनुष्य यंत्र बनता जा रहा है। एक

प्रकार से असंवेदनशील मानसिकता के साथ जी रहे हैं। हमारी आज की बाजारीकरण संस्कृति ने हमें ऐसा बना दिया है। वास्तविकता यह है कि आज प्रतिक्रिया विहीन लोगों को अधिकतर देख सकते हैं। लीलाधर जगूड़ी की पंक्तियाँ इस अवसर पर काफी ध्यान देने योग्य हैं । आज की विडंबना पर उन्होंने अपनी कविता 'इक्कीसवीं सदी का एक विज्ञापन' में लिखा है –

मुझे ऐसे बच्चे चाहिए जो सीधे आदमी हो जाएँ
जिनके बड़े होने और खड़े होने का इंतजार न करना पड़े
जो एकदम तैयार रहते हों और छुट्टी न लेते हों
जो सोचे नहीं सिर्फ करें
बस बीमार न पड़ते हों,जो सिर्फ जिएँ और मरें [5]

लाभ केंद्रित उपभोक्तावादी संस्कृति में स्नेह, प्यार, मदद, सेवा, सम्मान आदि के लिए कोई स्थान नहीं है। यह निजीकरण का समय है। अगर आपके पास पैसा है तो सब कुछ मिलेगा। बाकी लोगों को मरने के सिवाय दूसरा चारा नहीं है। सरकार सब कुछ निजीकृत कर रही है। मानवीयता से दूर पड़ गई हैं स्वास्थ्य सेवाएँ। गरीब को सही इलाज नहीं मिलेगा। अमानवीय होते स्वास्थ्य के क्षेत्र के बारे में अरुण कमल लिखते हैं –

जैसे सरकारी अस्पताल थे लेकिन वहाँ
रुई पट्टी तक न थी , नर्सें स्वेटर बुनती रहतीं
डॉक्टर कभी-कभी सैर पर आते
और बेड के नीचे कुत्ते सोए रहते
केवल लाश-घर पर सरकार का पूरा नियंत्रण था [6]

बाजारीकृत समाज में मनुष्य का चेहरा गायब होता जा रहा है। वह सिर्फ आधार कार्ड से गिना जाता है। कुमार अंबुज ने 'अतिक्रमण' जैसी कविता के माध्यम से मनुष्य के वस्तुकरण की गंभीर समस्याओं को उठाया है। यांत्रिक दुनिया में मशीन और कंप्यूटर ही सब कुछ तय करता है, लेकिन एक ही शर्त है मुनाफा। बलदेव वंशी की कविता यहाँ महत्वपूर्ण है। 'खुद को सुनना खामोश घर में' कविता की पंक्तियाँ हमें सब कुछ बता देती हैं –

आदमी चुप होता है जब
तो चीज़ें बोलती हैं
बोलती चीजों से घिरा
आदमी खामोश है। [7]

मनुष्य का रोना-हँसना, चुप रहना, आह, कराह सारे भावों को आज पैसे में बदल दिया जाता है। या तो वह विज्ञापन बन जाता है या मोबाइल का रिंगटोन बन जाता है। सोशल मीडिया में ऐसे बहुत सारे चित्र के लिए लाइक और कमेंट बहुत मिलते हैं। छोटे-छोटे वीडियो, तस्वीर, रील आदि इसके उदाहरण हैं। किसी के दुख-दर्द को भी सनसनीखेज समाचार बनाकर मीडिया वाले खूब पैसा कमाते हैं। उपयोगितावादी दौर में यही सब चलता है। कैलाश वाजपेयी की पंक्तियाँ अत्यंत मार्मिक लगती हैं –

आज तक कोई उपयोग ना कर पाए हम
तुम्हारी चुप चीख का
हमें माफी करना माँ
बाजार में आँख का कोई मूल्य नहीं। [8]

इसी तरह पंकज चतुर्वेदी अपने समय के अमानवीय चेहरे को बेनकाब करते हैं। इंसानियत अब गायब हो रही है और अदृश्य शक्तियों के नियंत्रण में हम लोग आ गए हैं। मंगलेश डबराल 'नए युग में शत्रु' नामक कविता में सशक्त रूप से भूमंडलीकृत दुनिया की अदृश्य शक्तियों के बारे में लिखते हैं। पंकज चतुर्वेदी हमारे समय के आकाश में मन को डराने वाली चीजों से हमें सावधान करते हैं। जैसे –

एक ऐसे समय में
जब आकाश में चीलें मंडरा रही हैं
और हर खोह के लिए एक अदृश्य मुनादी है
कि उसमें हाथ डालने वाले इंसान की
खाल खींच ली जाएगी। [9]

अर्थात् इंसान बनना आसान नहीं है। मनुष्य ने काफी प्रगति अर्जित की है। मगर उनका काम अत्यंत घिनौना और हिंसक बनता जा रहा है। वे पाषाण युग से तो बाहर निकले, मगर उनका दिल पाषाण जैसा बन गया है। वास्तव में कोमल संवेदनाओं के लिए आजकल स्थान नहीं रहा। संवेदन शून्य मनुष्य के बारे में केदारनाथ सिंह ने अपनी कविता 'फर्क नहीं पड़ता' में सुंदर अभिव्यक्ति दी है। समाज के हाशिए पर खड़े एवं गरीब लोगों पर अत्याचार बहुत चल रहा है। वे हमेशा शोषण का शिकार

बन जाते हैं। कवि ज्ञानेंद्रपति अपनी कविता 'वसुधैव कुटुंबकम' में इसकी सशक्त अभिव्यक्ति देते हैं। कवि के शब्दों में –

लेकिन मैं जानता हूं
पाषाण युग से भी पीछे
हैं वे पाषाण हृदय जो
अत्याधुनिकों में अग्रगामी गिनते हैं खुद को
उनको मानव होना शेष अभी।[10]

निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि समकालीन कविता मानवीय चेहरे पर बल देती है । तमाम हाशिएकृत विमर्शों या अस्मिता विमर्शों के पीछे मानवीय संवेदना ही सक्रिय रूप से कार्यरत है। मनुष्य को व्यक्ति के रूप में पहचान मिलनी जरूरी है। पशु तुल्य जीवन बिताने तथा शोषित होने के लिए अभिशप्त लोगों के पक्ष में कविता खड़ी होती है। उपभोगी एवं बाजारीकृत समाज में मूल्यों तथा मानवीय भावों को प्रमुखता देनी चाहिए। साथ ही प्रेम, करुणा, स्नेह, दया, सहानुभूति आदि कोमल मूल्यों और संवेदनाओं को बरकरार रखना चाहिए। मुनाफा केंद्रित समाज में मनुष्य और मनुष्यता के लिए स्थान कम होता जा रहा है।

समकालीन कविता में वर्तमान का यथार्थ चित्रित होता है। वह मानवीय अस्मिता के लिए खड़ी है। दलित, आदिवासी, किन्नर, अल्पसंख्यक आदि सभी के प्रति यह कविता अपने सरोकार को व्यक्त करती है। मनुष्य होना बड़ा गुण है, उससे बड़ा गुण है मनुष्यता। वास्तव में समकालीन कविता के प्रतिरोध और प्रतिवाद की भावना के पीछे मनुष्य और मनुष्यता को बचाए रखने का बहुत बड़ा साहस हम देख सकते हैं। ❑

संदर्भ सूची :

1.डॉ. पशुपति नाथ उपाध्याय – भूमंडलीकरण और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 2023 पृ. 175
2. कुमार अंबुज – अनंतिम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009 पृ. 9
3. निर्मला पुतुल – नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005 पृ. 49
4. भगवत रावत – ऐसी कैसी नींद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004 पृ. 87
5. लीलाधर जगूड़ी – भय भी शक्ति देता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991 पृ.111
6. अरुण कमल – मैं वो शंख महाशंख – राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012 पृ. 102
7. बलदेव वंशी – धरती हॉफ रही है, आर्य प्रकाशन मंडल, नई दिल्ली, 2007 पृ. 76
8. कैलाश वाजपेयी – हवा में हस्ताक्षर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005 पृ. 32
9. पंकज चतुवेदी – एक संपूर्णता के लिए, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 1998 पृ. 12
10. ज्ञानेन्द्र पति – कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000 पृ. 105 – 106

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

राभा लोकगीत : एक अध्ययन

डॉ. चंदना शर्मा

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
प्रागज्योतिष महाविद्यालय
गुवाहाटी-781009
मो. 7002544837
ई-मेल : chandana@pragjyotishcollege.ac.in

शोध-सार :

राभा समाज लोकगीत, लोककथा, लोकविश्वस और लोकसंस्कृति से परिपूर्ण है। राभा समाज में प्रचलित विभिन्न पूजा-अर्चना, उत्सव आदि में गीत, बोल, सुर, ताल, वाद्य नृत्य के उपकरण मौजूद हैं। इन नृत्य-गीतों में सुख-दुख, विरह और प्रेम विद्यमान हैं। राभा लोक गीतों में छाथार, बहुरंङी, तूकुरीया गीत, हुईमारो गीत, फारकांति या तरांगकाजी गीत, ददानगीत, निरमणि-निरजुरीर गीत, नवईनी और हरकापेकापेटार गीत, मारा-माथाँग गीत नाम के गीत विशेष रूप से प्रचलित हैं। इन गीतों को अलग-अलग भागों में विभाजित कर सकते हैं, जैसे - पूजा के समय गाने वाले गीत, विवाह, श्राद्ध आदि सामाजिक अनुष्ठानों में गाने जाने वाले गीत और प्रणय के गीत, कहानी मूलक गीत, हँसी-मजाक के गीत, कर्म से जुड़े हुए गीत, वर्षा के गीत, नए साल के गीत इत्यादि। इन सभी में प्रतिफलित होती है लोक-सांस्कृतिक विरासत।

कुंजी शब्द :

लोकविश्वास , लोकसंस्कृति , मायतारि, रंगदानी, रून्तुक, बाचेक, ग्री 'मबुदार आदि

भूमिका :

अपने गौरव, विशिष्टता, आस्था, आख्यान, उपाख्यान से परिपूर्ण जाति है राभा। भारत के संविधान में राभा एक जनजाति के रूप में स्वीकृत है। राभा जनजाति का निवास असम के ग्वालपाड़ा, कामरूप और दरंग जिले में है। असम के अतिरिक्त मेघालय, मणिपुर, बांग्लादेश एवं नेपाल में भी राभा समुदाय के लोग रहते हैं। विद्वानों के अनुसार ये लोग तिब्बत से देशांतरित होकर सर्वप्रथम मेघालय के गारो हिल्स में आए। इसके बाद ये लोग असम के विभिन्न क्षेत्रों में बस गए। राभा जाति सामाजिक दृष्टि से कई शाखाओ में विभक्त है। जैसे- रंगदानी, पाति, टोटला, मायतरी, कोच, बितलिया, हाना आदि।

शोध पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन को संपूर्ण करने के लिए वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धति को अपनाया गया है। इस लेख को पूरा करने के लिए राभा लोक समाज में लोकप्रिय कुछ गीतों को और कुछ लोक गीतों के बारे में लिखे गए लेख समीक्षा को आधार रूप में लिया गया है।

अध्ययन की सीमा :

राभा लोक गीतों का भंडार विशाल है। इस छोटे से निबंध में सभी गीतों को समाहित करना संभव नहीं है। अत: मेरे इस शोध निबंध पर केवल पूजा-अर्चना से संबंधित कुछ गीतों पर ही चर्चा की गई है। इन गीतों के जरिए राभा समाज में प्रचलित आध्यात्मिक स्वरूप को देखने का प्रयास किया गया है। साथ ही उनमें प्रतिफलित लोक-सांस्कृतिक विरासत को भी उकेरा गया है ।

पूजा के समय गाने जाने वाले गीत :

राभा लोक गीतों में पूजा-पाठ के गीतों को विशेष महत्व दिया जाता है। राभा लोक गीतों में पूजा-पाठ के गीतों में कई विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए इसे कई भागों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे- मायतारि राभाओं की बायखो पूजा के गीत, रांदानि राभाओं की हाछां पूजा के गीत, अग्नि पूजा के गीत, कोच राभाओ के रून्तुक -बाचेक पूजा के गीत, ग्री'मबुदार गीत, बीमारियों से संबंधित पूजा के गीत, वीरा भगाने का मंत्र, काति पूजा के गीत।

(क) मायतारि राभाओं की बायखो पूजा के गीत : राभाओं के प्रधान उत्सवों में एक उत्सव है खोकचि या बायखो पूजा। मायतारि राभा के अनुसार उनकी प्राचीन वीरांगनाएँ हैं - तामाइ, दादुरि और नाकाति। इस पूजा में इन तीनों वीरांगनाओं को देवी के रूप में पूजा की जाती है। इस का उत्सव हर साल निर्दिष्ट जगह पर या धाम पर वैशाख और जेठ महीने में सामूहिक रूप में पालन किया जाता है। पुराने जमाने में यह उत्सव सात दिन-सात रात तक मनाया जाता था। आज भी कहीं-कहीं ये तीन दिन-तीन रात तक मनाया जाता है। उत्सव के पहले दिन को 'नोक खि'थारकाय' या घर शुद्धिकरण कहा जाता है। उस दिन शाम को पुरोहित हर एक परिवार में जाकर उनके घरों की छत पर चावल के आटे से शुद्धि करते हैं। उस समय गाते हैं -

'फइ फइ हाछि छानि कुरि छाओरातांगओ
कुरि छानि चिंवा तोबालाति,
कुरि खेरे छाना लागिया
चिवां तोखा गांडा-छे पुइ खेरेछे
छाइ रेङा लगिया।' (राभा जनजाति ; पृष्ठ- 130)

अर्थात हे बच्चो, आओ। आओ, हम सभी चातक की भाँति हँसते-खेलते काम करते हुए जीवन जिएँ। इन गीतों के जरिए लोगों को कर्म की प्रेरणा देते हैं।

(ख) रांदानि राभाओं की हाछां पूजा की गीत: उस दिन रांदानि राभा लोग अपनी प्राचीन वीरांगना श्री छिछोराक खोकचि को पूजा में मुख्य देवी रूप से पूजा करते हैं । कुछ लोग खोकचि के जगह पर हाछां या वस्तु देवता की भी पूजा करते हैं। कुछ लोग हाछां को देवी महामाया रूप में भी मानते हैं। इस पूजा के समय सामूहिक रूप से आराधना करते हुए गीत की कुछ पंक्ति दोहराते हैं।

(ग) अग्नि पूजा के गीत : राभा समूह में अग्नि पूजा प्राचीन काल से ही प्रचलित है। कुछ लोग इस पूजा को खोकचि पूजा के साथ भी करते हैं। यह पूजा करने के लिए काठ और बाँस से सात स्तरीय वेदी बनाई जाती है। पूजा के अंत में इसे जला दिया जाता है। अग्नि पूजा में गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है-

आगराणी छाना दे - ए आया
ब्रह्माणी छाना दे - ए आया
नङिपूर्वानी आचारबानि बिचारबानि राय,
चिङिपालि प्रहरितां, नाङिचालाम चिङिराय।
(राभा जनजाति ; पृष्ठ- 132)

इसका अर्थ है- हे माँ, अग्नि देवी आप मातृ स्वरूपा; हम प्राचीन आचार नीति के अनुसार पवित्र परिष्कार पानी से स्नान कर आए हैं । हे देवी, हम तुम्हें विश्वास और भक्ति के साथ प्रणाम करते हुए अंजलि देते हैं।

(घ) कोच राभाओ के रून्तुक : बाचेक पूजा के गीत-कोचबिहार, जलपाईगुड़ी, ग्वालपाड़ा आदि

जगहों में रहने वाले राभा लोग गृह देवी के रूप में रून्तुक या बाचेक पूजा करते हैं। यह पूजा विशेषत: भूत-प्रेत, बीमारी आदि से बचने के लिए की जाती है। साथ ही धनधान्य प्राप्त करना भी इस पूजा का उद्देश्य है.। उनके अनुसार रून्तुक और बाचेक बहनें हैं। इसीलिए इनकी एक साथ पूजा की जाती है। पूजा के समय देवरी या पुजारी नीचे दिए हुए गीत को गाते हैं-

हल जल जिनु 'उ
हल जल जिनु 'उ
सोना नागु नाबु 'उ
हातीराइ ताचाइ
घोरा बुउ ताचाइ
हल जल जिनु 'उ
हल जल जिनु 'उ। (राभा जनजाति ; पृष्ठ- 133)

इसका अर्थ है- माँ रून्तुक और बाचेक तुम दोनों बहने हो। हे रून्तुक, तुम्हारे लिए सोने के घोड़े की व्यवस्था की है। हे बाचेक, तुम्हारे लिए भी चांदी के घोड़े की व्यवस्था की है। हमारे प्रति कृपा रखना ।हाथी पर चढ़कर मत जाना, घोड़े पर भी मत लौट जाना। हमारे प्रति कृपा बनाए रखना।

(ङ) ग्री 'मबुदार गीत : ग्री 'मबुदार पूजा मायतारी राभाओं के शरद ऋतु में मनाया जाने वाला प्रधान उत्सव है ।यह मूलत: कृषिकर्म से संबंधित उत्सव है। ग्री 'मबुदार के साथ कई सहयोगी देवियों की पूजा भी होती है। उनमें से 'तुरा लास्की' खेतों की रक्षा करने वाली और कीट-पतंग विनाश करने वाली देवी माना जाता है। लक्ष्मी पूजा मंडप में आने से पहले हर घर से एक कुमारी लड़की पूजा मंडप से एक -एक गुच्छा धान नए काबुं कपड़े से लिपट कर अपने पीठ पर घर लाती हैं और उसके पीछे-पीछे गाँव के समूह नीचे लिखे गीत को गाते हैं-

फै हाछिछा फै कुरिछा फै
हि हि ओइ।
फै आछु फै शालि फै
हि हि ओइ।
फै हाम्पा फै माई फै
हि हि ओइ।। (राभा जनजाति; पृष्ठ- 133)

जिसका अर्थ है- हे जनगन आओ शालि आओ, हे आहु आओ, हे कपास आओ ।हे लक्ष्मी आओ आओ । इस तरह लक्ष्मी माता का स्वागत किया जाता है ।

(च) बीमारियों से संबंधित पूजा के गीत : राभा लोग विभिन्न बीमारियों का कारण अलग-अलग देवता का कोप समझते हैं। उसी विश्वास के चलते ये उन्हें संतुष्ट करने के लिए पूजा-पाठ करते आए हैं। इन उत्सवों में अलग-अलग लोक गीत भी गाए जाते हैं । जैसे अगर किसी व्यक्ति को लगातार बुखार रहता है तो उस व्यक्ति के आँगन में एक पूजा की जाती है। उस समय पुजारी इस तरह से गाते हैं-

अहो ! खुछामि बाइ जादी
हानाछा बिछाइ तइमेन ?
काराहा तइमेन ?
कामाहा तइमेन ? (राभा जनजाति ; पृष्ठ- 134)

जिसका अर्थ है संध्या के देवता तुम कहाँ हो ? ठंडी जगह पर हो या ऊँची जगह पर हो ? या नीची जगह पर हो ? जहाँ भी क्यों ना हो इस मालॉसी पुष्प, मेरा पौधा, पवित्र चावल के आटा आदि से तुम्हारी पूजा की है इत्यादि। साधारणत: अगर किसी को ज्वर, सर में दर्द, पूरे शरीर में दर्द आदि लक्षण दिखाई देते हैं तो उसके आँगन पर बक्रावाय पूजा की जाती है। रोगी के घर के आँगन में केले का पौधा और उसके पत्तों से एक घोड़े की प्रतिकृति तैयार की जाती है। प्रधान पुजारी एक टोकारी (एकतारा) लेकर बजाते हुए गीत गाते जाते हैं और सहयोगी उसी के साथ ताल बजाते जाते हैं। पूरी रात इसी तरह विरामहीन रूप से यह गीत गाए जाते हैं । उस समय गाँव के सभी लोग जागते रहते हैं या जगराता करते हैं। रांदानी, मायतारी राभा इस तरह से पूजा करते हैं ।

(छ) वीरा भगाने का मंत्र : लोक-विश्वास के अनुसार वीरा एक प्रकार का अप-देवता है। लोगों के घर में पत्थर, मिट्टी,काठ आदि फेंक कर लोगों पर अत्याचार करते हैं। कुछ दुष्ट प्रकृति के लोग ओझा के द्वारा शत्रु परिवार पर इस तरह से वीरा प्रयोग कर अत्याचार करते हैं। उस समय वह व्यक्ति जिस पर वीरा का प्रयोग

होता है पागल जैसा हो जाता है और घर से भाग जाना चाहता है। उस समय वीरा को पूजा देकर मंत्र द्वारा भगाना पड़ता है। इसे 'लोमाकाथा' अर्थात वीरा भगाने का गीत कहा जाता है।

ओइ, डालेरे बीरा ना पातेरे बीरा ?
आकाशेरे बीरा ना पातालेर बीरा ?
हा बीरा ! हा बीरा!
ओइ बीरामन चाइते कायाओ ना बा ?,
हा बीरा ! हा बीरा!
छेओरा गाछर पाते जनम पायया,
छेओरा गाछर पाते करम पायया,
बीराणी हाम्बा, बीराणी हाम्बा,
बीराणी हाम्बा - बीराणी हाम्बा।

(राभा जनजाति ; पृष्ठ- 103)

(ज) काति पूजा के गीत : काति पूजा राभा लोक समाज में बिशेष रूप से स्त्रियाँ करती हैं। यह नारी समाज में विशेष रूप से लोकप्रिय है। यह पूजा कार्तिक महीने के अंतिम तारीख में अथवा अगहन महीने के किसी दिन भी किया जाता है। कार्तिक महीने में किया जाने वाला पूजा 'बरतेर काति' और अगहन महीने में की जाने वाली पूजा 'नमला काति' कहलाती है। स्त्रियों में यह विश्वास है कि उस दिन कार्तिक देवता के पूजन से संतान-हीना को संतान की प्राप्ति होती है। स्वामीहीना को स्वामी प्राप्त होता है। इसके अलावा अपनी मनोकामना पूर्ति और खेतों में अधिक से अधिक अनाज उत्पन्न करने के लिए भी कार्तिक पूजा की जाती है। कार्तिक पूजा के अवसर पर शिव और चंडी का विवाह संपन्न किया जाता है। उसके पश्चात गीतों के माध्यम से ढाई का आगमन, नाई का आगमन अशौष क्रिया इत्यादि भी वर्णित होती है । साथ में खेतों की रक्षा के लिए कीट पतंग आदि विनाशकारी जीवों को भगाने की भी कामना की जाती है। कार्तिक पूजा में विशेष रूप से कार्तिकेय जन्म विषयक और श्रृंगार रस, प्रेम लीला विषयक गीत गाए जाते हैं। कार्तिक पूजा में पुरुषों का प्रवेश निषेध है। कार्तिक पूजा में गाए जाने वाला एक गीत इस प्रकार है-

हिये पानीत नामिल चंडी; डिलू पंच डूब
कुघाटे नामिया चंडी सुघाते उठिलो
भिजा बस्त्र फेलाया चंडी सुकान पहिला
उत्तम गंगार जल दिया शिवेर पाओ कचलाईले।

(असमर संस्कृतिक समीक्षा ; पृष्ठ - 215)

निष्कर्ष :

राभा जनजाति असम की प्राचीन जनगोष्ठियों में से है। उनके लोक संगीत में उस जनगोष्ठी की सांस्कृतिक विरासत को देखा जा सकता है। इनके पास समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है, जिसमें नृत्य, गीत, लोक कथाएँ, आचार- व्यवहार, खानपान सब कुछ सम्मिलित है। मेरे शोध निबंध पर केवल पूजा अर्चना से संबंधित कुछ गीतों पर ही चर्चा की गई है। इन गीतों के जरिए राभा समाज में प्रचलित आध्यात्मिक स्वरूप को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही उनमें प्रतिफलित लोक सांस्कृतिक विरासत को भी उकेरा गया है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. राजेन राभा; राभा जनजाति ; दूसरा संस्करण, 2002 ; वीणा लाइब्रेरी, गुवाहाटी
2. डॉ. नबीन चन्द्र शर्मा; असमर संस्कृतिक समीक्षा; पहला संस्करण, 2000; चन्द्र प्रकाश ; गुवाहाटी
3. डॉ. उपेन राभा; राभा लोकसाहित्य; पहला संस्करण, 2012; ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

श्री अरविंद की विचारधारा का अंतर्राष्ट्रीयकरण

'श्री अरविंद पृथ्वी पर एक नयी शिक्षा एवं पंथ के साथ नहीं आये हैं, जो पहले से विद्यमान शिक्षा एवं पंथ के साथ प्रतिस्पर्धा करें, बल्कि उस मार्ग को दिखाने आये हैं, जो अतीत को पार करके शीघ्र एवं अपरिहार्य भविष्य के मार्ग की ओर जाए।'[1]

श्री माँ, 22 फरवरी, सन् 1967

प्रभाकर पाण्डेय

शोधार्थी, इतिहास विभाग
डीएवी पीजी कॉलेज
देहरादून, उत्तराखंड
मो. 6395767304
ई-मेल :prabhakarpandey1611@gmail.com

शोध सार :

19वीं सदी का भारत के संदर्भ में बहुत महत्व है, क्योंकि इसी काल में भारत के बंगाल और गुजरात में ऐसे महापुरुषों का जन्म हुआ, जिन्होंने भारतीय संस्कृति को विश्व में प्रसारित करने का कार्य किया। इस शृंखला में रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, श्री अरविंद उन महात्माओं में सम्मानित हैं, जिन्होंने भारत की आध्यात्मिक संस्कृति से विश्व को परिचित एवं प्रसारित करवाकर, पश्चिम के विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इनमें से स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, श्री अरविंद ने भारतीय संस्कृति के आधारभूत ग्रंथ जो संस्कृत भाषा के हैं, इनका अध्ययन करके पश्चिम को तार्किक जवाब ही नहीं दिया, बल्कि भारतीय अध्यात्म एवं भारतीय संस्कृति के मर्म से संसार को परिचित भी कराया। इसी कड़ी के एक महान संत थे श्री अरविंद, जिनके विचारों का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में प्रभावों का विश्लेषण हम इस शोध आलेख में करेंगे।

बीज शब्द :

श्री अरविंद, विचारधारा, अंतर्राष्ट्रीयकरण, नोबेल आदि।

भूमिका :

19वीं सदी में स्वामी विवेकानंद के द्वारा प्रारंभ किया गया अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय सांस्कृतिक आंदोलन, बीसवीं सदी के प्रारंभ में मंद हो गया था, क्योंकि 1902 ई. में, स्वामी विवेकानंद इस पार्थिव शरीर को छोड़ कर चले गए थे।[2] इसी कालखंड में श्री अरविंद भारत में राजनीतिक कार्यक्रमों में शामिल होने लगे थे, वस्तुत: जिस सांस्कृतिक आंदोलन को

स्वामी विवेकानंद ने आधे मार्ग पर छोड़ा था, श्री अरविंद ने उस कार्य को आगे बढ़ाया। श्री अरविंद ने अपने लेखों के माध्यम से भारतीय आध्यात्म, दर्शन, संस्कृति, मानवता आदि विषयों पर जो विचार पश्चिम के सामने रखे थे, वस्तुत: उसी आध्यात्मिक संस्कृति के प्रतिफल पश्चिम के लोग भारत की ओर आकर्षित हुए। श्री अरविंद ने सन 1914 ई. से लेकर सन 1921 ई. तक आर्य मासिक पत्रिका के माध्यम से धाराप्रवाह लेख लिखे थे। यह सभी लेख विविध विषयों से संबंधित हैं। इन विविध विषयों में मानव एकता, समकालीन विश्व राजनीति, समकालीन विश्व की समस्याएँ एवं उनके समाधान, मानवजाति की स्थायी समस्याएँ एवं उनके जीवन को दिव्य बनाने पर लिखे गए महत्वपूर्ण लेख आदि हैं, जो उनके विचारों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति प्रदान करते हैं। उनके द्वारा लिखे गए लेख, यथा-साहित्य, दर्शन, योग, मानव एकता आदि विषयक वह प्रभावशाली लेख हैं, जो विश्व पर गहरी छाप छोड़ते हैं। श्री अरविंद के समकालीन समाचार पत्रों की कतरनों के माध्यम से, हमने इस अध्याय में उन लेखों को शामिल किया है, जिनके माध्यम से श्री अरविंद का उस काल में विश्व पर पड़ रहे प्रभावों पर प्रकाश पड़ता है। इनमें से कुछ लेख उस समय के हैं, जो श्री अरविंद के जीवित रहते समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए थे तथा कुछ बाद के हैं।

किसी भी व्यक्तित्व की विचारधारा का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया जाना एवं महत्व, उन विचारों की श्रेष्ठता एवं उनकी इहलौकिक-पारलौकिक उपयोगिता पर निर्भर करता है। हालाँकि इस विश्व में नकारात्मक एवं विध्वंसात्मक विचारधारा को कुछ मनुष्य अवश्य स्वीकार करते है।[i] पर ऐसे लोगों की संख्या मुठ्ठी भर होती है। श्री अरविंद के विचार, दर्शन, चिंतन, साहित्य आदि का विश्व स्तर पर जो प्रभाव है, वह बिना किसी परिश्रम के सहज ही श्री अरविंद आश्रम, पाँडिचेरी में स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। यहाँ अनेक देशों एवं राज्यों से आए लोग एक साथ मिलकर श्री अरविंद-श्री माँ की अदृश्य शक्ति में रहते हुए एक लघु, किंतु विविध सांस्कृतिक एकता के शांतिप्रिय समूह का निर्माण करते हैं। श्री अरविन्द का जीवन बहुआयामी था। कवि, पत्रकार, देशभक्त, भाषाविद्, साहित्यकार, दार्शनिक, संत, महात्मा एवं ऋषि आदि शब्द उनको बाँध नहीं सकते। उनका चौबीस वर्ष का एकांतवास (1926 ई.-1950 ई.) पृथ्वी की दिव्यता के लिए था, संसार के कल्याण के लिए था। यह पहले की तरह आ रहे स्वमोक्ष पर आधारित न होकर संपूर्ण मानवता के कल्याण के लिए था। इन लोक कल्याणकारी विचारों का सार है, पृथ्वी का दिव्यकरण करना। पृथ्वी पर मानव जाति अपने रूपांतरण के लिए कार्य करे ,अपने सर्वांगीण विकास एवं पूर्णता के लिए कार्य करे, एकीकृत भारत एवं श्रेष्ठ भारत के लिए कार्य करे, विविधता में मानव एकता को प्राप्त करे और प्रत्येक राष्ट्र, मानवता के विकास के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान दे।[3]

श्री अरविंद पृथ्वी के दिव्यकरण के अन्वेषी :

श्री अरविंद पृथ्वी के दिव्यकरण के मार्ग के अन्वेषी थे। इसीलिए वह विश्व के महान गुरु हैं, जिनका उपनिषदीय ज्ञान, दर्शन, संपूर्ण मानवता को, 'असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा अमृतं गमयेति''[4] का मार्ग दिखा रहा है। इन्हीं कारणों से श्री अरविंद विश्व की निधि हैं एवं वर्तमान समय में उनके विचार अपरिहार्य रूप से स्वीकार किए जाते हैं और इनका प्रसार अमेरिका, यूरोप, कनाडा आदि संसार भर में निरंतर हो रहा है। श्री अरविंद पृथ्वी के विकास की बात करते हैं, अत: जब तक पृथ्वी है, तब तक श्री अरविंद के विचारों की प्रासंगिकता है और क्योंकि, वह पृथ्वी के विकास की बात कर रहे हैं, अत: अंत समय तक विश्व में उनके विचारों का प्रभाव रहेगा। श्री अरविंद के जीवन, दर्शन, साहित्य, सद्भावना, मानवता, योग आदि के विचार अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किए जाते हैं और किए जाते रहेंगे। सावित्री महाकाव्य में वर्णित निम्न पंक्तियों में श्री अरविंद स्पष्ट कहते हुए दिख रहे हैं। इन पंक्तियों में उनके कार्यक्षेत्र एवं दिव्यकरण के मार्ग को अनुभव किया जा सकता है-

"O Sun-Word, thou shalt raise the earth-soul to Light
And bring down God into the lives of men;
Earth shall be my work-chamber and my house,
My garden of life to plant a seed divine."[5]

श्री अरविंद पर कुछ विद्वानों की प्रशस्तियाँ एवं सम्मान :

''श्री अरविंद मेरे लिए आज मानव जाति के सबसे महान शिक्षकों में से एक हैं। उनका ज्ञान बौद्धिक ज्ञान से परे है और दिव्य जीवन के साथ संपर्क तक पहुँचने के प्रयासों को प्रेरित करता है। अंधकारमय युग में उनका संदेश शांति लाता है।'' [6]

–बैरन पाम्स्टाईरेना, अध्यक्ष, वर्ल्ड कांग्रेस ऑफ फेथ्स

अमेरिका में स्थित 'श्री अरविंद पुस्तकालय, 35 ईस्ट, 64 स्ट्रीट, न्यूयॉर्क 21' की मुहर लगे हुए समाचार पत्र, द न्यूयॉर्क टाइम्स बुक रिव्यू, 13 अगस्त, सन 1950 ई. के अंक में श्री अरविंद के विचारों की प्रभाविकता एवं प्रासंगिकता पर एक गंभीर लेख में लेखक अपने मित्र को सुझाव देता हुआ लिखता है कि ''मानव एकता का आदर्श पुस्तक आज की दुनिया की स्थिति के लिए इतनी प्रासंगिक है कि इसे 30 साल पहले के बजाय हाल ही में लिखा गया हो सकता है। निश्चित रूप से यह पुस्तक विश्व एकता, विश्व संघ आदि विषय पर लिखी गई अधिकांश अन्य पुस्तकों को लगभग तुच्छ बना देता है।'' इसी लेख में लेखक अपने एक मित्र को श्री अरविंद के कृतित्व से परिचित कराते हुए मानव एवं उसके स्वर्णिम भविष्य के लिए इसकी उपयोगिता की गंभीर चर्चा करता है। इस लेख में लेखक सुझाव दे रहा है कि श्री अरविंद की पाँच मुख्य पुस्तकों को आवश्यक रूप से एक क्रम में पढ़ा जाए, जिससे कि श्री अरविंद वाणी को सही से समझा जा सके। अध्ययन का यह आवश्यक क्रम है – गीता पर निबंध, योग समन्वय, दिव्य जीवन, मानव चक्र एवं अंत में मानव जीवन का आदर्श।[7] दिनांक 10 जून, सन 1951 ई. के इसी समाचार पत्र के अन्य अंक में श्री अरविंद पर एक अन्य लेख में लिखा गया है कि, ''व्यक्तिगत आत्म–अनुशासन से श्री अरविंद मानवता, मानवचक्र, मानव एकता के आदर्श और उसकी प्रगति के जीवन में खो गए हैं और मानव एकता के आदर्श पर उन सभी को सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए, जो भविष्य के लिए इसका ब्लू–प्रिंट तैयार करने में व्यस्त हैं। श्री अरविन्द एक अंतर्राष्ट्रीयवादी हैं, न तो स्वप्न में और न ही अभी तक पारंपरिक तरीके से, बल्कि आंतरिक आवश्यकता से।''[8]

श्री अरविंद शोध पुस्तकालय एवं अभिलेखागार के निदेशक श्रीमान बॉब ज्विकर के सहयोग से ऐसे कुछ अंतर्राष्ट्रीय संगठनों एवं कार्यों के संबंध में समाचार पत्रों

की कतरनों से सूचना एकत्रित की है, जो श्री अरविंद के जीवनकाल के दौरान एवं उनके भौतिक शरीर त्यागने के बाद क्रियान्वित हुए थे। इन समाचार पत्रों से उस काल के विद्वान लोगों की मनोदशा पर भी प्रकाश पड़ता है कि वह श्री अरविंद और उनके आश्रम के विषय में क्या विचार रख रहे थे। श्री अरविंद के पार्थिव जीवन के दौरान पाँडिचेरी में स्थित श्री अरविंद आश्रम एवं भारतीय संस्कृति की विदेशों में प्रभाव की एक झलक, शनिवार 23 जुलाई, सन 1949 ई. के एक समाचार पत्र, अमृत बाजार पत्रिका में प्रकाशित एक लेख से मिलती है। इस समाचार पत्र में, 'फाउण्ड स्पिरट्यूएलिटी सेण्टर्ड इन इण्डियन आश्रम्स' नामक शीर्षक से उस काल के एक विद्वान डॉ. फ्रेडरिक स्पीगेलबर्ग जो कि स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे, उनकी भारत यात्रा के अनुभवों का सुंदर वर्णन किया गया है। डॉ. फ्रेडरिक स्पीगेलबर्ग ने वर्ष 1949 ई. में अपने छह महीने के भ्रमण के दौरान भारत, नेपाल एवं तिब्बत में यात्रा की थी। डॉ. स्पीगेलबर्ग अमेरिका के उन चुनिंदा लोगों में से थे, जो पाली एवं संस्कृत भाषा के जानकार थे।[9] उस कालखंड में डॉ. स्पीगेलबर्ग ने भारत के चार महान आध्यात्मिक गुरुओं में से प्रत्येक आश्रम में एक सप्ताह व्यतीत किया था। ये आश्रम थे- श्री अरविंद आश्रम, रमण महर्षि आश्रम, स्वामी रामदास आश्रम तथा स्वामी शिवानंद का आध्यात्मिक केंद्र।[10] डॉ. स्पीगेलबर्ग, श्री माँ के जन्मदिवस के दिन, 21 फरवरी अर्थात दर्शन दिवस के अवसर पर पाँडिचेरी में, श्री अरविंद आश्रम में उपस्थित थे। वह बताते हैं कि यही वह एक दिन होता था, जब श्री अरविंद एकांतवास से बाहर अपने साधक-अनुयायियों के दर्शनार्थ आते थे।[11] तब डॉ. स्पीगेलबर्ग ने भारतीय आश्रमों से गहन रूप से प्रभावित होकर इन आश्रमों को वास्तविक अर्थ में भारत के आध्यात्मिक केंद्र के रूप में संबोधित किया था।[12] डॉ. फ्रेडरिक स्पीगेलबर्ग का मदर इंडिया पत्रिका में छपा एक साक्षात्कार भी है, जिसका शीर्षक है, 'जर्मन सैवेन्ट इन इण्डिया'। इस साक्षात्कार से डॉ. फ्रेडरिक का भारतीय आध्यात्मिकता एवं श्री अरविंद के प्रति जो आकर्षण था उसकी एक सुंदर झलक मिलती है। डॉ. फ्रेडरिक कहते हैं कि ''जब 1947 में, मैंने श्री अरविंद की द लाइफ डिवाइन पढ़ी तो मैं पूरी तरह से स्पंदित हो गया। लेकिन दार्शनिक, आध्यात्मिक प्रतिभावान, रहस्यवादी, ऋषि या संत शब्द, श्री अरविंद का सही वर्णन नहीं करते हैं। ये मुझमें असंतुष्टि उत्पन्न कर देते हैं, इन शब्दों में बहुत सारे गलत संबंध हैं। लेकिन मैं यह कह सकता हूँ कि इन शब्दों से जुड़ा उच्चतम महत्व केवल इस बात का अंदाजा दे सकता है कि वह वास्तव में क्या है। मैं श्री अरविंद की महानता को केवल इस युग तक सीमित नहीं रखूँगा। हमारे पास प्लेटो, स्पिनोजा, काण्ट और हेगल जैसे दार्शनिक हैं, लेकिन उनके पास वह व्यापक आध्यात्मिक स्वरूप नहीं है, उनके पास वह दृष्टि नहीं है।''[13]

प्राचीन काल से ही भारतीय अध्यात्म ने पश्चिमी संसार को आकर्षित किया है। श्री अरविंद के ऐसे सैकड़ों साधक अनुयायी थे, जो विदेश के थे और हैं। सहभागी अवलोकन के द्वारा श्री अरविंद आश्रम पाँडिचेरी, भोजनकक्ष (प्रसादकक्ष) एवं ऑरोविल नगर में ऐसे कई विदेशी लोगों से सामान्य वार्तालाप किया। इस दौरान फ्रांस के एक युवा साथी लॉरेन्स से मित्रवत् वार्ता की। उन्होंने जो बताया वह श्री अरविंद के व्यक्तित्व का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रभाव की एक झलक प्रदर्शित करता है। लॉरेन्स कहते हैं कि ''श्री अरविंद उनके गुरु हैं, यद्यपि वह उनसे कभी भी भौतिक रूप में कभी भी नहीं मिले।'' ऐसे ही एक अन्य विदेशी हैं, श्री अरविंद शोध पुस्तकालय एवं अभिलेखागार के निदेशक श्रीमान बॉब ज्विकर। श्रीमान बॉब ज्विकर बताते हैं कि 1970 ई. के दशक में वह पाँडिचेरी आए थे और तब से लगभग पिछले पचास वर्षों से वह पाँडिचेरी आश्रम में ही निवास कर रहे हैं। उन्होंने बताया कि भारत की आध्यात्मिक विरासत भारत को महान बनाती है, किंतु श्री अरविंद के अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रभाव के संबंध में वह आशान्वित हैं कि वह समय अभी आना बाकी है। श्रीमान् बॉब के शब्दों में- ''अब तक, श्री अरविंद का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अधिक प्रभाव प्रतीत नहीं होता है, हालाँकि उन्होंने कई व्यक्तियों को प्रभावित किया है, लेकिन शायद अभी

तक उनका समय नहीं आया है। लेकिन भविष्य में, मुझे लगता है कि संसार में उनका प्रभाव और अधिक होगा और उनकी आध्यात्मिक दृष्टि मानवता को उसकी वर्तमान स्थिति से बाहर निकालने में मदद करने के लिए पूर्वनिर्दिष्ट है।''[14] एक अन्य अँतर्राष्ट्रीय प्रभाव की झलक, 22 अक्टूबर, सन 1961 ई. के समाचार पत्र, द टाइम्स ऑफ इंडिया, बम्बई के अंक से मिलती है, जिसमें कनाडा के एक पत्रकार ऑस्टिन डिलेनी का वर्णन है, जिन्होंने श्री अरविंद की शिक्षा से प्रभावित होकर अपना नाम गिरिमूर्ति रख लिया था। आश्रम के संबंध में डिलेनी कहते हैं कि आश्रम ने विश्व एकता का आंदोलन जारी किया है।[15]

श्री अरविंद के जीवन काल के दौरान 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में, उनके साहित्य एवं मानवता विषयक विचारों का विश्व में क्या प्रभाव पड़ रहा था, इसका अंदाजा हम इस बात से लगा सकते हैं कि उनका नामांकन नोबेल पुरस्कार के लिए दो बार किया गया था। श्री अरविंद के पार्थिव शरीर के रहते, 1940वीं ई. एवं 1950वीं ई. के दशक में नोबेल पुरस्कार के लिए उनका नामांकन किया गया था। श्री अरविंद का साहित्य आधुनिक विश्व के लिए पथ प्रदर्शन का काम कर सकता है और विश्व शांति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। इन दो विचारों को ध्यान में रखकर श्री अरविंद का नाम दो बार नोबेल पुरस्कार के लिए नामांकित किया गया। सर्वप्रथम सन 1943 ई. में दिव्य जीवन पुस्तक को फ्रैंसिस यंग हस्बेंड के प्रयास से श्री अरविंद का नाम साहित्य के नोबेल के लिए नामांकित किया गया था।[16] फ्रैंसिस यंग हस्बेंड 'द लाईफ डिवाइन' से इतने मंत्रमुग्ध थे कि उन्होंने इस पुस्तक की प्रशंसा में कह डाला कि ''मैं निष्कपटता से, वास्तविकता में इस पुस्तक को सबसे महानतम किताब मानता हूँ जो मेरे समय में लिखी गई है और मैंने इससे कुछ बहुत ही मूल्यवान बातें सीखी हैं।''[17] उसके बाद सन 1950 ई. के नोबेल के लिए दक्षिण अमेरिका में स्थित चिली की जगत प्रसिद्ध विदुषी साहित्यकार तथा नोबेल पुरस्कार विजेता मैडम गेब्रिल मिस्ट्रैल ने साहित्य के नोबेल के लिए श्री अरविंद के नाम का प्रस्ताव रखा था।[18] उस समय इसका समर्थन अमेरिका की विश्व प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार विजेता लेखिका पर्लबक तथा अन्य महत्वपूर्ण राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तियों के द्वारा किया गया था।[19] किंतु इस समय नोबेल के लिए उनका नामांकन नहीं हुआ था। इसी समय जब साहित्य के नोबेल के लिए श्री अरविंद के नाम का आंदोलन चल रहा था, तब दूसरी बार सन 1950 ई. में भी श्री अरविंद का नाम शांति के नोबेल के लिए नामांकित किया गया था।[20] इन दोनों अवसरों पर श्री अरविंद को यह नोबेल सम्मान नहीं मिल पाया था, लेकिन इसका कदापि यह अर्थ नहीं निकलता की उनकी रचनाएँ और उनका विश्व विषयक कार्य उच्च स्तर का नहीं है। सत्य तो यह है कि श्री अरविंद के द्वारा लिखा गया साहित्य, साधारण चेतना के स्तर से हटकर उच्च स्तर की चेतना में जाकर लिखा गया है। विशेषकर सावित्री महाकाव्य जिसका स्वयं योगिराज ने कई बार चेतना के विकास यात्रा काल में संशोधन किया था।[21] अत: चेतना के निम्न स्तर या भौतिक स्तर पर रहकर ऐसे साहित्यों का मूल्यांकन करना दुष्कर कार्य है,[22] ठीक वैसे ही, जैसे प्राचीन ऋषियों की रचनाएँ, वेद एवं उपनिषद, जिसका सही भावार्थ निकालने के लिए हमें आध्यात्मिक आरोहण में निकलना पड़ता है।

वर्ष 1950 ई. में श्री अरविंद को उनके द्वारा किए गए कार्यों के लिए बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसायटी के द्वारा शांति और संस्कृति के लिए सम्मान दिया गया था।[23] तब चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के सुझाव पर यह सम्मान दिया गया था। इस अवसर पर रॉयल एशियाटिक सोसायटी की ओर से न्यायधीश रामप्रसाद मुखर्जी ने इस सम्मान के लिए श्री अरविंद के नाम की घोषणा करते हुए कहा कि आधुनिक युग के गूढ़ चिंतक ने अति मानसिकता के क्षेत्र में, दार्शनिक विचार, कला, साहित्य, इतिहास एवं विज्ञान की विविध शाखाओं में असाधारण योगदान दिया है।[24]

यह अत्यंत आनंद का विषय है कि वर्तमान में भारत सरकार भी श्री अरविंद के जीवन-दर्शन के महत्व

को स्वीकार करती है, इसीलिए उनकी 150वीं जयंती के अवसर पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक विशेष समिति गठित की थी और इसके साथ-साथ संस्कृति मंत्रालय ने इस अवसर पर साल भर विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया। उनकी 150वीं जयंती वर्ष के अवसर पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने तेरह दिसंबर, 2022 को 150 रुपए का सिक्का और एक डाक टिकट जारी करते हुए[25] कहा कि ''श्री अरविंद का जीवन एक भारत श्रेष्ठ भारत का प्रतिबिंब है। उनका जन्म भले ही बंगाल में हुआ था, लेकिन अपना ज्यादातर जीवन उन्होंने गुजरात और पाँडिचेरी में बिताया था। वे जहाँ भी गए वहाँ उन्होंने अपने व्यक्तित्व की गहरी छाप छोड़ी।''[26] इसके अलावा श्री अरविंद को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय महत्व का व्यक्तित्व स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने उनके सम्मान में एक डाक टिकट 15 अगस्त, सन 1964,[27] एवं 15 अगस्त, सन 1972[28] को जारी किया था।

विश्व के स्वर्णिम भविष्य के लिए श्री अरविंद के चिन्तन का प्रसार :

श्री अरविंद की शिक्षा को मानने वालों में डॉक्टर, प्रोफेसर, वैज्ञानिक, लेखक, व्यापारी, सामान्य व्यक्ति आदि सभी प्रकार के पढ़े-लिखे लोग हैं, जो दिव्यजीवन के लिए प्रयासरत हैं। यहाँ पर एक प्रश्न जो सबसे वाजिब है, वह है कि मानव रूपांतरण, दिव्यजीवन, आध्यात्मिक समाज, पृथ्वी का रूपांतरण, के जो विचार श्री अरविंद ने दिए हैं- इस प्रयास में अभी तक हम सभी, कहाँ तक पहुँचे हैं? सर्वप्रथम सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह विचार ही अपने आपमें अद्भुत है, विशिष्ट है, अद्वितीय है, अपूर्व है। श्री अरविंद के इन्हीं सभी विचारों के प्रसार के निमित्त सन् 1960 में श्री माँ के द्वारा श्री अरविंद सोसायटी की स्थापना पाँडिचेरी में की गई थी। इसके साथ-साथ श्री अरविंद सोसायटी के संसार भर में विभिन्न केंद्र, श्री अरविंद की शिक्षा, साहित्य, दर्शन आदि के प्रसार का कार्य किए जा रहे हैं। श्री अरविंद सोसायटी के विदेशों में स्थित विभिन्न केंद्रों की जानकारी श्री अरविंद सोसायटी, पाँडिचेरी की आधिकारिक वेबसाइट से मिलती है। इसके अलावा दुनिया भर में श्री अरविंद की शिक्षा-दर्शन को समर्पित हजारों केंद्र हैं, जिनकी सही-सही जानकारी पाना संभव नहीं है। श्री अरविंद एवं श्री माँ को समर्पित विदेशों में स्थित कुछ केंद्रों की जानकारी रूस की एक साधिका 'नादेज़्दा' ने दी, जिनका संपर्क मोबाइल नंबर श्री अरविन्द के एक साधक के द्वारा उपलब्ध कराया गया था। 'नादेज़्दा' ने रूस से यह जानकारी ह्वाट्सएप के माध्यम से दी है। 'नादेज़्दा' ने बताया कि रूस में श्री अरविंद एवं श्री माँ की शिक्षा को समर्पित विभिन्न समूह कार्य कर रहे हैं। यह समूह रूस में विभिन्न शहरों में कार्यरत हैं,। इनमें- सेंट पीट्रसबर्ग, लेनिनग्रेड क्षेत्र के गैटचिना में, और योल में, नोवोसिबिर्स्क में, मॉस्को में पाँच से अधिक समूह कार्य कर रहे हैं। रूस की साधिका नादेज़्दा ने यह भी बताया कि कुछ अन्य समूह हैं, जो श्री अरविंद की चेतना के प्रसार के लिए ऑनलाइन भी कार्य करते हैं। इसके अलावा उनकी कई अन्य लोगों से भेंट हुई है, जो बेलारूस से, यूकरेन से, लीथूयानिया से, कजाकिस्तान से, मालदोवा से थे और जो श्री अरविंद एवं श्री माँ की शिक्षा से संबंधित विभिन्न समूहों के साथ या केंद्र के साथ जुड़े हुए हैं। नादेज़्दा के द्वारा दी गई जानकारी विदेश में श्री अरविंद एवं श्री माँ की शिक्षा के प्रभाव की झलक प्रस्तुत करती है। यहाँ पर ऐसे कुछ केंद्रों की सूची दी गई है, जो विदेशों में हैं। इन संपूर्ण केंद्रों को नीचे सारणी में दिया गया है।

श्री अरविन्द सोसायटी के विदेशों में स्थित विभिन्न केंद्र :

क्र.	केंद्र का नाम	स्थिति
1.	श्री अरविंद सोसायटी केंद्र	सिंगापुर
2.	श्री अरविंद सोसायटी केंद्र,वेनहेम	जर्मनी
3.	श्री अरविंद सोसायटी केंद्र,नैरोबी	केनिया
4.	श्री अरविंद सोसायटी केंद्र,प्लैट्सबर्ग	यू.एस.ए.
5.	श्री अरविंद सोसायटी केंद्र,लंदन	यू.के.
6.	श्री अरविंद सोसायटी केंद्र,मोनट्रियल	कनाडा

स्रोत- श्री अरविन्द सोसायटी की आधिकारिक वेबसाइट
https://aurosociety.org/

संसार भर में श्री अरविंद के विभिन्न केंद्रों की सूची के संबंध में मेरे द्वारा, ई-मेल पता site@collaboration.org के माध्यम से जानकरी प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया। ई-मेल से मिले जवाब में https://www.collaboration.org/community/ वेबसाइट का पता दिया गया। इस वेबसाइट में अमेरिका समेत विश्व के विभिन्न श्री अरविंद केंद्रों की विस्तृत सूची दी गई है, जिनका यहाँ पर वर्णन करना विषय को दीर्घ कर देता है। अत: जिज्ञासु पाठक इस वेबसाइट का अवलोकन कर सकते हैं। इस वेबसाइट के माध्यम से हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अमेरिका एवं यूरोप में श्री अरविंद-श्री माँ की शिक्षा को समर्पित विभिन्न केंद्र, ऑनलाइन समूह एवं संगठन कार्य कर रहे हैं। इसके साथ-साथ, ए.आर.एम. (ऑल रशियन मीटिंग) [29] एवं ए.यू.एम. (ऑल यूएए मीटिंग) [30] कुछ ऐसे ही अन्य समूह हैं, जिसमें जुड़े लोग श्री अरविंद एवं श्री माँ की शिक्षा को आत्मसात करके, अपने जीवन को रूपांतरित करके, भावी समाज के निर्माण का कार्य एवं श्री अरविंद एवं श्री माँ के स्वप्न को लक्ष्य तक पहँचाने के लिए निरंतर कार्य कर रहे हैं। वर्तमान में अमेरिका में श्री अरविंद के विचारों का जो व्यापक प्रभाव है, उसका अनुभव वर्ष 1949 ई. में डॉ. फ्रेडरिक स्पीगेलबर्ग के कथन से किया जा सकता है। वर्ष 1949 ई. में डॉ. फ्रेडरिक स्पीगेलबर्ग ने कहा था- ''मुझे लगता है कि हम द लाइफ डिवाइन को इतनी गहनता से अध्ययन नहीं करते हैं, जितना कि इसका अध्ययन किया जाना चाहिए। हममें से कई लोगों के लिए इस पुस्तक ने पूरी तरह से नए क्षितिज खोल दिए हैं। मुझे विश्वास है कि युवा अमेरिकी विचारकों की आने वाली पीढ़ी, व्यापक रूप और गहराई से इससे प्रभावित होगी और आपका नाम एक प्रकाश स्तंभ के रूप में स्थापित होगा। भारत की मेरी हालिया यात्रा पर अन्य किसी ने भी मुझे इतना प्रभावित नहीं किया, जितना कि आपकी उपस्थिति ने।''[31]

निष्कर्ष :

श्री अरविंद का जीवन, दर्शन एवं साहित्य दिव्य जीवन का मार्ग दिखाता है, बस हमें एक कदम उनकी ओर बढ़ाने की देर है और हमें सच्चे अर्थों में उनकी शिक्षा को आत्मसात करने की आवश्यकता है। इन्हीं कारणों से श्री अरविंद का साहित्य, विचार, दर्शन, जीवन, आधुनिक मानव जाति के लिए अत्यंत कल्याणकारी साबित हो सकता है। श्री अरविंद के जीवन, दर्शन को जानने का मुख्य स्रोत है, उनके एवं श्री माँ के द्वारा लिखे गईं पुस्तकें जो विभिन्न भाषाओं में, श्री अरविंद आश्रम पाँडिचेरी के प्रकाशन विभाग से मानव जाति के कल्याणार्थ निरंतर प्रकाशित हो रही हैं, इसके अलावा साधकों, अनुयायियों, जिज्ञासुओं की रचनाएँ भी इस संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण हैं। यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि आजादी के अमृत महोत्सव काल में हम श्री अरविंद की 150वीं जयंती मना रहे हैं, किंतु सच्चे अर्थों में इस महोत्सव की सिद्धि तब होगी, जब घर-घर में प्रत्येक व्यक्ति उनके विचारों को अपने जीवन में आत्मसात करने का संकल्प लेगा। श्री अरविंद की 150वीं जयंती वर्ष के अवसर पर संपूर्ण देश में विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से उनके विचारों को प्रसारित किया जा रहा है। युगों-युगों तक श्री अरविंद का साहित्य, दर्शन, विचार आदि मानवता को सन्मार्ग दिखाती रहेंगी और समस्त मानवजाति श्री अरविंद के द्वारा किए गए कार्य के लिए हमेशा कृतज्ञ रहेगी। 5 दिसंबर, सन 1950 ई. को जब श्री अरविंद ने अपने भौतिक शरीर को त्याग दिया था, तब सहज ही श्री माँ के मुख से श्री अरविंद के लिए हृदयस्पर्शी कृतज्ञता भरे जो शब्द निकले थे और जिन्हें हम पाँडिचेरी में स्थित श्री अरविंद और श्री माँ की संयुक्त समाधि में खुदा हुआ पढ़ सकते हैं। उन शब्दों को ज्यों-का-त्यों यहाँ पर लिखकर हम श्री अरविंद के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए इस शोध आलेख को यहीं पर समाप्त करते हैं, ''तुम्हारे प्रति जो हमारे प्रभु के भौतिक आवरण रहे हों, तुम्हारे प्रति हमारी असीम कृतज्ञता है। तुमने हमारे लिए इतना कुछ किया, हमारे लिए कर्म किया है, संघर्ष किए हैं, कष्ट उठाया है, आशा की है, बहुत कुछ सहन किया है, तुमने हम सबके लिए संकल्प किए, प्रयत्न किए, तैयार किए, हमारे लिए सब कुछ प्राप्त किया, तुम्हारे सामने हम नतमस्तक हैं और यह प्रार्थना करते हैं कि हम एक पल के लिए भी कभी तुम्हारे ऋण को नहीं भूल सकते हैं।''[32] ❑

संदर्भ सूची :

1. सी.डब्लू.एम., 2004, वो. 13, प्रकाशक श्री अरविंद पब्लिकेशन डिपार्टमेंट, पाँडिचेरी, पृ. 4
2. श्री अरविंद, 2007, अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद (पं. रामे!वर प्रसाद मालवीय), भारत का पुनर्जन्म (श्री अरविंद के लेखों, वार्तालापों और भाषणों से संकलित), द मदर्स इंस्टीट्यूट ऑफ रिसर्च, नई दिल्ली और मीरा अदिति, मैसूर, द्वितीय संस्करण, पृ. 272
3. श्री अरविंद सोसायटी,पाँडिचेरी, मेम्बरशिप एप्लिकेशन फार्म
4. बृहदारण्यकोपनिषद, संवत् 2052, प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर, 7वाँ संस्करण, पृ. 155,156
5. सी.डब्लू.एस.ए.,1997,वो. 33 एवं 34, प्रकाशक श्री अरविंद पब्लिकेशन डिपार्टमेंट,पाँडिचेरी, पृ0 699
6. द न्यूयार्क टाइम्स बुक रिव्यू,10 जून, 1951
7. द न्यूयार्क टाइम्स बुक रिव्यू,13 अगस्त, 1950
8. द न्यूयार्क टाइम्स बुक रिव्यू,10 जून, 1951
9. समाचार पत्र, अमृत बाजार पत्रिका, शनिवार 23 जुलाई, सन् 1949
10. पूर्वोक्त
11. पूर्वोक्त
12. पूर्वोक्त
13. मदर इंडिया, 30 अप्रैल,1949, पृ0 5, https://www.sriaurobindoashram.org/journals/motherindia/
14. सक्षात्कार, श्री बाँब ज्विकर, निदेशक- श्री अरविंद शोध पुस्तकालय एवं अभिलेखागार, पाँडिचेरी, आयु 76 वर्ष,10 दिसंबर, 2022
15. समाचार पत्र, द टाइम्स ऑफ इंडिया, बम्बई, 22 अक्टूबर,1961
16. दिनांक 17 दिसम्बर,1941 का फ्रैंसिस हस्बैंड का पत्र दिलीप राय के नाम, मदर इंडिया, 15 अगस्त 1975 से उद्धृत, पृ. 623 एवं हीह्स,पीटर, 2008, द लाईफ्स ऑफ श्री आरोबिन्दो, कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, पृ. 388
17. दिनांक 17 दिसंबर,1941 का फ्रैंसिस हस्बैंड का पत्र दिलीप राय के नाम, मदर इंडिया, 15 अगस्त 1975 से उद्धृत, पृ. 623, https://www.sriaurobindoashram.org/journals/motherindia/
18. समाचार पत्र- अमृत बाजार पत्रिका, सोमवार, 6 जून, सन् 1949 एवं द इंडियन एक्सप्रेस,सोमवार, 25 जुलाई, सन् 1949 एवं नवयुग, दिल्ली, 25 अगस्त, सन् 1949
19. समाचार पत्र- अमृत बाजार पत्रिका,सोमवार, 6 जून, सन् 1949 एवं नवयुग, दिल्ली, 25 अगस्त, सन् 1949 एवं मदर इंडिया, 3 सितंबर, 1949, पृ. 5
20. हीह्स, पीटर, 2008, द लाईफ्स आफ श्री आरोबिन्दो,पृ. 404 एवं समाचार पत्र, द हिंदू , बुधवार, 1 मार्च ,सन् 1950
21. शिवदास,1988,सावित्री-सौरभ, सिद्धलोक प्रकाशन देहरादून, पृ. 15
22. पूर्वोक्त
23. समाचार पत्र- अमृत बाजार पत्रिका, सोमवार एवं बुधवार, 6 एवं 8 फरवरी, सन् 1950
24. पूर्वोक्त
25. https://postagestamps.gov.in/Stamps_List.asp&
26. प्रधानमंत्री भारत सरकार, नरेंद्र मोदी का आधिकारिक यूट्यूब चैनल https://www.youtube.com/watch?v=Uv-AwSYnAMo
27. https://postagestamps.gov.in/Stamps_List.aspx
28. पूर्वोक्त
29. विदेशी साधिका, नादेज़्दा, रूस, ह्वाट्सएप द्वारा संदेश, रविवार 7 अगस्त, 2023
30. https://www.collaboration.org/aum/, ई-मेल से प्राप्त वेबसाइट का पता
31. मदर इंडिया, 17 सितम्बर, 1949, पृ. 2, https://www.sriaurobindoashram.org/journals/motherindia/
32. मदर इंडिया, दिसंबर 1950, https://www.sriaurobindoashram.org/journals/motherindia/

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

फणीश्वरनाथ रेणु और महिम बोरा के उपन्यासों में चित्रित कृषक जीवन

('मैला आँचल' और 'एधानी माहीर हाँहि' के विशेष संदर्भ में)

अंचल कुमारी राय

शोधार्थी (हिंदी विभाग)
कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी (असम)-781001
मो. 7002125738

शोध-सार :

आंचलिकता परिवेश-सूचक शब्द है। यही कारण है कि आंचलिक उपन्यासों में व्यक्ति और समाज को विशेष महत्व दिया जाता है। आंचलिक उपन्यास मुख्यत: ग्रामीण जीवन से संबंधित होते हैं। इन उपन्यासों में ग्राम्य अंचल की लोक-संस्कृति, जन-जीवन, भाषा, रहन-सहन तथा उन्मुक्त परिवेश का चित्रण रहता है। ग्राम्य अंचल में जीवन निर्वाह के लिए लोगों को कृषि पर ही निर्भर रहना पड़ता है। खेती-बाड़ी कर जीवन यापन करने वालों की स्थिति बहुत ही दयनीय होती है। ग्रामीण लोग अत्यंत श्रमी होते हैं। उनके दिन की शुरुआत श्रम से होती है तथा अंत भी श्रम से ही होता है। वे तड़के उठते ही अपने काम-काज में लग जाते हैं। वे समय के मूल्य को समझते हैं, इसी कारण अपना हर काम समय पर पूर्ण कर लेते हैं। वे वैशाख-ज्येष्ठ की कड़कती धूप, आषाढ़-श्रावण की मूसलाधार बारिश तथा अगहन-पूस की कनकनाती ठंड में भी अपना काम समय पर पूर्ण करते हैं। उनको देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो उनका शरीर पत्थर से निर्मित हो, जिसे गर्मी पिघला नहीं सकती, वर्षा बहा नहीं सकती तथा ठंड उसे क्षति पहुँचा नहीं सकती। किसान का जीवन दो हिस्सों में बँटा होता है- एक उनका परिवार तथा दूसरा उनके खेत-खलिहान। दोनों के साथ उनका घनिष्ठ संबंध होता है। फणीश्वरनाथ रेणु और महिम बोरा के उपन्यासों में कृषि को विशेष महत्व दिया गया है। दोनों के उपन्यासों में गाँव की गरीबी का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है तथा उनकी आर्थिक स्थिति को दिखलाया गया है। प्रस्तुत शोध-आलेख के माध्यम से रेणु कृत 'मैला आँचल' और बोरा कृत 'एधानी माहीर हाँहि' उपन्यास में चित्रित कृषक जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द :

गाँव, जन-जीवन, कृषि, श्रम, खेती-बाड़ी आदि।

'मैला आँचल' नामक उपन्यास में फणीश्वरनाथ रेणु जी ने बिहार राज्य के पूर्णिया जिले का वर्णन प्रस्तुत किया है। यह गाँव तैराहट स्टेशन से सात कोस पूरब में स्थित है। कमला नदी की धारा भी पूरब में ही प्रभावित होती है। बरसात के मौसम में यहाँ चारों तरफ पानी ही पानी दिखलाई पड़ता है। अन्य मौसम में कमला नदी की धारा थम-सी जाती है अर्थात् सुख जाती है तथा रेत के गड्ढों में जगह-जगह जल कुंड बन जाते हैं। यह गाँव हर क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। यहाँ के अधिकांश लोग अशिक्षित हैं। यहाँ के लोग गरीबी में जीते हैं। कठिन परिश्रम के बाद भी इनकी आर्थिक स्थिति नहीं सुधरती। गाँव में मुख्यत: तीन दल हैं - राजपूत, कायस्थ और यादव। राजपूतों के मुखिया राम किरपाल सिंह, कायस्थों के विश्वनाथ प्रसाद और यादवों के रामखेलावन यादव हैं। ब्राह्मण तीसरी शक्ति का काम करते हैं। राजपूत और कायस्थ संपन्न हैं। दोनों मिलकर पूरे गाँव का शोषण करते हैं। यहाँ हमें यह देखने को मिलता है कि निम्न वर्ग के लोगों को सर्वदा उच्च वर्ग के लोगों के शोषण का शिकार होना पड़ता है। यहाँ की शोषित-पीड़ित जनता जीवन भर संघर्ष करती रहती है। वह जीवन भर जमींदारों का क्रूर उत्पीड़न को सहती है तथा उनके कर्ज तले डूबी रहती हैं। यहाँ सबसे अधिक शोषित और दलित संथाल ही हैं। यहाँ संथालियों को भी शोषित रूप में दिखलाया गया है।

यहाँ हमें यह देखने को मिलता है कि कोई भी बात गाँव में हवा की तेजी की तरह फैल जाती है। गाँव में मलेरिया सेंटर खुलवाने की बात चलती है। ग्रामीण लोग बिना कुछ जाने ही गाँव में विभिन्न प्रकार की अफवाह फैलाने लगते हैं। यहाँ के अधिकतर लोग अशिक्षित हैं, इसी करण इनको सही-गलत की समझ कम है। वे बिना कुछ सोचे ही किसी की भी बातों में आ जाते हैं तथा जैसा उनसे करने के लिए कहा जाता है, वे वैसा करने के लिए तुरंत ही तैयार हो जाते हैं। यहाँ के लोग कृषि पर ही निर्भर हैं। कृषि ही उनके अर्थ उपार्जन का एकमात्र साधन है। *'गाँव की मुख्य पैदावार है धान, पाट और खेसारी। रब्बी की फसल भी कभी-कभी अच्छी हो जाती है।"* किसान अपने खेतों में जी जान लगाकर मेहनत करते हैं। यहाँ तक की रोपनी-कटनी के अवसर पर वे खाना-पीना तक को त्याग देते हैं। उनका मानना है कि यदि सही समय पर रोपनी-कटनी नहीं की जाएगी तो हवा-वर्षा-तूफान से फसल खराब भी हो सकती है। इसी कारण वे अपने शरीर पर ध्यान देने के बजाए अपने फसलों पर ही विशेष ध्यान देते हैं। उनका मानना है कि अगर फसल अच्छी होगी तो पूरा साल सुखदायक होगा।

गाँव में चारों और हरियाली ही हरियाली दिखती है। यहाँ का वातावरण भी स्वच्छ और मनमोहक लगता है। *'गेहूँ की काटनी हो रही है। झुनाई हुई रब्बी की फसल की सोंधी सुगंध चारों ओर फैल रही है।'*[2] सुनहली गेहूँ की बालियों को देखकर किसानों की आँखें चमक उठती हैं। वे गुनगुनाते हुए, हँसी-ठिठोली करते हुए हँसी-खुशी अपने-अपने कामों को करते रहते हैं। वे अपने खेतों में काम करने से कभी भी पीछे नहीं हटते। वे तड़के उठते ही अपने काम-काज में लग जाते हैं। वे कठिन परिश्रमी होते हैं। वे गंदे गड्ढों, कीचड़, धूल-मिट्टी आदि में काम करने से तनिक भी नहीं कतराते। उनका खान-पान भी साधारण होता है। *'यहाँ के लोग सुबह को बासी भात खाकर, पाट धोने के लिए गंदे गड्ढों में घुसते हैं और करीब सात घंटे तक पानी में रहते हैं। गंदे गड्ढों को देखने से ऐसा लगता है कि पानी में आध इंच धरातल की जाँच करने पर एक लाख से ज्यादा मच्छर के अंडे जरूर पाए जाएँगे।'*[3] वे कीड़े-मकोड़े, साँप-बिच्छू इत्यादी से नहीं डरते। उनका मानना है कि जो नसीब में लिखा होगा वही होगा। वे धूल, मिट्टी, कीचड़ से तनिक भी घृणा नहीं करते।

गाँव के लोग कृषि को विशेष महत्व देते हैं। खेती के मौसम में जब सुखा पड़ जाता है, तब वे लोग इंद्रदेव से वर्षा के लिए प्रार्थना करते हैं तथा जाट-जाटिन का खेल-खेलकर वर्षा की गुहार लगाते हैं। उनका मानना है कि ऐसा करने से इंद्रदेव प्रसन्न होकर बारिश करते हैं। बाढ़ के कारण भी खेती-बाड़ी में काफी नुकसान होता है, परंतु कभी-कभी लाभ भी होता है। जब भी यहाँ बाढ़ आती है, तब कोशी-गंगा किनारे की हजारों बीघा जमीन पानी में डूब जाती है। जब वहाँ का पानी सुखता है, तब उस जमीन पर खेती की जाती है। वहाँ की फसलों को देखकर ऐसा लगता है मानो धरती माँ सोना उगलती हो। *'बाढ़ का पानी हटा और कीचड़वाली धरती पर चना, खेसारी, मटर, सरसों, उरद वगैरह छींट दिया। बस छींटने में जितनी मेहनत लगे। कोशी और गंगा के पानी से नहाई हुई धरती माता दिल खोलकर अपना धन लुटा देती है।'*[4]

इस गाँव में कई नामी किसान भी हैं, जिनके पास बीघा की बीघा जमीन है। कुछ लोग दिल खोलकर दान करते हैं तो कुछ लोग दिल खोलकर आम जनता का शोषण करते हैं। जिला कांग्रेस का सबसे बड़ा लीडर शिवनाथ चौधरी भी किसान है। भोला बाबू जिले का सबसे बड़ा किसान है, जिनके पास तीस हजार बीघा जमीन है तथा रहुआ इस्टेट के गुरुबंशीबाबू भी किसान है। इनकी बात निराली है। इनको दाता कर्ण के नाम से जाना जाता है। गुरुबंशीबाबू दिल खोलकर दान-पुण्य करते हैं। निम्न वर्ग के लोगों का शोषण सर्वदा उच्च वर्ग के लोगों द्वारा होते आया है। तहसीलदार के खेत में काम करने वाले मजदूरों को मजदूरी भी नहीं मिलती है। मजदूर खून-पसीना एक करके काम करते हैं। बदले में उनको मजदूरी भी नहीं मिलती है। एक तो उनकी आर्थिक स्थिति पहले से ही खराब रहती है तथा मजदूरी न मिलने पर उनके भूखे मरने तक की नौबत आ जाती है। गाँव में महँगाई दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है। महँगाई बढ़ने से गाँव में तीन ही व्यक्तियों को फायदा हो रहा है - तहसीलदार साहब, सिंघ जी और खेलावन सिंह यादव को। गरीब जनता की आर्थिक स्थिति दिन-ब-दिन नाजुक होती जा रही है। *'छोटे छोटे किसानों की जमीनें कौड़ी के मोल बिक रही हैं। मजदूरों को सवा रुपए रोज मजदूरी मिलती है, लेकिन एक आदमी का भी पेट नहीं भरता। पाँच साल पहले सिर्फ पाँच आने रोज मजदूरी मिलती थी और उसी में घर-भर के लोग खाते थे।'*[5] गाँव में राजनीतिक दल अपना पलड़ा भारी करने के लिए भरसक प्रयास करते हैं। वे अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार रहते हैं। *'कांग्रेस और सुशलिंग अपने में लड़ रहे हैं। दोनों अपना-अपना मेंबर बनाना चाहते हैं। चक्की के दो पाट में गरीब लोग पीस जाएँगे।'*[6] राजनीतिक दल के चक्कर में पड़कर किसान वर्ग सर्वदा जूझते रहते हैं।

'एधानी माहीर हाँहि' नामक उपन्यास में एक ऐसे अंचल का वर्णन किया गया है, जहाँ जीवन यापन के लिए लोगों को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वहाँ के लोग आपस में मेल-मिलाप के साथ रहते हैं तथा किसी भी परिस्थिति में खुद को ढाल लेने में

सक्षम होते हैं। एधानी माहीर हाँहि उपन्यास की मुख्य नारी पात्र है। वह किसी भी परिस्थिति में खुद को ढाल लेने में सक्षम है। वह घर-गृहस्थी के साथ-साथ खेती-बाड़ी को भी संभालती है। वह कुआँ से पानी निकालकर घर-गृहस्थी के सभी कार्य करती है। वह प्रत्येक काम समय पर करती है तथा साफ-सफाई का विशेष ध्यान रखती है। वह अपने घर-आँगन को हमेशा गोबर से लिपकर साफ-सुथरा करके रखती है। घर के बाहर खेती-बाड़ी का काम-काज सर्वदा होते रहता है। वह देउकण को अपने बेटे से भी ज्यादा प्यार करती है। देउकण उसकी दीदी का बेटा है। उसके गाँव में स्कूल घर से बहुत दूरी पर था तथा यातायात की भी सुविधा नहीं थी, जिसके कारण उसे अपने नाना-नानी के यहाँ रहकर पढ़ाई करनी पड़ रही थी। देउकण के पिता लोकल बोर्ड के शिक्षक थे। खेती ही उनके उपार्जन का एकमात्र साधन था। लोकल बोर्ड के शिक्षक को पेंशन नहीं मिलता था। वे खेती-बाड़ी करके अनाज उपजाते हैं तथा साल भर के लिए अनाज रखकर बाकी अनाज को बेचकर अपनी तथा अपने परिवार की जरूरतों को पूरा करते हैं।

मिता मामा एक प्रतापी किसान हैं। उनके पास खेती-बाड़ी की कमी नहीं है। उनके घर के चारों तरफ विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे, फल-मूल, साग-सब्जी इत्यादि लगे हुए हैं। एक दिन वे नरमामा से कहते हैं कि देउकण को उनके यहाँ ईख पेराने के समय लेकर आए ताकि देउकण को ईख का रस, गुड़ जी भर खिला सकें। *'कूँहियार पेड़ार हमयत जाबलोई कइसिल, रह, मीठा, तेलेकीया गुर जिमान खाबो पारू खुवाब।'*[7] (भावार्थ : ईख पेराते समय जाने को कहा था, रस, मीठा, लसदार गुड़ जितना खा सकूं खिलाएँगे।)

मुकुंद मामा का परिवार भी कृषि पर ही निर्भर करता है। उनका बड़ा लड़का दीपक टाउन में मारवाड़ी महाजन के यहाँ गाँव से अनाज जैसे मरापाट (पटसन), माह (उड़द दाल), हरिह (सरसों) ले जाकर बेचता है तथा छोटा बेटा देवेन पढ़ाई-लिखाई छोड़कर खेती-बाड़ी करता है। वे अपनी घर-गृहस्थी को सुचारू रूप से चलाने के लिए कठिन-से-कठिन परिश्रम करते हैं।

ग्रामीण लोग अपने गाय-बैलों की देख-रेख बहुत ही अच्छे ढंग से करते हैं। वे उनके दाना-पानी का ध्यान रखते हैं। नरमामा भी अपने गाय-बैलों का ध्यान अच्छे से रखते हैं तथा दाना में नमक मिलाकर खिलाते हैं। *'हकलू खेतियकके निमख बेसिके लागे। बहुतेई नगरर डांगर दुकानीर परा ब्लेक मार्केटत पाँस टकार परा दह टकलई हेरे दि निमख किनिसे, गरूर कारने।'*[8] (भावार्थ : सभी किसान को नमक ज्यादा लगता है। बहुत तो नगर के बड़े दुकानी से ब्लैक मार्केट में पाँच रुपए से दस रुपए तक देकर नमक खरीदते हैं बैल के लिए) पहले नरमामा पर खेती-बाड़ी घर-गृहस्थी की जिम्मेदारियाँ कम थीं, परंतु आजकल जब कभी वे कहीं निकलकर जाते हैं, तब उनको बैल-गाय, खेत-खलिहान का काम समाप्त करने के साथ-साथ रसोई का सामान भी देकर जाना पड़ता है। नरमामा अब घर-गृहस्थी, खेती-बाड़ी के साथ-साथ गाय-बैलों को भी संभालते हैं।

ग्रामीण लोगों को जीवन में विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पानी की असुविधा इनके जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। वे कुआँ से पानी निकालकर अपने सभी कार्य करते है। गाँव में कुआँ भी कम ही होता है। वे सरकारी कुआँ के पानी से ही अपना गुजारा करते हैं। *'सरकारी कुँवार पानीरे घरर हकलु काम। कुँआटूउ गाँवर माजत।... घरत केंसा कुँआ, माटि खहि जाय, पानी खरालित नाथाकेए। बारिखा घुला पानी।'*[9] (भावार्थ : सरकारी कुआँ के पानी से घर का सभी काम होता है। कुआँ भी गाँव के बीच में है। घर में कच्चा कुआँ है, माटी ढल जाता है, पानी खराली में नहीं रहता। वर्षा घुला पानी।)

रेणु और बोरा के उपन्यासों में चित्रित कृषक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन :

समानता :

✦ दोनों के उपन्यासों में हमें बाढ़ की समस्या देखने को मिलती है। बाढ़ के कारण किसानों की फसलें खराब हो जाती हैं। वे अपना खून-पसीना एक करके अपने खेतों को सींचते हैं ताकि फसल अच्छी हो।

✦ दोनों के उपन्यासों में यातायात की समस्या हमें देखने को मिलती है। ग्रामीण लोग एक स्थान से दूसरे

स्थान जाने के लिए साईकल, बैलगाड़ी का प्रयोग करते हैं। इतना ही नहीं, उन्हें बहुत दूर पैदल चलकर भी जाना पड़ता है। दूर की यात्रा के लिए वे बस या रेल से जाते हैं। बस में किराया ज्यादा लगने के कारण वे रेल से जाना ही पसंद करते हैं।

✦ दोनों के उपन्यासों में हमें यह देखने को मिलता है कि ग्रामीण लोग घरेलू काम-काज के लिए कुएँ के जल का प्रयोग करते हैं। इनके उपन्यास में हमें पानी की समस्या देखने को मिलती है।

✦ दोनों के उपन्यासों में नारी को घर गृहस्थी के साथ-साथ खेती-बड़ी को संभालते भी दिखलाया गया है।

✦ दोनों के उपन्यासों में हमें यह देखने को मिलता है कि ग्रामीण लोगों के मन में डॉक्टर तथा डॉक्टरी दवा के प्रति गलत धारणा रहती है।

असमानता :

✦ रेणु के उपन्यासों में हमें जमींदारों और किसानों का संघर्ष देखने को मिलता है। रेणु के उपन्यास में सर्वदा किसानों का शोषण जमींदारों द्वारा किया गया है। किसान चाहकर भी कुछ नहीं कर पाते, क्योंकि वे मजबूर होते हैं। किसान वर्ग सर्वदा संघर्ष करते रहते हैं, परंतु उनके हाथ कुछ भी नहीं आता है। बरा के उपन्यास में हमें किसानों और जमींदारों के बीच का संघर्ष देखने को नहीं मिलता। यहाँ किसान वर्ग अपने जीवन की समस्याओं से ही जूझते रहते हैं।

✦ रेणु के उपन्यासों में किसान वर्ग को कुछ हद तक उन्नत दिखलाया गया है, क्योंकि वे अपनी खेतों में जुताई-बोआई के लिए ट्रैक्टर का प्रयोग करते हैं। वहीं दूसरी ओर बरा के उपन्यास में किसान वर्ग जुताई-बोवाई के लिए बैल का सहारा लेते हैं। खेतों की जुताई के लिए उनको बहुत मेहनत करनी पड़ती है।

निष्कर्ष :

हमें यह देखने को मिलता है कि दोनों के उपन्यासों में कृषक जीवन एक-सा ही है। वे अपना जीवन यापन करने के लिए खेती-बाड़ी पर निर्भर हैं। इनकी आर्थिक स्थिति दयनीय है। खेती-बाड़ी के क्षेत्र में अन्य देश काफी उन्नत हैं, परंतु हमारा देश ज्यादा उन्नत नहीं है।

विदेशों में आधुनिक मशीनों, यंत्रों की सहायता खेती-बाड़ी की जाती है, परंतु यहाँ लकड़ी के हल से ही काम निकाला जाता है, जिसके फलस्वरूप मेहनत ज्यादा से ज्यादा करनी पड़ती है तथा समय भी ज्यादा लगता है। कठिन परिश्रम के बाद भी उनको उचित फल नहीं मिलता। वे कठिन परिश्रम करके खेतों में अनाज उपजाते हैं, परंतु जब वे अपना अनाज बेचते हैं, तब उनको अपने अनाज की उचित कीमत भी नहीं मिलती। मजबूरी में उनको अनाज कम लागत पर ही बेचना पड़ता है। उनका जीवन गरीबी से आरंभ होकर गरीबी में ही बीतता है। वे सर्वदा अपनी इच्छाओं का दमन करते हैं। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. रेणु, फणीश्वरनाथ, 'मैला आँचल', नौवाँ संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ. 16
2. पूर्ववत्, पृ. 139
3. पूर्ववत्, पृ. 150
4. पूर्ववत्, पृ. 72
5. पूर्ववत्, पृ. 117
6. पूर्ववत्, पृ. 121
7. बोरा, महिम, 'एधानी माहीर हाँहि', तीसरा संस्करण, डिब्रूगढ़-1 : बनलता प्रकाशन, 2018, पृ. 32
8. पूर्ववत्, पृ. 65
9. पूर्ववत्, पृ. 26

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

भारत का स्वतंत्रता संग्राम और पत्रकारिता

(वर्ष 1919 से 1947 के विशेष संदर्भ में)

सीमा

शोधार्थी, इतिहास विभाग
मुलतानीमल मोदी पी.जी. कॉलेज
मोदीनगर गाजियाबाद (उ.प्र.)
मो. 9105050556
ई-मेल : seemasingh21041990@gmail.com

डॉ. सुनीता सिरोही

एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास विभाग)
मुलतानीमल मोदी पी.जी. कॉलेज
मोदीनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)-201206

शोध सार :

पत्रकारिता ने भारत के स्वाधीनता संग्राम में अहम भूमिका निभाई थी। उस स्वाधीनता संग्राम को दिशा और आईना दिखाने का महत्वपूर्ण कार्य मुख्यत: पत्रकारिता ने ही किया। तब पत्रकारिता व्यवसाय नहीं, मानसिक वृत्ति थी, इसलिए पत्रकारों ने हर प्रकार की कीमत देकर आजादी की जंग को जारी रखा। मानसिक व शारीरिक उत्पीड़न सहन किया, घरों की कुर्की, जेल गए, कोड़े खाए, काले पानी की सजा, फाँसी पर चढ़े। पता नहीं और क्या-क्या सहन किया? तब पत्रकारिता राष्ट्रभक्ति का दूसरा नाम था। पत्र, पत्रिकाएँ, लेख, भाषण व मौखिक अभिव्यक्ति की तब एक ही दुश्मन थी-ब्रिटिश हुकूमत। एक ही देश था-हिंदुस्तान। एक ही माँ थी-भारत माता। एक ही लक्ष्य था-आजाद भारत। इन सब उद्देश्यों की पूर्ति का एक ही रास्ता अपनाया गया वह था-पत्रकारिता।

कुंजी शब्द :

भारत, पत्रकारिता, स्वाधीनता संग्राम, जेल, आजादी, राष्ट्रभक्ति, पत्र, पत्रिकाएँ आदि।

प्रस्तावना :

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में पत्रकारिता की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वतंत्रता सेनानियों ने पत्रकारिता के माध्यम से अपने विचारों तथा भारत की आजादी की जंग को जन-जन तक पहुँचाया। स्वतंत्रता संग्राम में समाचार पत्रों और पत्रिकाओं ने अंग्रेजी सरकार से जमकर लोहा लिया और अंतत: उन्हें देश छोड़ने पर विवश कर दिया। औपनिवेशिक भारत में संचार के साधन इतने विकसित नहीं थे, इसलिए समाचार पत्रों, लेखों, पत्रिकाओं के माध्यम से ही सूचनाएँ या खबर, जन-जन तक पहुँचाई जाती थीं। बात चाहे 'नया हिन्दुस्तान' के संपादक शिवदान सिंह चौहान की हो, 'क्रांति' के संपादक राजाराम शास्त्री की, 'विप्लव' समाचार पत्र के संपादक यशपाल की, या फिर महात्मा गांधी की हो, पंडित जवाहर

लाल नेहरू, रवीन्द्रनाथ टैगोर, मदन मोहन मालवीय, माखन लाल चतुर्वेदी, या फिर गोपाल कृष्ण गोखले की, सभी ने पत्रकारिता को माध्यम बनाकर ही अपने विचारों का संप्रेषण किया। स्वतंत्रता सेनानियों और पत्रकारों ने अनेक संकटों, बाधाओं और यातनाओं को झेलते हुए भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अपनी गौरवपूर्ण भूमिका निभाई।

उद्देश्य व महत्व :

- भारत के स्वतंत्रता संग्राम में समाचार पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका व योगदान का अध्ययन करना।
- पराधीन भारत से स्वाधीन भारत की यात्रा में समाचार पत्रों व पत्रिकाओं के गौरवमयी इतिहास से जन-सामान्य को परिचित कराना।

शोध पद्धति :

शोध पत्र 'भारत का स्वतंत्रता संग्राम और पत्रकारिता (1919 से 1947) तक' के विशेष संदर्भ में को लिखने के लिए विवेचनात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है, जिसमें, पुस्तकें, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ व शोध पत्र आदि शामिल हैं।

विश्लेषण :

डेढ़ सौ वर्षों तक ब्रिटिश राज की गुलामी में रहने वाले इस देश के दिल और दिमाग को सही राह पत्रकारिता ने दिखाई। उसने यहाँ की जनता का राजनीतिक संस्कार किया। वर्षों से जड़ जमाकर बैठी हुई सामाजिक बुराइयों को निकाल बाहर करने की कोशिश की। समाज सुधार की नई-नई राहें निकालीं। उस समय पत्रकारिता नेतृत्व भी कर रही थी और सलाह भी दे रही थी। उस समय कोई भी जातिभेद, धर्मभेद या भाषाभेद नहीं रखता था। लोग हर कीमत पर भारत की आजादी के लिए जंग लड़ना चाहते थे। गाँव, प्रांत, जिला, शहर, देश, विदेश, से उनकी अपनी प्रांतीय, क्षेत्रीय, देशी, विदेशी भाषा में जो भी दो-चार पन्नों का समाचार पत्र निकलता वह ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देने से बाज नहीं आता था। संघर्ष में पनपती यह राष्ट्रभक्ति, नैतिकता और हिम्मत, तिलक, अंबेडकर, गांधी व लाला लाजपत राय जैसे

> पत्रकार कर्ज लेकर, अपनी संपत्ति दाँव पर लगाकर पत्र-पत्रिका निकाल रहे थे। वह इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि कभी भी उनका अखबार ब्रिटिश सरकार का शिकार हो सकता है। इन सब परेशनियों को सहते हुए पत्रकारों ने ब्रिटिश सरकार का डटकर सामना किया। आत्मसमर्पण जैसा शब्द उनके शब्दकोश में नहीं था। पत्रकारिता को स्वतंत्रता आंदोलन से अलग करके नहीं देखा जा सकता।

नेताओं की देन थी। देशप्रेम, राष्ट्रभाव, राष्ट्रभक्ति व नैतिक साहस का पूरे समाज में फैलता यह दौर इन सभी नेता स्वरूप-पत्रकारों की ही देन थी। स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास एक दृष्टि से पत्रकारिता का ही इतिहास है।[1]

महात्मा गांधी की पत्रकारिता ने देश के स्वराज आंदोलन राष्ट्रभाव के विकास तथा राष्ट्रीय जागरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जिसके संबंध में पंडित माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा है कि ''गांधी से महान संपादक कदाचित् इस देश में पैदा नहीं हुआ।'' जिस दिन हमने महात्मा गांधी को खोया उसी दिन सारी पत्रकारिता देशभक्ति के धर्म से हटकर राजनीति का जकड़-व्याल हो गई।

''इंडियन ओपिनियन मेरे जीवन का निचोड़ है और इसने हिंदुस्तानी समाज की अच्छी सेवा की है। इस अखबार के बिना सत्याग्रह, स्वराज की लडाई चल नहीं सकती थी।'' [2]

-सत्य के प्रयोग, आत्मकथा महात्मा गाँधी

'इंडियन ओपिनियन ', 'यंग इंडिया', 'नवजीवन', 'सत्याग्रह', 'हरिजन'- ये कागज के चंद पन्ने नहीं थे, बल्कि इनमें धड़कती थी हिंदुस्तान की आत्मा और करोड़ों

भारतीयों की भावनाएँ। गांधी जी ने अपने हर अभियान की योजना लोगों तक पहुँचाने के लिए पहले उसके बारे में लेख और टिप्पणियाँ लिखे, लोगों की प्रतिक्रियाएँ जानीं और उनका समाधान किया। जनमानस को समझने और समझाने की इससे सरल लोकतांत्रिक प्रक्रिया और क्या हो सकती थी।

'नवजीवन' का उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति है। संपादक का पद आजीविका के लिए, नहीं बल्कि केवल लोक सेवा के लिए है।[3] *(नवजीवन अखबार-21/11/1924)*

यद्यपि महात्मा गांधी ने डरबन में करीब दस वर्ष तक (इंडियन ओपिनियन 1903) का संपादन किया, किंतु भारत में उनकी पत्रकारिता यंग इंडिया (8 अक्टूबर 1919), नवजीवन (7 सितंबर, 1919), (सत्याग्रह 7 अप्रैल, 1919) से परवान चढ़ी। परंतु हरिजन (11 फरवरी, 1933) एक प्रकार से उनके विचारों की अभिव्यक्ति और प्रसार का अधिकृत माध्यम बना। 4 फरवरी, 1932 को यंग इंडिया और नवजीवन का प्रकाशन बंद हो गया। फरवरी, 1933 से साप्ताहिक 'हरिजन' का एक-एक अंक साक्षी है कि भारत की आजादी, सामाजिक उत्थान और जन जागृति के हर पहलू पर गांधी जी ने किस तरह लड़ाई लड़ी और पूरे समाज में नई चेतना का संचार किया।

स्वतंत्रता के प्रति एक वातावरण बनाने के लिए पंडित विष्णुदत्त शुक्ल और पंडित माधव राव सप्रे की प्रेरणा से जबलपुर से 17 जनवरी, 1920 को साप्ताहिक समाचार पत्र 'कर्मवीर' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। संपादन का दायित्व पंडित माखन लाल चतुर्वेदी को सौंपा गया। इस समय पत्रकारिता से अंग्रेजी शासन काफी भयभीत था।[4] समाचार-पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन को प्रतिबंधित करने के लिए तमाम प्रयास प्रशासन ने कर रखे थे। यदि किसी को भारतीय भाषा में समाचार पत्र प्रकाशित करना है तो उनका अनुमति पत्र जिला मजिस्ट्रेट से प्राप्त करना होता था। अनुमति पत्र प्राप्त करने से पहले समाचार-पत्र के प्रकाशन का उद्देश्य स्पष्ट करना होता था। इसी संदर्भ में जब जिला मजिस्ट्रेट ने पंडित चतुर्वेदी से पूछा कि एक अंग्रेजी साप्ताहिक समाचार पत्र होते हुए भी आप हिंदी साप्ताहिक क्यों निकालना चाह रहे हैं, तब दादा माखनलाल ने बडी स्पष्टता से कहा - **''आपका अंग्रेजी पत्र तो दब्बू है। मैं वैसा पत्र नहीं निकालना चाहता। मैं ऐसा पत्र निकालना चाहूँगा कि ब्रिटिश सत्ता चलते-चलते रुक जाए।''**[5]

यह घटना ही माखनलाल जी की पत्रकारिता के तेवर का प्रतिनिधित्व करती है। यही साहस, निर्डरता, बेबाकी व निर्भीकता कर्मवीर की पहचान बनी। उनकी ये बेबाकी उनके द्वारा लिखित इन पंक्तियों में झलकती है-

अमर राष्ट्र, उदंड राष्ट्र, उन्मुक्त राष्ट्र यह मेरी बोली
यह सुधार-समझौता वाली मुझकों भाती नहीं ठिठोली।[6]

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने समाचार-पत्रों के लिए नियम बनाया था कि उनके पत्र में क्रांतिकारियों के विरुद्ध कोई समाचार या खबर प्रकाशित नहीं की जाएगी।

1919 में गोरखपुर से गणेश शंकर विद्यार्थी की प्रेरणा से 'स्वदेश' समाचार पत्र प्रकाशित किया गया। इसके संपादक दशरथ प्रसाद द्विवेदी थे। गजब का पत्र था यह ।इसकी तेजधार कलम के द्वारा लिखित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

स्वर्ग लाभ के लिये
आत्मबालि हम नहीं करेगे।
जिस देश मे जिए
उसी पर सदा मरेंगे।[7]

5 सितंबर, 1920 काशी से 'आज' दैनिक समाचार पत्र का प्रकाशन ज्ञान मंडल मंत्रालय द्वारा प्रकाशित किया गया। प्रारंभ में इसके संपादक श्री प्रकाश जी थे। बाबू राव विष्णु पराडकर ने बाद में इस पत्र के संपादक पद की कमान संभाली। गांधी जी के द्वारा प्रतिपादित अहिंसात्मक पत्रकारिता का अनुकरण कर भारत को स्वतंत्र देखना आज समाचार पत्र का मुख्य उद्देश्य था। जिस प्रकार धूल के कण हमारी आँखों में किरकिराते हैं, ठीक उसी प्रकार यह पत्र भी अंग्रेजी सरकार की आँखों में किरकता था। राष्ट्रीय आंदोलनों-1930 सविनय अवज्ञा आंदोलन,1942 भारत छोड़ो आंदोलन के अलावा कई

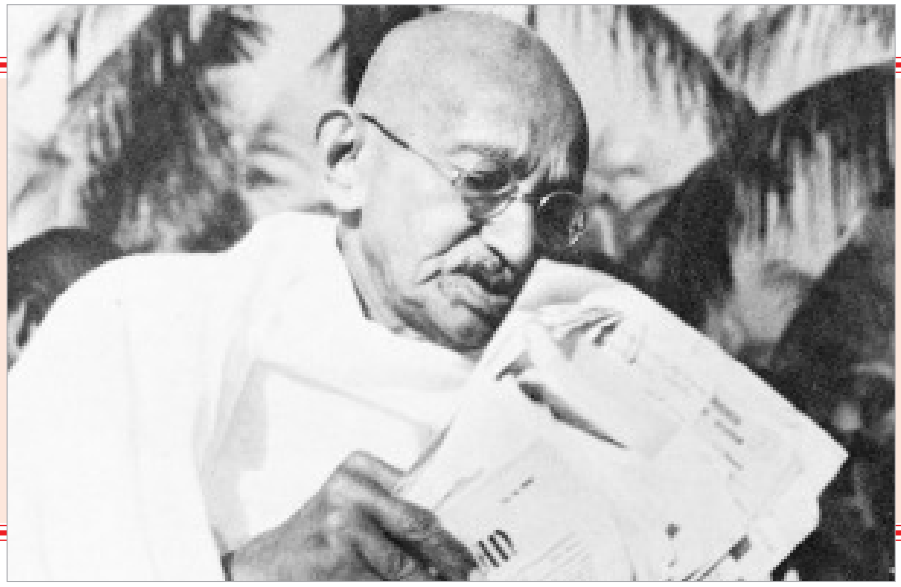

मौकों पर इसे अंग्रेजी सरकार ने बंद कर अपने कुशासन का परिचय दिया। [8]

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय ने एक लिमिटेड कंपनी की स्थापना कर लाहौर से उर्दू दैनिक 'वन्दे मातरम्' समाचार पत्र प्रकाशित किया। सरदार मोहन सिंह साहनी अखबार के संपादक थे। यह एक उच्च स्तरीय अखबार था, जिसका पंजाब, सिंध और उत्तरी सीमांत प्रदेशों में अच्छा प्रसार था। स्वतंत्रता संग्राम का जोश और जज्बा जनता के हितों और हकों की पैरवी, फिरंगी हुकूमत के अन्याय और अत्याचार की आलोचना वन्देमातरम् का मुख्य स्वर था। इसी कारण 10 मई, 1927 का अंक लाहौर से पुलिस ने जब्त कर लिया। हाईकोर्ट में अपील करने के बाद जब्ती का आदेश निरस्त कर दिया गया। 'वन्दे मातरम्' के चार संपादकों को राजद्रोह के आरोप में जेल जाना पड़ा। अक्टूबर, 1930 में पंजाब सरकार ने 'वन्दे मातरम्' को जब्त कर लिया। दिसंबर, 1930 में संपादक ठाकुर दास ने भगत सिंह पर लेख लिखा, जिस कारण ठाकुर दास को दंड संहिता की धारा (124-1) के तहत गिरफ्तार कर लिया गया। [9]

लाला जी ने लाहौर से साप्ताहिक समाचार पत्र 'पीपल' निकाला। वे स्वयं इस पत्र के संपादक थे। यह सर्वेंट ऑफ पीपल सोसाइटी का मुख्य पत्र था, जो युवाओं को राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रसेवा के लिए प्रोत्साहित करता था।

पुरुषोत्तमदास टंडन ने लौहार से हिंदी भाषा में साप्ताहिक 'पंजाब केसरी' प्रकाशित किया। यह भारत से स्वतंत्रता संग्राम को समर्पित स्वर्गीय लाला लाजपत राय की स्मृति में निकाला गया था। लाला जी की आत्मकथा सबसे पहले इसी पत्र में प्रकाशित हुई। प्रेस अध्यादेश की भनक पंजाब केसरी तक पहुँची और 1930 में इसका प्रकाशन बंद हो गया। कई वर्षों के बाद लाल जगत नारायण ने इस अखबार को पुनजीर्वित किया। [10]

विजयादशमी (सितंबर, 1925) को महारथी प्रेस दिल्ली से हिंदी मासिक पत्रिका 'महारथी' का प्रकाशन रामचन्द्र शर्मा के संपादन में हुआ। इसके प्रवेश के पहले अंक में संपादक ने इसे प्रकाशित करने के केवल तीन मुख्य उद्देश्य बताए। पहला उद्देश्य : राष्ट्र निर्माण है, दूसरा उद्देश्य: समाज सुधार, तीसरा उद्देश्य: देशप्रेम। इन्हीं तीनों उद्देश्य के सूचक तीन शब्द 'साहस', 'सत्य', और 'प्रेम' महारथी के ध्वज पर अंकित थे। 20 नवंबर, 1930 को लाला लाज पत्त राय की स्मृति में 'महारथी' का एक विशेषांक निकाला 'कफन की कीलों पर'। इसके प्रकाशन के बाद राजद्रोह व असंतोष, भड़काऊ लेख छापने के परिणामस्वरूप संपादक को नौ महीनों

की सजा हुई। महारथी में लाला लाजपत की लोकप्रिय पक्तियों का भी प्रकाशन किया गया था- ''मुझ पर किया गया हर प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन के ताबूत में एक-एक कील ठोकने का काम करेगा।'' [11]

''सैनिक जब तक जिएँ, जिस दिन मरें, देश के लिये मरें। जीवन, धन, सुख सब कुछ जाये, पर वह आदर्श भ्रष्ट न होने पाएँ।'' [12] इस कामना को लेकर 1 जून, 1925 को कृष्णा दत्त पालीवाल ने आगरा से 'सैनिक' समाचार पत्र का प्रकाशन आरंभ किया। लोगों में प्रखरता व यश प्राप्त करने के कारण उसके अंक जब्त कर लिए गए। मुकदमे चले, इसके प्रकाशन पर पाबांदियाँ लगीं। जमानत माँगी गई और इस सबके चलते उसे बंद भी होना पड़ा। 14 अक्टूबर, 1937 को 'सैनिक' दैनिक हो गया। 1939 द्वितीय वि!व युद्ध आरंभ होने पर इस समाचार पत्र ने अग्रलेख लिखा, 'अब न चूको चौहान'। इसमें देशवासियों से आग्रह किया गया था कि वे युद्ध के अवसर का उपयोग करें, देश को आजाद कराने से नहीं चूकें। सैनिक ने दूसरा लेख प्रकाशित किया 'न एक पाई न एक भाई'। [13]

इसमें स्पष्ट कहा गया कि युद्ध में मदद के लिए न तो एक पैसा दिया जाए और न सेना में एक भी भाई को जाने दिया जाए। यह सैनिक अखबार की अदम्य जीवन शक्ति ही थी कि पाँच बार बंद हो जाने के बाद भी उतनी ही शक्ति और ऊर्जा के साथ छठी बार 1945 में पुनजीर्वित हुआ। स्वतंत्रता के बाद भी यह पत्र चलता रहा।

हिंदी मासिक 'विशाल भारत' जनवरी 1928 को पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी के संपादन में निकला। इसके प्रकाशक थे 'मॉडर्न रिव्यू' के संपादक प्रकाशक रामानन्द चटर्जी। इसने कई आंदोलनों को जन्म दिया। घासलेटी साहित्य के विरुद्ध अभियान भी इसी ने छेड़ा था। 1937 में बनारसीदास जी ने विशाल भारत छोड़ दिया। उसके बाद कुछ ही वर्ष वह चला फि र बंद हो गया। इस अखबार की विशेष पक्तियाँ इस प्रकार हैं, ''जिस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के वृक्ष, फल, फूल विचित्र सौंदर्य से प्रकृति का स्वागत करते हैं उसी प्रकार हम लोगों को भी अपने श्रेष्ठ कार्यों के द्वारा स्वराज्य का स्वागत करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।''[14]

पत्रकारिता द्वारा भारत को आजादी दिलाने के मार्ग में कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। मुंशी जी ने 1930 में साहित्यिक पत्र 'हंस' का प्रकाशन किया। इसका उद्देश्य हिंदी भाषा को समृद्ध बनाने के अतिरिक्त भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में योगदान देना भी था। नमक आंदोलन के समय हंस पत्र पर भी पाबंदी लगाकर इसका प्रकाशन बंद कर दिया गया। [15]

स्वतंत्रता संग्राम में काशी से प्रकाशित 'संसार' (हिंदी दैनिक) का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इसका स्वर और विचार धारा उग्र थी। संसार के दैनिक संस्करण के साथ-साथ 'साप्ताहिक संसार', संसार का रविवारीय संस्करण और अर्द्ध साप्ताहिक 'ग्राम-संसार' भी प्रकाशित हो रहे थे। साप्ताहिक संसार का अक्टूबर 1943 में प्रकाशित आजाद हिंद सेना विशेषांक बहुचर्चित रहा। 1943 से 1945 तक इसके संपादक बाबू राव विष्णु पराडकर भी रहे।

1930 के नमक आंदोलन (सविनय अवज्ञा आंदोलन) के समय देश के अधिकांश हिस्सों से प्रकाशित होने वाले पत्र बंद कर दिए गए। यहाँ के बुद्धिजीवियों क्रांतिकारी व पत्रकारों ने गुप्त पत्र 'रणभेरी'[16] का प्रकाशन कर समाचार पत्रों के प्रकाशन की निरंतरता को बनाए रखा। रणभेरी की भाषा उग्र थी। रोज स्थान बदलकर प्रकाशित होता रहता था। लाख प्रयास के बाद भी ब्रिटिश राज इसके प्रकाशन का पता नहीं लगा पाई। पराडकर जी जैसे संपादकों के सहयोग व कुशल रणनीति से इस पत्र का प्रकाशन सफल हो पाया। रणभेरी में प्रकाशित संपादक व प्रकाशक का नाम फर्जी होता था। रणभेरी के अतिरिक्त रणडंका, तूफान, चण्डिका आदि भी गोपनीय पत्रों की श्रेणी में आते हैं, लेकिन रणभेरी का नाम गोपनीय पत्रों में सर्वोपरि था।[17]

निष्कर्ष :

अल्मोड़ा से 'शक्ति', कलकता से 'स्वतंत्र' और 'साम्यवादी', प्रयाग से 'भविष्य' तथा 'चांद', पटना से 'देश', आगरा से 'आर्यमित्र', दिल्ली से 'हिन्दुस्तान', कांग्रेस समाजवादी पार्टी का 'संघर्ष', उन्नाव से 'संग्राम', इलाहाबाद से 'देशदूत', काशी-आगरा से 'साहित्य संदेश'

व 'सैनिक' और दिल्ली का 'वीर अर्जुन'- देश के हर कोने से स्वतंत्रता आंदोलन के समय जितने भी पत्र व पत्रिका प्रकाशित होते रहे, सभी का उद्देश्य एक ही था- स्वतंत्र भारत।

ये सभी पत्रिकाएँ अंग्रेजी शासन से मुक्ति दिलाने के लिए जनता के चेतन मन को जगा रही थी, ताकि लोग राष्ट्रीय आंदोलन की धारा में शामिल हो सकें। उस समय पत्रकारिता एक मिशन के रूप में कार्य कर रही थी। पत्रकार कर्ज लेकर, अपनी संपत्ति दाँव पर लगाकर पत्र-पत्रिका निकाल रहे थे। वह इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि कभी भी उनका अखबार ब्रिटिश सरकार का शिकार हो सकता है। इन सब परेशनियों को सहते हुए पत्रकारों ने ब्रिटिश सरकार का डटकर सामना किया। आत्मसमर्पण जैसा शब्द उनके शब्दकोश में नहीं था। पत्रकारिता को स्वतंत्रता आंदोलन से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इन समाचार पत्रों व इनके प्रकाशक-संपादकों का आजादी की प्राप्ति में योगदान स्वर्ण अक्षरों में सदैव भारतीय इतिहास में चमकता रहेगा। हम और हमारी आने वाली पीढ़ियाँ निश्चित रूप से इनकी ऋणी रहेंगी। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. गौतम, डॉ. मीना : (स्वतन्त्रता संग्राम और हिन्दी) राष्ट्रीय अभिलेखागार जनपथ, नई दिल्ली 110001, 2008 पृष्ठ संख्या-44
2. तिवारी, प्रो(डॉ.) अर्जुन :, (राष्ट्रपिता और पत्रकारिता) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002-2019 पृष्ठ संख्या-146
3. नव जीवन, अखबार, सम्पादक व प्रकाशक महात्मा गांधी 2/11/1924 (अहमदाबाद) पृष्ठ संख्या-3
4. श्री धर, विजय दत्त : (भारतीय पत्रकारिता कोश खण्ड-2) वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली 110002-2016 पृष्ठ संख्या-554
5. media mimansa volume-15 No-3 July-sep-2021 page no.8
6. Do same page no-9
7. हिन्दी विवेक 'स्वतन्त्रता संग्राम और पत्रकारिता' डॉ. वशिष्ठ नारायण सिंह पृष्ठ संख्या-6
8. International journal of innovative research in science eng. and tech. स्वतन्त्रता संग्राम में हिन्दी पत्रकारिता का योगदान (डॉ. सरोज) अवस vol-4, issue 1-jan-2015 page-4
9. श्री धर, विजयदत्त : (भारतीय पत्रकारिता कोश खण्ड-2) पृष्ट संख्या-746
10. वही पृष्ठ संख्या-885
11. कुमार, विनय : पंजाब केसरी लाला लाज पत्त राय, साकेत प्रकाशन, दिल्ली 110032-2019 पृष्ठ संख्या-59
12. दरबार, डॉ. ज्ञानवती : 'भारतीय नेताओं की हिन्दी सेवा', रंजन प्रकाशन, नई दिल्ली-1961 पृष्ठ संख्या-380
13. वही पृष्ठ संख्या-381
14. क्रांत, मदनलाल वर्मा : स्वाधीनता संग्राम के क्रांतिकारी साहित्य का इतिहास (भाग-दो) प्रवीण प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली-110002 पृष्ठ संख्या-443
15. लाल, डॉ. वंशीधर 'हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास', अनुपम प्रकाशन, पटना 1992 पृष्ठ संख्या-80
16. श्री धर, विजय दत्त : (भारतीय पत्रकारिता कोश खण्ड-2) पृष्ठ संख्या-922
17. संचार माध्यम, भारतीय जन संचार संस्थान नई दिल्ली, संपादकीय लेख पृष्ठ संख्या-2

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

कमल कुमार की कहानियों में सामाजिक समस्या

रेखा गुप्ता

शोधार्थी, पीएच.डी.
मानविकी एवं समाजशास्त्र विद्यापीठ
तेजपुर विश्वविद्यालय (असम)
मो. 919044251322
ई-मेल : rekhag758@gmail.com

शोध सार :

आधुनिक महिला लेखिकाओं में डॉ. कमल कुमार का महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ. कमल कुमार की लेखनी का केंद्रीय बिंदु प्रमुख रूप से नारी है और नारी से संबंधित समस्या को अपनी रचना कर्म के माध्यम से समाज के समाने लाने का भरपूर प्रयत्न किया है। कभी भारतीय नारी के रूप में तो कभी पाश्चात्य नारी की स्थिति से पाठकों को अवगत कराती हैं। वह नारी स्वतंत्रता की प्रबल पक्षधर हैं और उसे हर हाल में अपने पैरों पर खड़ा देखना चाहती हैं। कमल कुमार देश-विदेश की यात्राएँ उनकी रचनाओं को महत्वपूर्ण बनाती हैं। उन्होंने यात्रा के दौरान जो भी चीजें देखीं और महसूस किया उसे अपनी रचना के माध्यम से समाज में रखा। वे लोगों से मिलीं और उनकी समस्याओं को निकट से देखा, समझा और उसे आत्मसात करके अपनी रचनाओं में उकेरा। इनकी रचनाओं में रूग्ण मान्यताओं के प्रति विद्रोह, स्वस्थ आधुनिक दृष्टिकोण, नष्ट होते पारंपरिक मूल्यों की स्थापना और नारी जागृति आदि मुख्य रूप में आई हैं।

बीज शब्द :

परिवार, समाजशास्त्रीय निष्कर्ष, नारी चेतना, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक परिप्रेक्ष्य।

कमल कुमार की कहानियों में समाजशास्त्रीय निष्कर्ष पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है, जिससे किसी भी एक दौर की समान परिस्थितियों, पृष्ठभूमि और परिवेश के बावजूद रचना मानसिकता का सृजन होता है। हालाँकि विषय के धरातल पर सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक संदर्भ समान हो सकते हैं, किंतु इनको अभिव्यक्त करने वाले पात्र और अभिव्यंजना शक्ति की पद्धति भिन्न होती है। यहाँ पर मन विवेचना करता है कि समान परिवेश एवं युग बोध दृष्टि के बावजूद रचना कर्म स्थूल रूप में समान होते हुए भी सूक्ष्म रूप से एक-दूसरे से भिन्न क्यों और कैसे होता है। इस जिज्ञासा के समाधानस्वरूप लेखक के बीच अंतर्योजन के सूत्रों की पहचान जरूरी हो जाती है। कहानियों के संदर्भ में

कमल कुमार नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की पक्षधर हैं। इन्होंने पुरुष की निरंकुशता को ध्वस्त कर स्त्री को अपनी शक्ति खुद पहचानने की बात कही है।

कमल कुमार की कहानियों में राजनीतिक परिस्थितियों में समस्या अपने पूर्ववर्ती युग की अगली कड़ी बनकर उभरती है। आधुनिक हिंदी साहित्य का स्वातंत्र्योत्तर युग भी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की सापेक्षता का प्रतिफल है। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के लगभग एक वर्ष बाद 15 अगस्त, 1947 को जब भारत आजाद हुआ तो उनके आधुनिक इतिहास का एक दौर समाप्त हो गया। स्वतंत्रता मिलने के बाद देश पर एक गंभीर जिम्मेदारी यह आ गई कि वह अपनी अर्थव्यवस्था को बेहतर करे, क्योंकि जो जनता वर्षों से देश की आजादी का स्वप्न देख रही थी, वह स्वतंत्रता के बाद अपनी सरकार से यह अपेक्षा करने लगी कि यह सरकार उनके आर्थिक कष्टों को भी दूर करेगी। महात्मा गांधी ने कहा था, *''मैं समझता हूँ कि वर्षों तक भारत को ऐसे कानून बनाने पड़ेंगे जो शोषितों और दलितों को उस गड्ढे से निकाले, जिसमें उन्हें पूँजीपतियों, जमींदारों और ऊँचे कहे जाने वाले लोगों ने धकेल दिया है। अगर हम इन लोगों को इस दलदल से निकालना चाहते हैं तो भारत की राष्ट्रीय सरकार का यह आवश्यक कर्तव्य होगा कि वह अपने घर को ठीक करे और बराबर इन लोगों को ऊँचा स्थान दे और उनको इस बोझ से उबारे, जिसके नीचे पीसे जा रहे हैं।''*[1]

परिवार को सामाजिक मानदंड में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। परिवार का निर्माण ही इस आधार पर हुआ है कि उसकी समाज में मान्यता है। उसे समाज में स्थायित्व मिल गया है। संस्था का निर्माण मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हुआ है। श्याम बहादुर वर्मा लिखते हैं- *''जिससे सामाजिक इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और जो व्यक्तियों को नियंत्रित करती है।''*[2] भारतीय समाज में जाति प्रथा एक बहुत विकट समस्या है। जाति-पाति के आधार पर आए दिन झगड़े होते रहते हैं। जाति बिरादरी और ऊँच-नीच का भेदभाव व्यक्ति को प्राय: इतना कमजोर, बेजान और जर्जर बना डालता है कि उसका समूचा व्यक्तित्व हीं नहीं, मनुष्यता के मान-मूल्य भी खतरे में पड़ जाते हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती, विवेकानंद, बाल गंगाधर तिलक तथा महात्मा गांधी आदि समाज सुधारकों ने जातिगत भेदभाव तथा मानव के प्रति अस्पृश्यता की कठोर आलोचना करते हुए उसमें सुधार के तमाम प्रयत्न किए थे। संविधान ने भी समानता का अधिकार दिया है, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जाति, धर्म के भेद के बिना अपने जीवन को विकसित करने के लिए तमाम सुविधाएँ प्राप्त कर सकता है। संविधान के अनुच्छेद 15 के अनुसार दीपक वर्मा लिखते हैं, *''राज्य द्वारा धर्म मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान आदि के आधार पर नागरिकों के प्रति जीवन के किसी क्षेत्र में पक्षपात नहीं किया जाएगा।''*[3] किंतु इसके बावजूद सबको वह सम्मान प्राप्त नहीं है, जो होना चाहिए। इसके पीछे जाने-अनजाने कई कारण हैं। रूढ़िवादिता एक कारण हो सकता है। सदियों से चली आ रही जाति-प्रथा, ऊँच-नीच को शिक्षित समाज में भी हम ज्यों-का-त्यों देख रहे हैं।

कमल कुमार के कथा-साहित्य में समाज में विभिन्न स्थितियों के आधार पर जो भेद किया जाता है, उसे लेकर लिंग, जाति, प्रजाति, रंगभेद, अर्थ व भाषा के

आधार पर प्रस्तुत अध्याय में सामाजिक समस्या का वर्गीकरण किया गया है। इन आधारों पर समाज कैसे बँट जाता है और उनमें कैसे एक-दूसरे के प्रति वैमनस्य की भावना पनपने लगती है, इसका चित्रण लेखिका ने बखूबी किया है। सामाजिक समस्याओं से अभिप्राय है जब समाज में किन्हीं आधारों पर स्तर निर्धारित कर दिए जाते हैं, जिसे व्यक्ति की परिस्थिति का निर्धारण होता है। प्रत्येक समाज में चाहे उसे समाज की संरचना कैसी भी रही हो, वहाँ सामाजिक समस्या देखने को मिल ही जाती है। साम्यवादी देशों में किसी भी आधार पर लोगों को न बाँटने की बात की गई थी, लेकिन वहाँ भी व्यक्तियों के मध्य योग्यता के आधार पर सामाजिक स्तरीकरण मिल जाता है। समाज में समस्या ऊँच-नीच और भेदभाव के आधार पर देखने को मिलता है। इसमें जो व्यक्ति उच्च स्थिति को प्राप्त है, वो निम्न स्थिति को प्राप्त व्यक्ति के साथ भेदभाव करने लगता है। सामाजिक समस्या लिंग, आयु, जाति, प्रजाति, रंगभेद, भाषा व अर्थ इत्यादि आधारों पर समाज में मिलता है।

हम भारतीय एक-दूसरे से परिचित होने के बाद भी उसकी जाति जानने का प्रयास करते हैं। उसी के आधार पर अपना दृष्टिकोण व व्यवहार निश्चित करते हैं। यहाँ तक कि घरों में काम करने वालों के बर्तन अलग कर दिए जाते हैं। उनके साथ बैठना-उठना या मनुष्यों जैसा व्यवहार तो दूर की बात है, उन्हें एक अलग ही दुनिया का प्राणी मानकर दुर्व्यवहार करना तथाकथित उच्च जाति के लोगों का स्वभाव-सा बन गया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जातिगत भेदभाव सामंती सभ्यता की देन है, जिसमें मनुष्यता लेश मात्र भी नहीं है। 'सरोकार' कहानी में एक मजदूर जो बीमार होने के बावजूद मजदूरी कर रहा है, घर की बहू मानी चाय की प्याली उसे दे तो देती है, किंतु सास की फटकार- *''तेरी पढ़ाई-लिखाई क्या हुई बहू....उसे कप पकड़ा दिया.....कौन जात का है.....उस पर सवेरे से खों खों लगा रक्खी है। पता नहीं मरे के फेफड़ों में कीड़े पड़े हैं।.....क्या हुआ है.....छूत लगी तो.....डा।''*[4] यह उच्च जाति के लोगों की मानसिकता को उजागर करता है। इस प्रकार की सोच हमारे संविधान की धज्जियाँ उड़ा देती है। गरीब, कमजोर व्यक्ति विरोध करना नहीं जानता, किंतु एक घुटन जरूर महसूस करता है। उसे मनुष्यतापूर्ण व्यवहार की अपेक्षा रहती है, किंतु जो विसंगति हमारी जड़ों में घर कर गई है, उसे उखाड़ फेंकना सहज नहीं। इसी का परिणाम है कि आज तथाकथित निम्न जाति का व्यक्ति भी अपने नाम के साथ उच्च जाति जोड़ कर सम्मानपूर्वक जीवन जीने की इच्छा रखता है और ऐसा करता भी है।

'पहचान' कहानी-संग्रह की 'परिणति' कहानी में नायक अनिल एक ओर हरिजन बस्ती में जाता है, जहाँ उसे चेचक का एक और मरीज मिल जाता हैं- *''गाँव के अंतिम छोर पर दस-बीस झोपड़ों का एक गुच्छा था।.... यह भी हरिजन परिवार था-यानि की इनके पुरखे एक थे। पाँच-छह भाइयों की तीसरी-चौथी पीढ़ी द्वारा बसाई गई बस्ती। घास-फूस और कच्ची ईंटों और मिट्टी से बने झोंपड़ें थे।.... खटोले पर एक दसेक साल का बच्चा बुखार से निढाल थ। चेहरा तमतमाया हुआ।''*[5] इस प्रकार हरिजन लोग पशुओं से भी गया बीता जीवन जीते हैं। जाति के आधार पर जीवन भर उनके साथ भेदभाव किया जाता है और मूलभूत जरूरतों से दूर कर दिया जाता है। लेखिका का कथा साहित्य नारी सशक्तिकरण की दिशा में मील का पत्थर है। ये नारी की आदर्शवादिता को उद्घाटित करती हैं तो नारी सुलभ कमजोरियों का उल्लेख करना भी नहीं भूलतीं। इनके कथा साहित्य में नारी जीवन के श्वेत-स्याह सभी पहलू उजागर हुए हैं, जो किसी पूर्वाग्रह या दुराग्रह से मुक्त, तटस्थ व निर्भीक चरित्रांकन है। नारी जीवन के संघर्ष का जीवंत दस्तावेज इनके कथा साहित्य में मिलता है। इनके कथा साहित्य में नारी जहाँ अपने अस्तित्व व गरिमा को पहचानने की क्षमता पाती है, वहीं पितृ सत्तात्मक समाज की निरंकुशता से आजाद होने का साहस भी प्राप्त करती है। विवाह का सामंती ढाँचा एवं पत्नी का दोयम स्तर समाज केंद्रित समस्या है। 'फॉसिल' पुरुष सत्तात्मक सामाजिक मनोवृत्ति की शिकार एक पढ़ी-लिखी लड़की की त्रासदी और प्रतिरोध की कहानी

है। फॉसिल का अर्थ-जीवाश्म जमीन में दबी हुई प्राचीन काल की कोई वस्तु या जीवन का पिंजर। इसमें लेखिका ने हड़प्पा-मोहनजोदड़ों की खुदाई के रूपक के सहारे पुरुष वर्चस्व और स्त्री उत्पीड़न के इतिहास में झाँकने की कोशिश की है। यह कहानी पुरातत्व रिसर्च इंस्टीट्यूट की प्रतिभावान शोध छात्रा गार्गी सिंह की त्रासदी को व्यक्त करती है। जब उसकी इच्छा के विरुद्ध घर बुलाकर शादी कर दी जाती है। उसे सोचने समझने का समय ही नहीं दिया जाता। बस यही कह दिया जाता है कि लड़कियों के विवाह का यही रिवाज है हमारे यहाँ।

भारत में भूख और गरीबी की समस्या बहुत व्यापक रूप में दिखाई देती है। इसमें सबसे निचले क्रम में निम्न वर्ग विद्यमान है। निम्न वर्ग में खेतीहर, मजदूर, घरेलू नौकर आदि शामिल हैं। आर्थिक अभाव के कारण उनका जीवन निम्न स्तर का होता है। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में ही सारी जिंदगी गुजार देते हैं। औरत और पोस्टर कहानी के आवारागर्द लड़के सभी अपनी गरीबी, रुखेपन और खुदरेपन के नीचे मानवीय मूल्यों के आर्द्रता से संपन्न हैं। सभी लड़के किसी न किसी कारण से पढ़ाई छोड़कर पेट की भूख मिटाने के लिए काम करते हैं। बीरू को जब लेखिका ने अंत में पहचान लिया तो वह बोला, *''हमारा बाप ऑन्टी जी। वो तो कुछ भी नहीं करता। बैठा-ठाला शराब पीता है और माँ को मारता है। माँ की कमाई के पैसे भी झटक लेता है। मेरी कमाई से माँ हम छ जनों का पेट भरती है।''*[6] निम्न वर्ग रोजगार के लिए सपरिवार रोजी-रोटी का जुगाड़ करता और भूख एवं गरीबी में जीवन को बिताता है। इस वर्ग के प्राणी अपना जीवन अभावों में बिताते हैं। सारी जिंदगी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने में लगे रहते हैं। पहचान कहानी संग्रह की समय-बोध कहानी में निम्नवर्गीय परिवार का चित्रण लेखिका ने खींचा है, *''बापू को जो मरकर मुक्त हो गया था और माँ के लिए छोड़ गया था- चार खाली पेट भरने को काम करने वाले हाथ जो खेतों में अनाज उगाते नहीं थे। पिता जी को मरे पाँच महीनें हो गए थे। अनाज के सारे मटके खाली हो गये थे। माँ दिन भर दूसरों के खेतों में काम करती। माँ के पीछे वह और उसके पीछे पार्वती और लीला होती। जो कुछ मिलता उससे मुश्किल से पेट भरता।''*[7]

निम्न वर्ग के घरों की हालत इस कद्र बुरी हो जाती है कि उनके फाँके के दिन शुरू हो जाते हैं। इस दौरान मिला हुआ रुखा-सूखा खाना भी उनके लिए बहुत कीमती और लजीज होता है - *''डबलरोटी के सूखे टुकड़े, सीले हुये बिस्कुट, दो बासी परांठों का खजाना था। माँ ने दोनों बहनों को जगाया, लो खा लो.... ।''*[8] 'समय-बोध' कहानी में गौरी को मेम साहब से मिला हुआ खाना खाकर घरवाले संतुष्ट हो जाते हैं, क्योंकि यहाँ उन्हें रोटी के लाले पड़ रहे थे। वहाँ पर ये सब खाकर उनकी पेट की क्षुधा कुछ शांत हुई थी। फिर वहीं शुरू कहानी-संग्रह की 'ऊपर वाले की कृपा' कहानी में राम दीन निम्न वर्ग का व्यक्ति है, जो अपना रोजगार चलाने के लिए पत्नी रामवती के आभूषणों को बेचता है- *''जरूरी बर्तनों, मर्तबान, पिर्च-पिआले, चम्मच-गिलास वगैरा के लिये उसे फिर से रामवती की पायल बेचनी पड़ी, पर उसने उसे मना लिया था। जरा-सी दुकानदारी चलन दे, पायल तो क्या तेरे वास्ते इबकी कंठा बी गढ़वा के दूँगा।''*[9] इस वर्ग के पास जो भी कुछ है उसे बेचकर कमाने का जरिया ढूँढ़ने की कोशिश करता है। रामदीन भी पत्नी के गहने बेचकर कमाई का साधन बनाने की कोशिश करता है।

नारीवाद चेतना विकसित करने का अर्थ है- पितृक सामाजिक वर्चस्व को तोड़ते हुए नारी को समानता के अधिकार प्रदान करना और उसे समाज में मानवीय रूप प्रदान करना है। नारी चिंतन के संदर्भ में नारीवादी दृष्टि की यही सबसे बड़ी भूमिका है। आज लेखिकाएँ इस परिवर्तनशील समय में नारी के परंपरागत रूप में परिवर्तन को ढूँढ़ रही हैं तथा उनकी अस्मिता के लिए पूरी ईमानदारी से लड़ रही हैं। एक नारी लेखिका ही नारीवादी दृष्टि रख सकती है, क्योंकि पुरुष के लिए तो यह दृष्टि मात्र ही है। विजया वारद लिखते हैं कि *''हिंदी में महिला लेखिकायें अपनी प्रतिभा के बलबूते पर अभिव्यक्ति के इस क्षेत्र में पूरी ईमानदारी के साथ प्रयत्नशील हैं। इनकी कहानियाँ मील का पत्थर भले ही न बन पाई हों तो भी बदलती*

मूल्य व्यवस्था के यह महत्वपूर्ण दस्तावेज बनने की शक्ति रख सकती हैं।''[10]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि महिलाओं द्वारा रचित साहित्य नारीवाद चिंतन का आधार है। महादेवी वर्मा- 'शृंखला की कड़ियाँ' में लिखती हैं- *''कौतूहल वश बहार के संघर्षमय-क्षेत्र में प्रवेश करने वाली स्त्रियों की शक्ति का ऐसा परिचय मिला कि पुरुष-समाज ही नहीं, स्त्री भी अपने सामर्थ्य पर विस्मित हो उठी। इतने दीर्घकाल तक निष्क्रिय रहने पर भी स्त्री ने सभी कार्य क्षेत्रों में पुरुष के समान ही सफलता पा ली है। अब यह प्रत्यक्ष हो चुका है कि वे अपनी कोमल भावनाओं को जीवित रखकर भी कठिन से कठिन उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकती हैं, दुर्बल से दुर्बल कर्तव्यों का पालन कर सकती है और दुर्गम से दुर्गम कर्म क्षेत्र में ठहर सकती हैं।''*[11]

उत्तर-आधुनिक नारी कई तरह की चुनौतियों को स्वीकारते हुए विश्व के प्राय: प्रत्येक समाज में एक मजबूत स्तंभ बनकर उभरी है। प्रत्येक क्षेत्र में अपनी योग्यता दर्ज कराने में वह सक्षम है। रोहिणी अग्रवाल ने लिखा है, *''परम्परागत पुराने मूल्य टूट रहे हैं। समय के अनुसार चिंतन के नये स्वर गूँज रहे हैं, संघर्ष में वह कहीं परास्त हो रही है, कहीं कामयाबी के शिखर पर है अर्थात् कुल मिलाकर अभी अव्यवस्था हैं, संघर्ष है निर्मित कुछ भी नहीं, निर्माण की प्रक्रिया निरंतर है।''*[12] पश्चिम में स्त्री से संबंधित समस्याओं पर विचार करने के लिए अलग-अलग आंदोलन चलते रहे। अलग-अलग देशों की स्त्री समस्याएँ क्योंकि अलग-अलग की रही हैं, इसलिए इनको एक निश्चित मॉडल के ऊपर लागू नहीं किया जा सकता है। इसका परिणाम राष्ट्र स्तर के स्त्री सम्मेलनों के रूप में सामने आया।

उपसंहार :

इस प्रकार लेखिका ने अपने कथा साहित्य में राजनीतिक संस्थाओं के दिन-प्रतिदिन गिरते जा रहे स्तर का उल्लेख किया है। राजनीतिक पार्टियों की बढ़ती जा रही सत्ता की भूख उन्हें जनता के प्रति सहिष्णु नहीं रहने देती। राजनीतिज्ञ सिर्फ अपना ही स्वार्थ साधने पर अमादा हैं, इसलिए देश में लगातार घोटालों की संख्या बढ़ती जा रही है। देश की जनता गरीब हो रही है, वहीं नेताओं की आमदनी दिन दुगुनी रात चौगुनी होती जा रही है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी साहित्य, राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1973, पृ. 181
2. श्याम बहादुर वर्मा (प्र.सं. एवं कोशकार): प्रभात आधुनिक हिन्द शब्दकोश, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 1307
3. डॉ. दीपक वर्मा : भारत में मानवाधिकार, पृ. 24
4. कमल कुमार : पहचान, पृ. 34
5. कमल कुमार : पहचान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 1984, पृ. 78
6. वही, पृ. 83।
7. कमल कुमार : अन्तर्यात्रा, पृ. 96
8. कमल कुमार : क्रमशः, पृ. 98
9. कमल कुमार : पहचान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1984, पृ. 88
10. विजयावारद : साठोत्तरी हिंदी कहानी और महिला लेखिकाएँ, पृ. 189-190
11. महादेवी वर्मा : शृंखला की कड़ियाँ, पृ. 52
12. रोहिणी अग्रवाल : हिंदी लेखन : दिशाएँ एवं संभावनाएँ, पृ. 12

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

आदिवासी संस्कृति के महासागर : समकालीन हिंदी उपन्यास

सीमा कुमारी मीना

शोधार्थी, हिंदी विभाग
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय
अजमेर (राजस्थान)
मो. 8742845652
ई-मेल : seemakanawat87@gmail.com

शोध-सार :

भारत की पावन धरा पर अनेक जाति, धर्म एवं संस्कृतियों का अद्‌भुत संगम है। सभी की जीवनशैली, रहन-सहन, आचार-विचार, प्रतिमान एवं परंपराएँ विशिष्टता लिए हुए हैं। भारत के मूल बाशिंदे, आदिवासी जीवन की पहचान का मूल आधार उनकी सांस्कृतिक विलक्षणता ही है, जो शुरुआत से ही सभी को आकर्षित करती रही है। मूल धारा के लोगों से विभेदक की मुख्य दीवार भी उनका सांस्कृतिक जीवन है। इनमें अपनी संस्कृति के प्रति गहरी आस्था है। आत्मनिर्भरता आदिवासी समुदाय की विशेष पहचान है। यह दूसरी बात है कि उनके सांस्कृतिक जीवन में बेदखली ने उन्हें अंतर्द्वंद्व में डाल दिया है। प्रकृति से असीम लगाव, परंपराओं से गहरा रिश्ता और प्रथाओं से समाज की निरंतरता एवं अंधविश्वासों से संघर्षयुक्त जीवन की सरसता ही तो बेजोड़ है। जल, जंगल, जमीन ही उनके जीवन के पर्याय है। अलौकिक शक्तियों में विश्वास भविष्योन्मुखी खतरों से आगाह की आहट ही संबल है। उनके जंगल, पहाड़, नदियाँ, खेत सिर्फ प्राकृतिक संसाधन ही नहीं है, अपितु उनके पूर्वज है। ये सभी उस वटवृक्ष की मूल जड़ें हैं, जिनकी शाखाओं के रूप में वे जीवन-बसर कर रहे हैं। अब यदि इन्हें इनकी जड़ों से विलगा दिया जाए तो उनकी क्या दशा होगी ? वे सिर रहित धड़ के रूप में जीवन के अस्तित्व को कैसे सुरक्षित रख पाएंगे ? यही आदिवासी समाज की सबसे बड़ी विडंबना है।

बीज-शब्द :

आदिवासी, उपन्यास, संस्कृति, सोबड़, बपला, न्योतना, सरना, मांडना, कटापुरा, सोहराई आदि।

प्रस्तावना :

गैर आदिवासियों द्वारा योजनाबद्ध तरीके से उन्हें सताया, ललकारा एवं दुत्कारा जा रहा है। उनकी सांस्कृतिक पहचान को बेरहमी से मिटाया

जा रहा है। इनकी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, कुटुंब व्यवस्था की अपनी एक पहचान है। वह पहचान ही इनका प्राण है। ये प्रकृति से त्याग भावना एवं संरक्षणपूर्ण दृष्टि से उतना ही ग्रहण करते हैं, जिससे उनके जीवन की निरंतरता सुलभता से चलती रहे और आने वाली पीढ़ी को भी संसाधनों की धरोहर को सौंप सके। इनमें प्राकृतिक संरक्षण की परंपरा आज वैश्विक पर्यावरण संकट के समय संपूर्ण विश्व के लिए अनुकरणीय है। जब तक प्रकृति के साथ सहजीवी संबंध स्थापित नहीं करेंगे, तब तक प्रकृति के साथ न्याय नहीं होगा। ये प्रकृति के साथ सखा, माँ, पिता एवं अन्य सभी आत्मीय संबंधों से जुड़े हुए हैं।

'संस्कृति' मानव के बाह्य एवं आत्मीय जीवन की अभिव्यक्ति है। इसका प्रयोग हम निरंतर दैनिक जीवन में इस रूप में करते हैं कि हमारी संस्कृति में यह उल्लेखित है। इसी के अनुसार हमें व्यवहार की इजाजत एवं बन्धन है। 'संस्कृति' शब्द आचारगत व्यवहार का नाम है। जो सम्+कृ+क्तिन् प्रत्यय लगकर निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ - सुधार, परिष्कार, परिष्करण व परिमार्जन होता है। सामान्यत: संस्कृति शब्द धार्मिक क्रियाओं एवं व्यक्ति के मानसिक, बौद्धिक और स्वभावगत परिष्करण के साथ-साथ प्रवृत्तियों एवं इच्छाओं के सामंजस्य एवं राग-द्वेष आदि के परिमार्जन के रूप में प्रयुक्त होता है। जिन कार्यों से हमारे आचार-विचार बनते एवं निखरते हैं, जिससे हमारी रुचि परिमार्जित होती है। उन सब का संबंध संस्कृति से है। मानव व्यवहार को संस्कारित करने वाले तत्त्व, जिनमें नैतिकता, सच्चाई, ईमानदारी, सद्गुण, सत्यम् शिवम् सुंदरम् आदि सभी संस्कृति के अंग हैं। मनुष्य के जीने का ढंग जो उसे समाज द्वारा उपहार में मिलता है और सामाज की विरासत बन जाता है, जिसके अनुसार वह आजीवन चलता-फिरता, खाता, सोता रहता है। 'टायलर' ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि - **'संस्कृति वह समग्र जटिलता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून और ऐसी ही अन्य क्षमताओं एवं आदतों का समावेश है, जो मनुष्य समाज का एक सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।'** [1]

लिंटन के अनुसार - **'संस्कृति ज्ञान, धारणाएँ एवं प्राकृतिक व्यवहार के प्रतिमानों का कुल योग है, जिसके सभी भागीदार होते हैं तथा जो हस्तांतरित की जाती है।'** [2]

विश्लेषण :

संस्कृति मानव निर्मित होने के कारण मनुष्य समाज में पाई जाती है, जिसके अंतर्गत जीने और विचारने के सभी तरीके परिगणित है, जिन्हें मनुष्य अपने समाज से सीखता है। समाजीकरण की प्रक्रिया ही संस्कृति की निरंतरता को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करती है, जो सामूहिक आदतों एवं अनुभवों की उपज होती है। आदिवासी समुदाय की संस्कृति भी उनके अनुभवों, व्यवहारों एवं संघर्षयुक्त जीवन का ही प्रतिरूप होने के कारण विशिष्टता लिए हुए हैं। उनकी संस्कृति के प्रमुख अंग उनकी जनरीतियाँ, प्रथा, संस्कार, यज्ञ, पुरुषार्थ, ज्ञान, विश्वास, भाषा, दर्शन, त्योहार, गोत्र, लोकगीत, जीवनशैली, मूल्य, आध्यात्मिक शक्तियाँ आदि के साथ-साथ मेले, लोककथाएं, लोकाचार, अतिथि-सत्कार, सामाजिकता, अंधविश्वास एवं मूल्य आदि हैं। ये संस्कृति के अवयव आदिवासी केंद्रित उपन्यासों में संरक्षित, सुरक्षित एवं पल्लवित हुए हैं। आदिवासियों का पंक्तिबद्ध इतिहास अनुपलब्ध है। वह तो सदियों से मानसिक धरोहर के रूप में ही सुरक्षित है। इस अमूल्य धरोहर को लंबे समय तक सुरक्षित रखने का सर्वोत्तम साधन आदिवासी केंद्रित उपन्यास है। इनकी संस्कृति के अध्ययन हेतु इनका विवेचन, विश्लेषण अनिवार्य है। ये जनजीवन के दर्पण है। इनमें इनकी संस्कृति की गंध रची-बसी है।

संस्कार :

आदिवासी विभिन्न संस्कारों से जीवन को सुसंस्कृत, अनुशासित एवं निखार कर अभीष्ट मानवीय गुणों को पल्लवित करते हैं। व्यक्ति को नैतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक आदि सभी जिम्मेदारियों को निभाने की शक्ति भी देते हैं। संस्कार व्यक्ति की गर्भावस्था से मृत्यु पर्यंत लौकिक एवं पारलौकिक सुख समृद्धि की कामना करते हैं। संस्कारवान बनकर व्यक्ति न केवल स्वयं की बल्कि

संपूर्ण समाज की प्रगति में भी सक्रिय भूमिका निभाता है। इसमें व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की धारणा निहित है। ये आजीवन व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। जन्म संस्कार बच्चे के जिन्म से पूर्व आए दोषों के निवारण के लिए किया जाता है। 'काला पहाड़' उपन्यास में सलेमी का पोता गर्भस्थ होता है। तब उसके तन, मन की शुद्धता, गर्भपात को रोकने एवं गर्भवती माँ की संतुष्टि व रक्षा के उद्देश्य से संस्कार संपन्न किया जाता है। जब बच्चा जन्म लेने वाला होता है, तब कबीले की सभी महिलाएँ एकत्रित होकर ढाँढस बँधाती है और उसकी प्रसवपीड़ा को कम करने के लिए जड़ी-बूटियाँ लाकर देती है। तथा बुरी

नजर से बचाने के लिए विभिन्न प्रकार के टोने-टोटके करती है। जन्म होते ही नाल काट संस्कार, थाली बजाकर संपन्न किया जाता है। जन्म के बाद नाल गाड़ना, जिसमें बच्चे की नाल को किसी बर्तन में रखकर बच्चे के चाचा द्वारा जमीन में गाड़ दिया जाता है। जन्म के सातवें दिन 'सोबड़' संस्कार पूर्ण किया जाता है। इसका उद्देश्य घर का शुद्धिकरण करना है। इस दिन बच्चे को बाहर निकाल और सूर्य के दर्शन करवाकर सभी की गोद में दिया जाता है। 'मरगं गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास की निम्न पंक्तियों में इसके औचित्य को उकेरा है – **'और तू जब अकेले-अकेले झरने से पानी लेने जाती है, तब नाती (बच्चे के बाल काटकर माँ बच्चे का अछूत मिटाने की रस्म) हुए सात दिन भी नहीं बीते हैं। बच्चे को कमर पर लेकर सिर पर घड़ा लिए मटक-मटक कर ढलान से चढ़ते उतरते समय कोई आदमखोर बाघ तुम दोनों पर हमला नहीं कर सकता क्या ?'**[3] भील आदिवासियों में जन्म से 'एकसिया' संस्कार संपन्न होने तक कोई भी कपड़ा नहीं पहनाया जाता। 'एकसिया' के दिन जच्चा और बच्चा को नए वस्त्र पहनाकर हाथ में तांबे का सुकोम काले धागे में बांधकर कमर में बांधा जाता है। इस दिन बच्चे के नाखून और बाल काट कर समाज की सदस्यता स्वीकार करवाई जाती है और विभिन्न पूजा-पाठों के माध्यम से देवताओं को प्रसन्न करके आशीर्वाद के लिए आह्वान किया जाता है। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में उल्लेखित हुआ है कि झारखण्ड के आदिवासियों में 'तुपुनुम' (नामकरण) करने के लिए एक प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। बर्तन में हल्दी, पानी, दूध, अक्षत और दाल के दानें डालकर एक-एक करके परिवार के पितरों एवं जीवित सदस्यों का नाम लिया जाता है। जिस नाम के उच्चारण के बाद पूजा सामग्री पानी की सतह पर आपस में मिल जाए, वही नाम दे दिया जाता है। उसके पीछे यह धारणा है कि हमारे पूर्वज और देवता इसको यही नाम देने के इच्छुक है।

विवाह संस्कार :

आदिवासियों में विवाह संस्कार को गृहस्थ जीवन का प्रवेश द्वार कहा जाता है, जिसे पूर्ण करने के लिए सर्वप्रथम पाँच पंचों द्वारा 'बपला' (सगाई) प्रथा रस्म पूर्ण की जाती है, जिसे 'मरगं गोड़ा नीलकंठ हुआ' की पंक्तियों में देखा जा सकता है – **'और कुशलता से लड़के वालों का पक्ष रखकर दूतम् पंचों ने जल्द ही 'बपला' की तारीख तय करवा दी। 'बपला' दो परिवारों के बीच होने वाले नये सम्बन्धों को मजबूत बनाने की रस्म। दूतम् पंचों ने दोनों पक्षों की सहमति से ये भी तय करवाया कि बपला में लड़के की तरफ से कितने लोग जाएंगे लड़की के घर।'**[4] बपला में गोनोंग दहेज की शर्तें निश्चित करने के पन्द्रह दिन बाद गोनोंहर 'गोनोंग' लेने लड़की के घर जाते हैं। वहाँ

अतिथि का स्वागत करके पुरुषों की उपस्थिति में 'गोनोंग' का लेन-देन होता है। जिसके अंतर्गत नगदी, पशु एवं खाद्य-पदार्थ आदि लड़की वालो को दिये जाते है। दो समुदाय में विवाह संस्कार के अंतर्गत सगाई, विनायक स्थापना, लग्न, पस्सी भरना, हल्दी-तेल चढ़ाना, घूड़ा पूजन, गौरी पूजन, भात न्योतना, भात भरना, विदाई, खोडयिा निकालना, कंकण डोरना खोलना, शीतला- पूजन, फेरे, देहरी-पूजन एवं विदाई आदि परम्पराओं का निर्वहन किया जाता है, ताकि विवाह बंधन के गठजोड़ को सुदृढ़ बनाया जा सके। सभी आदिवासियों में कुछ भिन्नता के साथ विवाह संस्कार का प्रावधान है, जिसे अलग-अलग तरीके से संपन्न किया जाता है।

आदिवासियों में मृत्यु संस्कार भी हर्षोल्लास के साथ संपन्न किया जाता है। इनमें शव को नहला कर विभिन्न पूजा सामग्रियों से श्रृंगार किया जाता है। कुछ आदिवासियों में जलाने व कुछ में दफनाने की प्रथा है। हल्दी, चावल से पूजा करके 'मरगं गोड़ा नीलकंठ हुआ' की पात्र मेन्जारी को दफना दिया गया। गाड़ी गई छतरी के नीचे रोज सात दिन तक पानी, दतुअन और तीनों समय खाद्य-पदार्थ देना जरूरी था। वरना आत्मा के क्रोधित होकर अनर्थ करने की संभावना से, संतुष्टि प्राप्त नहीं की जा सकती।

पर्वोत्सव एवं त्योहार :

भारत त्योहारों का देश है। इस नाम से उसने विश्व में अपना परचम लहराया है। आदिवासी समुदाय में पर्वोत्सव एवं त्योहार हर्षोल्लास के साथ मनाए जाते हैं, जिनमें प्रकृति की झलक देखने को मिलती है। 'आदिभूमि' उपन्यास में उड़ीसा के बोंडा आदिवासियों के पर्वोत्सव एवं त्योहारों की विवेचना अनुपम है। यहाँ पर्व को किसी भी परिस्थिति में स्थगित नहीं किया जा सकता। किसी की अनुपस्थिति, मृत्यु भी बाधक नहीं बन सकती। उपन्यास के पात्र बाघबिंदु के घर पर नहीं होने पर भी उनकी पत्नी बुदेई टोकी पूर्ण हर्षोल्लास के साथ पर्व मनाती है, यथा - **'जीवन-मरण अपनी राह, पर्व अपनी राह। मरण में कभी पर्व नहीं रुकता। घर पर मुर्दा पड़ा रहे, रोना पीटना होगा। गांव में पर्व आएगा जैसे आते हैं। धूप, वर्षा, रात-दिन, जीवन किसी के लिए नहीं रुकता तो पर्व क्यों रुके ? जीवन रहे पर्व न रहे ये बोंडा पहाड़ पर कभी नहीं सुना। बोंडा जीवन और पर्व आपस में गूंथे बंधे हैं।'**[5]

आदिवासियों में चैत्र पर्व, माघ पर्व, भूत पर्व, भोंट पर्व, सरहुल, करमा, खरजितिया, सोहराई, कांदू, बाह्य, बापोरेंव, डांड, कुंआरीपूजा, पौष, दशहरा, दीपावली, होली, आदि त्योहार एवं पर्व विशिष्टता लिए हुए हैं। 'चैत्रपर्व' चैत्र मास में, माघपर्व माघ मास में मनाए जाते हैं। 'भोंट' पर्व में तीन गांवों के तीन बूथ बनाकर मुर्गा, दारू, चावल आदि भोंट के रूप में देते हैं। अपनी इच्छा अनुसार कुछ चिह्न दिया जाता है। 'भूतपर्व' न केवल आदिवासी अपितु शहरी समाज के लोगों द्वारा भी मनाया जाता है, जिसमें मद्य, मांस, भोजन, रक्त, एवं बलि देने का प्रावधान है। आदमी की बलि दिए बिना यह पर्व अधूरा माना जाता है। झारखण्ड के मुंडा, उराँव, संथाल समुदाय में 'सरहुल' पर्व भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। यह पर्व चैत्र मास में शुक्ला तृतीया को मनाया जाता है, जिसमें 'सरना' (सखुओं का कुंज) की पूजा करके ईश्वर से रक्षा की भीख मांगी जाती है। शेरशाह सुरी ने जब रोहिताशगढ़ पर आक्रमण किया तो उराँव सरहुल का त्योहार मना रहे थे। सरहुल के त्योहार में किले के सारे पुरुष 'सरना' पूजा के धार्मिक अनुष्ठान में व्यस्त थे। फलत: रोहिताशगढ़ पर आक्रमण करके विजित कर लिया गया। 'करमा त्योहार' आदिवासियों का सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध त्योहार है। यह पूरे झारखण्ड में हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। इसमें धर्म-कर्म दो भाइयों के संयोग की महत्ता है। इस अवसर पर कर्मावृक्ष की पूजा करके शांति का अनुभव करते हैं, यथा -**'कर्मा के व्रत में पवित्र वृक्ष की तीन शाखाओं की पूजा का विधान है, जिसे जंगल से भाई ही लाते हैं। भाइयों द्वारा लाई गई कर्मा की डालियों को अपने-अपने आंगन में उसकी पूजा करती है बहनें।'**[6]

इस अवसर पर घरों की लिपाई-पुताई करके मांडना बनाए जाते हैं। चबूतरे पर बीज डालकर महिलाएं नित्य बीजों को सींचती है। चौबीस घंटे का व्रत रखा जाता है।

कर्मावृक्ष मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में अपनी पहचान आदिवासी समुदाय के अंतर्गत बनाए हुए हैं। पशुओं के आतंक से रक्षा, स्वस्थ और योग्य संतान की प्राप्ति, सुख-समृद्धि, जीवनसाथी का चुनाव आदि सभी कार्यों को संपन्न करने में कर्मा की उपादेयता को विस्मृत नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार के भावों को आत्मसात किए हुए 'खरजितिया पर्व' भी झारखंड के मुंडा आदिवासियों में मनाया जाता है। झारखंड के संथाल आदिवासियों में 'सोहराई पर्व' जो एक पशु को श्रद्धा अर्पित करने का त्योहार है। कार्तिक मास में मनाया जाता है। इसे रिश्तेदारों के मान-सम्मान का पर्व भी कहा जाता है। 'कुंआरी पूजा' पर्व में खासी समुदाय में अपनी शील की रक्षा हेतु गौरी की पूजा की जाती है, यह पूजा शील, सदाचार, सत्यता, ईमानदारी, आदि सद्गुणों का पाठ पढ़ाती है। इस प्रकार आदिवासी समुदाय में विभिन्न त्योहारों को मनाने के पीछे कोई न कोई औचित्य निहित है, जिसमें कल्याण की भावना छिपी हुई है।

लोकधर्म :

धर्म का मतलब है। कोई अलौकिक शक्ति, जो मनुष्य से श्रेष्ठ है और मनुष्य को निर्देशित, नियन्त्रित और संचालित करती है। धर्म मानसिक तनावों एवं संघर्षों से मुक्ति, सामाजिक मूल्य एवं मान्यताओं के संरक्षण, सद्गुणों का विकास, सामाजिक नियंत्रण, सुरक्षा की भावना एवं विश्वबंधुता का भाव कायम करने में अहं भूमिका निभाता है। 'मगरी मानगढ़ गोविन्द गिरि' उपन्यास में धर्म क्या है? कि स्पष्ट व्याख्या की है -'**धर्म वह है, जो हृदय से सत्य कर्तव्य का पालन करता है। वो करो जिससे भय, शंका, लज्जा आदि न हो। स्मरण रखें अग्नि में ईंधन और घी डालने से अग्नि बढ़ती जाती है। वैसे ही कामवासना के उपयोग से कामवासना कभी शांत नहीं होती, उल्टे बढ़ती जाती है। पूरा समाज अपने कर्मों का फल पा रहा है।**'[7]

आदिवासियों में धार्मिक आडंबर, अंधविश्वास एवं रूढ़ियाँ पिछड़ेपन का मुख्य कारण है। उपन्यासकार ने धर्म के इस विकृत रूप से बाहर निकालने के लिए ही धर्म की सार्थक व्याख्या की है। 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में फादर संजीव को बताते हैं कि रूढ़ियों ने धर्म पर

'संस्कृति' मानव के बाह्य एवं आत्मीय जीवन की अभिव्यक्ति है। इसका प्रयोग हम निरन्तर दैनिक जीवन में इस रूप में करते हैं कि हमारी संस्कृति में यह उल्लेखित है। इसी के अनुसार हमें व्यवहार की इजाजत एवं बन्धन है। 'संस्कृति' शब्द आचारगत व्यवहार का नाम है। जो सम्+कृ+क्तिन् प्रत्यय लगकर निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ- सुधार, परिष्कार, परिष्करण व परिमार्जन होता है। सामान्यत: संस्कृति शब्द धार्मिक क्रियाओं एवं व्यक्ति के मानसिक, बौद्धिक और स्वभावगत परिष्करण के साथ-साथ प्रवृत्तियों एवं इच्छाओं के सामंजस्य एवं राग-द्वेष आदि के परिमार्जन के रूप में प्रयुक्त होता है। जिन कार्यों से हमारे आचार-विचार बनते एवं निखरते हैं, जिससे हमारी रुचि परिमार्जित होती है। उन सब का सम्बन्ध संस्कृति से है। मानव व्यवहार को संस्कारित करने वाले तत्त्व जिनमें - नैतिकता, सच्चाई, ईमानदारी, सद्गुण, सत्यम् शिवम् सुंदरम् आदि सभी संस्कृति के अंग हैं।

प्रहार किया है और आडंबर उसकी नींव को खोखला कर रहे हैं। धर्म को शाखाओं में विभक्त करके कट्टरता का भाव भी धर्म की जड़े काट रहा है। फादर समझाते हैं कि धर्म में जितनी उदारता, दया, करुणा, त्याग, तपस्या का संचार होगा, वही समाज का पालक व पोषक बन सकता है। धर्म का मर्म है - दूसरों की भावनाओं को समझना, दूसरों के प्रति आस्था, दूसरे के विश्वासों का सम्मान, अपने विश्वासों में दृढ़ता एवं हृदय में पवित्रता

का भाव आदि बाकी सब कर्मकांड है। धर्म की ओर मोड़ने के उपाधान मात्र है। मानवधर्म सत्य, अहिंसा, करुणा, आत्मसंयम, समर्पण, त्याग, ईमानदारी से ही शोभा पाता है। असहाय की सहायता करना कर्म बंधन से मुक्ति का मार्ग है। ईमानदारी से बढ़कर कोई नीति नहीं है। ईश्वर का निवास स्थान मंदिर, मस्जिद, चर्च, न होकर मनुष्य का हृदय है। इस प्रकार हमारे सद्‌गुणों का चरम विकास ही धर्म है, जो समाज को सन्मार्ग दिखाकर नियंत्रित, विनियमित, निर्देशित एवं व्यवस्थित रखता है। उपन्यास में लेखक धार्मिक कट्टरता, असहिष्णुता को धर्मान्धता की संज्ञा देकर उससे बचने की प्रेरणा दी हैं। 'मगरी मानगढ़ गोविन्द गिरि' उपन्यास में गोविन्द गिरि आदिवासी समाज को संगठित करने एवं उनके सर्वांगीण विकास के लिए मानवधर्म को ही सर्वोपरि मानते हैं और हक की लड़ाई अहिंसात्मक शस्त्रों से लड़ने की सलाह देते हैं। 'धूणी तपे तीर' में मानवीय धर्म के सभी पहलुओं जैसे परछिद्रान्वेषण से बचना, किसी के दिल को ठेस न पहुँचाना, भलाई करना, असत्य भाषण से परे आदि को धारण करने को ही व्यक्ति और समाज की उन्नति का मूल मानते है। वे परोपकार को सबसे बड़ा धर्म और पर पीड़ा को सबसे बड़े पाप की संज्ञा देते हैं। सम्पसभा का उद्देश्य ही समाज को सन्मार्ग पर लाना था ईश्वर तक पहुँचने के मार्ग की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं कि – **'ईश्वर के निकट पहुँचने का मार्ग धर्म है। धर्म से ही ईश्वर के प्रति आस्था पैदा होती है। धर्म से ही मनुष्य में नैतिक गुणों का विकास होता है और दंभ, पाखंड, व हिंसा की प्रवृत्तियों का विनाश होता है। धर्म का मूल सन्तों ने 'दया' बताया है। दया के भाव को अपनाना अनिवार्य है। हरे दरख्तों को नहीं काटना पेड़-पौधों के प्रति दया-भाव है। अपने मन, वाणी और कर्म से किसी मनुष्य को नहीं सताना मानव के प्रति दया भाव है। किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाना, जीवों के प्रति दयाभाव है। इससे मनुष्य का मन निर्मल होता है। बिना दयाभाव के धर्म की बात करना बेमानी है।'**[8]

यज्ञ एवं ऋण :

ऋण एवं यज्ञ का विधान भी आदिवासी समाज की विशिष्टता है। हिंदूशास्त्रों के अनुसार ऋणों से उऋण होने पर ही व्यक्ति को संकटों से छुटकारा मिल सकता है। तीनों तापों – दैहिक, दैविक और भौतिक से मुक्ति का साधन भी ऋणों से उऋण होना है। आदिवासी समाज में ऋणग्रस्तता सबसे बड़ी चुनौती है। इससे उबरने के लिए बैठ-बेगार, बंधुआ बनना एवं अन्य सभी दासता भी सहर्ष स्वीकार है। 'परजा' उपन्यास में शुक्रजानी का परिवार गोती प्रथा के अभिशाप से अभिशप्त है। उसे यह चिंता सताती है कि साहूकार के ब्याज की ऋण शृंखला से मुक्ति कैसे मिलेगी ? इस हेतु वह कुछ भी करने को तैयार है। 'बाजत अनहद ढोल' उपन्यास में देवऋण से मुक्ति को संघर्षों से छुटकारा पाने का उपाय बताया है। मनुष्य देवताओं का भी ऋणी होता है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति, आदि संसाधन मानव जीवन में सहायक होते हैं। इसलिए वह उनका भी ऋणी होता है। यह ऋण दान और यज्ञ करने से चुकता है, ऐसी उनकी धारणा है। इसलिए वे दो जून की रोटी के लिए मोहताज होने पर भी यज्ञ, बलि, दान एवं सामूहिक भोज आदि का आयोजन करते हैं। उक्त रस्मों को संपन्न करने के लिए बंधुआ भी बन जाते हैं। यहां हर संकट का उपाय पूर्वजों एवं देवताओं को संतुष्ट करना है। 'आदिभूमि' उपन्यास की निम्न पंक्तियां दृष्टव्य है – **'सोमा ने सोचा अब पोते के मंगल के लिए सारे बिरु (पूजा) कर ले, जैसे डूँबा, – डायनों, देवता किसी की अशुभ दृष्टि, कोप, शाप, न पड़े। तब वह ढेरों दिन जी सकेगा। ढेरों बाल-बच्चे होंगे, धरती पर खूब फसल होगी। वंश भी लता की तरह फैल जाएगा। बोंडा पहाड़ पर इस छोर से उस छोर तक।'**[9]

'धूणी तपे तीर' व 'मगरी मानगढ़ गोविन्द गिरि' उपन्यासों में गोविन्द गिरि द्वारा धूणी धामों की स्थापना करके समाज को यज्ञ के लिए प्रेरित करने के प्रयास में यही धारणा अंतर्निहित है। वे गुरु के उपदेशानुसार धूणी में नारियल, घी, मिठाई डालकर हवन करते हैं। संध्यावंदन, चंदन का तिलक लगाना, स्नान करना, आरती, भक्तिगीत, पशु-पक्षियों की सेवा, अहिंसा आदि की शिक्षा देकर समाज को ऋणों से मुक्त होने के अनेक उपायों से अवगत कराते हैं। स्वयं के कर्मों का फल पिता, भाई-बहन आदि को मिलता है। पितृ-ऋण के सम्बन्ध में ऐसी धारणा है, जिसे उतारने के लिए धर्म के अनुसार

कुल परम्परा का पालन श्राद्ध करना, पितृपक्ष में तर्पण, संतान उत्पत्ति, व्रतों का पालन, दान, यज्ञ, पर्यावरण संरक्षण, आदि को करने का प्रावधान है। 'आदिभूमि' में अपने पूर्वजों को डूमा की संज्ञा दी है और उनकी संतुष्टि के लिए पूजा-पाठ का प्रावधान है। वे अपने पूर्वजों की स्मृति में पत्थर गाड़ते हैं, उसकी पूजा करते हैं, जिसके पीछे यह धारणा है कि पूर्वजों की आत्मा उसका मार्गदर्शन करती रहेगी। साथ ही इधर-उधर भटकने से भी बच जाएगी। पितृ ऋण का उदाहरण है - **'चार पीढ़ी का आदमी सोमा मुदली के बेटे, पोते, पड़पोते का पूर्व पुरुष है। मगर उनके डूमा का पूर्व पुरुष नहीं हो सका, क्योंकि वह खुद अब तक डूमा नहीं बना। अब अपनी पैदा की गई संतानों के डूमा से डरेगा, भाग देगा, संतुष्ट रखेगा, वरना वे विपद खड़ी करेंगे। अत: उसके घर के बीच में खंभे पर बाप दादों, परदादों के साथ बेटे-पोते-पड़पोते के डूमा भी मिलकर उसकी कदम-कदम पर चौकसी करेंगे।'** [10]

मांडना एवं भित्तिचित्र :

आदिवासियों में मांडना एवं भित्तिचित्र की लोककला काफी मशहूर है। लोककला में समाज की विभिन्न मान्यताओं, प्रथाओं, रस्मों. धार्मिक विश्वासों एवं प्रकृति की प्रस्तुति की जाती है। ये आदिवासी जीवन की उमंग उल्लास को अभिव्यक्त करते हैं। संथाल जनजाति में चित्रों की रचना करने वाले को 'जादो' कहा जाता है। आदिवासी तो हर स्त्री कलाकार की उपाधि धारण किए हुए हैं। संथाल भित्ति चित्र में लाल, काले, सफेद रंगों का प्रयोग करते हैं। ये अपनी दीवारों और घरों में फूल, पत्ती, पौधे, मछली एवं स्वास्तिक आदि के चित्र उकेरते हैं। आज उनकी यह कला व्यापार की दृष्टि से वैश्विक पटल पर अपनी पहचान बना चुकी है। मैंने उनसे साक्षात्कार में पाया कि उन्हें यह कला पूर्वजों से विरासत में मिली है और वे विभिन्न उत्सवों पर इन्हें विशेष रूप से चित्रित करती हैं। गोपीनाथ महांती के 'परजा' उपन्यास में उड़ीसा के कटापुरा जंगल में रहने वाले आदिवासी समाज की पौष पर्व पर मांडना एवं भित्ति चित्रकला का निर्वहन करती आदिवासी महिलाओं की छटा दर्शनीय है- **'जल्दी उठकर मूँह पर बासी पानी छींटते न छींटते गांव की बहू-बेटियाँ लाल माटी लाने चल पड़ी है। घर में लिपाई-पुताई होगी काम लग गया है। भींत पर सफेद माटी, लाल माटी, बरामदे में काली माटी, पीली माटी, इनके बाद माँडना माँडेंगे। घर की लिपाई हुई। पट्टी-पट्टी पर कई रंग के चित्र माटी से बने, कोयला पीसकर अलसी के तेल में मिलाकर किवाड़ पर एवं चौखट पर काला रँग दिया, घर चमक उठा।'** [11]

अतिथि सत्कार :

अतिथि सत्कार तो इनके खून में ही रचा बसा है। कई जगह तो अश्रुजल से अतिथि के पैर धोने के प्रमाण भी मिले हैं। अतिथि को देवता के समान मानते हैं, जिसके पीछे उनकी धारणा है। कि अतिथि अपने आतिथ्य के ग्रहण से संचित पुण्यों को घर में छोड़ जाते हैं। आदिवासी अपनी इच्छाओं की पूर्ति त्याग भावना से करके, अतिथि की सेवा को परम धर्म मानते हैं, जिसे एक यज्ञ की संज्ञा देते हैं। अतिथि को खिलाने के बाद ही बचे हुए अन्न का सेवन करते हैं, यदि नहीं बचा तो बिना जलपान के भी सो जाते हैं। अतिथि की इच्छानुसार हुक्का, भोजन, जलपान एवं दान-दक्षिणा अर्पण करते हैं। **'अरण्य में सूरज' उपन्यास की निम्न पंक्तियाँ इसका ज्वलंत उदाहरण है -'अतिथि देवो भव:' आज भी इनके खून में बसा हुआ है। कोई भी शहर से आ जाए उसका सत्कार करने में स्वयं भूखे रह जाते हैं, परमानंदजी सोच रहे हैं कि मैं यहां आया तो किसी ने भी मुझे दुत्कारा नहीं, सभी ने मेरा सम्मान किया और मुझे रहने को जगह दी थी।'** [12]

मेले :

आदिवासियों में मेलों का विशेष महत्त्व है। उनमें मेले और त्योहारों की जैसी अनुपम छटा देखने को मिलती है। वैसी अन्य समाजों में दुर्लभ है। अधिकांश मेलों का संबंध किसी देवी-देवता या अन्य धार्मिक भावना से जुड़ा होता है। इसलिए मेलों में संपूर्ण लोकजीवन

पूरी सक्रियता एवं निष्ठा से सम्मिलित होता है। इन मेले के अलग-अलग क्षेत्रों में अपने गोत्र एवं अपनी अलग संस्कृति होती है, जिससे इनके प्रति जनसमाज की गहरी भावात्मक आस्था, श्रद्धा, समर्पण की भावना पाई जाती है। वर्षों बीत जाने के बाद भी लोकआस्था के ये स्थल अपनी पहचान बनाए हुए हैं। आदिवासी युवक-युवतियाँ, बच्चे, वृद्ध सभी में मेलों की उमंग, चाह, श्रद्धा एवं विश्वास देखने को मिलता हैं। गांव के लोग उमंग से भरे हुए झुंड के झुंड पैदल या अन्य किसी यातायात के साधन में बैठकर मेला देखने जाते हैं। 'अरण्य में सूरज' उपन्यास में चित्रित मेले में, सोहना के परिवार के सभी लोग एवं गांव के अन्य परिवारों में भी मेला देखने का उत्साह, उमंग का मार्मिक चित्रण हुआ है। ये मेले आदिवासियों के लिए मेल-मिलाप के स्थल भी होते हैं। राजुड़ा सोहना को बताता है। कि दादा, सोहणी, रमेश जीजा, लक्ष्मी, गंगा भाभी आदि सभी मेले में सम्मिलित होने के लिए आ रहे हैं। बरसात संतुलित मात्रा में होने के कारण मेले के उत्साह में चार चाँद लग गए। इन मेलों से जरूरत की आवश्यक चीजें जैसे - चूड़ी, शृंगार-प्रसाधन के साधन, गुड़, शक्कर, घी, तेल, नमक, मिर्ची, हल्दी, सब्जियां, फल, कपड़े, आभूषण एवं अन्य सभी चीजें क्रय करके लाने का दृश्य बहुत मनोहारी लगता है। गृहस्थी के भार से मुक्त होकर मेले में व्यक्ति स्वछन्दता का अनुभव करते है। मेले का दृश्य दृष्टव्य है - **'तालाब किनारे मेला लगा था, डोलर झूले से लेकर चकरी झूला, हवाई झूला सभी वहां थे। खाने-पीने का सामान भी खूब बिक रहा था। मेले में गांव वाले अधिक थे, गंगा ने पीले रंग की साड़ी पहनी थी और सोहनी ने भी अच्छे कपड़े पहन रखे थे। गंगा के आज भी घुंघट था। अभी कुछ दिन पहले ही सोहना मँजरी के कारण आहत हुआ था तो उसे गंगा को देखने की ललक बढ़ गई थी। गांव वालों के लिए चूड़ी, बिंदी, लाली, रिबन आदि सामानों की बहुत सारी दुकानें सजी थी।'**[13]

'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में हथियादह के चैत्री मेले की विशिष्टता अंकित है। इसमें तीरंदाजी प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है। इसके विजेता को पुरस्कार एवं समाज में उचित स्थान दिया जाता है। सगोत्रीय यौन संबंध भी निसिद्ध होने पर भी विजेता के लिए शिथिल हो जाते हैं। यह मेला आदिवासी समाज में एकजुटता, प्रेम व भाईचारे के भावों का संचार करता है। हथियादह के चैत्री मेले में सम्मिलित होने के लिए आदिवासी युवक पूरे साल धनुर्विद्या का अभ्यास करते थे। हर युवक का सपना होता था कि वह भी विजित हो, एक ही विजेता के रूप में चुना जाता है, बाकी के निराशा ही हाथ लगती है। वे पराजय को ईश्वर का प्रसाद मानते हैं, मेले के दृश्य बहुत ही अद्‌भुत है। जैसे कहीं अलाव जल रहे, कहीं रोटियां सीक रही, कहीं-कहीं तंबुओं को ठीक किया जा रहा है। कहीं गुड़, नमक, तेल, मुर्गे का भाव किया जा रहा तो कहीं पशुओं की बोली लगाई जा रही आदि दृश्य परवश ही ग्राहकों का ध्यान अपनी और आकर्षित कर लेते हैं। ये मेले युवक-युवतियों के कटाक्ष और प्रेम पूर्ण वार्तालाप के अखाड़े होते हैं। हारिल मुरमू का तीरंदाजी प्रतियोगिता में प्रतियोगी बनने का मूल उद्देश्य लाली को पाना था और वह इसमें विजित भी हो जाता है। हारिल मुरमू सोचता है कि - **'क्या चावल, धोती और रुपए के लिए ही अपने मान प्रतिष्ठा की बाजी लगाकर तीर खेलने का उतरा था, हारिल मुरमू इतने छोटे पुरस्कार, जिन्हें हाट से खरीदा जा सकता था, के लिए कठिन अभ्यास करता रहा था हारिल मुरमू। हारिल की अभीप्सा थी लाली जो उसे रूईदास गढ़ की महारानी से भी सुंदर लगती थी। लाली की बोली- बानी ....जैसे बारिश की बूंदों का पत्तियों से झरता संगीत ....। हारिल मुरमू के लिए तो लाली की नेह भरी आंखों में ही था उसका गाँव। अपना जंगल सारी दुनिया। लाली की कत्थई आंखें ही थी बाधामुंडी के उस युवक धनुर्धर के जीने-मरने का निमित्त .....।**[14]

प्रतियोगिता जीतने पर हारिल का स्वागत सत्कार किया गया। महतो हारिल मुरमू को बिना गांव, गोत्र, माता-पिता आदि का परिचय जाने उसके सत्कार में

कोई कमी नहीं रखता है। अनेक प्रकार के व्यंजन बनाकर उन्हें खिलाकर विदा करता है।

हर साल राजस्थान के डूंगरपुर में माघ पूर्णिमा पर बैणेश्वर मेला लगता है। एकादशी से शुरू होकर पूर्णिमा को समाप्त होता है। इस मेले को आदिवासियों के महाकुंभ की संज्ञा दी गई है। इसमें राजस्थान के अलावा मालवा और गुजरात के आदिवासी भी भाग लेते हैं यह सोम, माही और जाखम नदियों के संगम स्थल पर भरता है। 'धूणी तपे तीर' एवं 'मगरी मानगढ़ गोविन्द गिरि' उपन्यास में इस मेले की विशिष्टता दर्शनीय है। यह मेला आदिवासियों में आस्था, विश्वास, उमंग, उत्साह एवं सरसता का संचार करता है। इस मेले में आदिवासियों के गांव के गांव उमड़ पड़ते हैं। और वे विभिन्न पूजाओं के माध्यम से पूर्वजों की मुक्ति की कामना करते हैं।

निष्कर्ष :

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में वर्णित आदिवासी संस्कृति के विभिन्न तत्त्वों का अध्ययन, विश्लेषण करने के पश्चात् सारांशत: कहा जा सकता है कि ये उपन्यास आदिवासी लोक जीवन, मूल्यों, त्योहारों, संस्कार, वर्णाश्रम, धर्म, कर्म, लोकाचार, अतिथि-सत्कार, लोक-कला, लोकगीत, सामाजिक प्रतिमान, ज्ञान, यज्ञ, प्रथागत कानून एवं जल जंगल, जमीन, से जुड़ाव आदि संस्कृति के विविध आयामों के प्रामाणिक दस्तावेज है। इनमें आदिवासी संस्कृति की विशिष्टता विवेचित एवं संरक्षित है। भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्त्वों को तो संरक्षण मिला ही है, साथ ही सनातन धर्म के उज्वल रूप को भी विवेचित किया गया है, इन्हें आदिवासी सांस्कृतिक तत्त्वों का महासागर कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. प्रो एम. एल. गुप्ता एवं डॉ. डी. डी. शर्मा : 'समाजशास्त्र', साहित्यभवन प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ सं. 188
2. प्रो एम. एल. गुप्ता एवं डॉ. डी. डी. शर्मा : 'समाजशास्त्र', साहित्यभवन प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ सं. 189
3. महुआ माजी : 'मरंग गोंडा नीलकंठ हुआ', राजकमल प्रकाशन, 2012, पृष्ठ 39
4. महुआ माजी : 'मरंग गोंडा नीलकंठ हुआ', राजकमल प्रकाशन, 2012, पृष्ठ 32
5. प्रतिभा राय : 'आदिभूमि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2019
6. राकेश कुमार सिंह : 'जो इतिहास में नहीं है', पृष्ठ सं. 379
7. राजेंद्र मोहन भटनागर : 'मगरी मानगढ़ गोविन्द गिरि', वाणी-प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011, पृष्ठ 85
8. हरिराम मीणा : 'धूणी तपे तीर', साहित्य उपक्रम, प्रथम संस्करण, जनवरी 2008, पृष्ठ 228
9. प्रतिभा राय : 'आदिभूमि', पृष्ठ 96
10. प्रतिभा राय : 'आदिभूमि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ सं 123
11. गोपीनाथ महान्ती : 'परजा', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 57
12. अजित गुप्ता : 'अरण्य में सूरज', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
13. अजित गुप्ता : 'अरण्य में सूरज', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009 पृष्ठ 120
14. राकेश कुमार सिंह : 'जो इतिहास में नहीं है', पृष्ठ सं. 7

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

প্রেমচন্দৰ অমৰ সৃষ্টি ‘কফন’

ড° নবকান্ত শর্মা

সহকাৰী অধ্যাপক, হিন্দী বিভাগ
কন্যা মহাবিদ্যালয়, গুৱাহাটী, অসম
ম'বাইল ঃ ৮৬৩৮২৮১০৫২

০১ ভূমিকা ঃ

মৌখিক আৰু লিখিত সাহিত্যৰ মাধ্যমেৰে ব্যক্তি আৰু সমাজজীৱনৰ উমান পাব পাৰি। এইদৰে চিৰ পৰিবর্তনশীল জীৱন আৰু সমাজৰ প্রতিচ্ছবিস্বৰূপ কথা সাহিত্যৰ মাজত প্রাচীন কালৰ পৰাই নানা ঘটনা পৰিঘটনাই কলাত্মক ৰূপত অভিব্যক্তি লাভ কৰি আহিছে। পৌৰাণিক আৰু মহাকাব্যিক সাহিত্যতো এনে সৰু-বৰ ঘটনা বা গল্পৰ পয়োভৰ পৰিলক্ষিত হয়। প্রাচীন ভাৰতীয় সাহিত্যত মূলতঃ নীতিবিষয়ক আৰু আদর্শমূলক কাহিনীবোৰে স্থান লাভ কৰা দেখা যায়। কিন্তু পৰৱর্তী সময়ত গল্পৰ বিষয়বস্তু আৰু উপস্থাপনৰ ৰীতিত আমূল পৰিবর্তন সাধিত হয়। বিশেষকৈ ভাৰতত আধুনিক পাশ্চাত্য শিক্ষাৰ প্রসাৰৰ লগে লগে সাহিত্যজগতত পৰিবর্তনৰ ঢল নামি আহে। অতি কাল্পনিক, নীতিনিষ্ঠ আৰু পৰলৌকিক চিন্তা চর্চা তথা বিষয়বস্তুৰ বিপৰীতে যুক্তিনিষ্ঠ, বাস্তৱবাদী আৰু পৰিচিত ঘটনাই গল্প সাহিত্যত স্থান লাভ কৰি সমকালীন সময়ক উজ্জ্বল ৰূপত দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হয়। বিভিন্ন ভাষিক আৰু প্রান্তীয় সাহিত্যৰ মিশ্রণেৰে নির্মিত বিশাল ভাৰতীয় সাহিত্যৰ মাজলৈ এইদৰে এক নব্যচেতনা প্রৱাহিত হয়। বিশেষকৈ হিন্দী সাহিত্যত এই নতুন ধ্যান-ধাৰণাৰ দ্বাৰা প্রভাৱিত আৰু পৰিপুষ্ট হৈ এচাম সাহিত্যিকে হাতত কলম তুলি সমাজ আৰু সাহিত্যত নতুন দিগন্তৰ সূচনা কৰে। স্বনামধন্য হিন্দী কথা সাহিত্যিক প্রেমচন্দই স্বকীয় বৈশিষ্ট আৰু বাস্তৱধর্মী কাহিনীৰে গল্প সাহিত্যলৈ অনবদ্য অৰিহণা আগবঢ়ায়। এই নিবন্ধত প্রেমচন্দৰ অমৰ গল্প ‘কফন’ৰ বিষয়ে আলোকপাত কৰাৰ চেষ্টা কৰা হৈছে। নির্মোহ বিশ্লেষণেৰে কফনৰ মূল্যাংকন কৰাৰ বাবে যৎকিঞ্চিৎ প্রয়াস কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ ঃ সমাজব্যৱস্থা, আর্থিক দৈন্যতা, শ্রমিক, জীৱনসংগ্রাম, কুসংস্কাৰ।

০২ লেখটিৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

(ক) প্রেমচন্দৰ জীৱন আৰু সাহিত্যৰ বিষয়ে আলোকপাত কৰা।
(খ) কফন গল্পটিৰ তথ্যনিষ্ঠ মূল্যাংকন কৰা।
(গ) প্রেমচন্দৰ সৃষ্টিৰ সৈতে অসমীয়া পাঠকৰ পৰিচয় কৰোৱা।
(ঘ) ভাৰতীয় গ্রাম্যজীৱনৰ সঁচা স্বৰূপ দাঙি ধৰা।

০৩ প্রেমচন্দৰ ব্যক্তিত্ব আৰু কৃতিত্ব ঃ

সুসমৃদ্ধ হিন্দী কথা সাহিত্যৰ মহীৰুহ স্বৰূপ প্রেমচন্দৰ জন্ম কাশীৰ সমীপৱর্তী লমহী নামৰ গাঁৱত হৈছিল। ১৮৮০ চনত জন্ম লাভ কৰা প্রেমচন্দৰ পিতৃ আছিল অজায়ব ৰায় আৰু মাতৃ আনন্দী দেৱী। অজায়ব ৰায়ে ডাকঘৰত এটি সাধাৰণ পদত চাকৰি কৰিছিল। শৈশৱ কালত পিতৃয়ে প্রেমচন্দক মৰমতে ধনপত ৰায় আৰু খুড়াকে নবাব ৰায় বুলি মাতিছিল।

শৈশৱকালত এজন মৌলৱীৰ তত্বাবধানত প্রেমচন্দই উর্দু আৰু ফাৰচী ভাষা শিকিছিল। ইয়াৰ পিছত তেওঁ কাশী কুইন্চ কলেজত ভর্তি হয়। মেট্রিকত উত্তীর্ণ হৈ তেওঁ হিন্দু কলেজত পঢ়িব লয়। পৰৱর্তী সময়ত সম্পূর্ণ নিজা প্রচেষ্টাৰে এফ, এ আৰু বি,এ পৰীক্ষাত উত্তীর্ণ হয়।

নিজৰ কলেজীয়া শিক্ষা সমাপ্ত কৰি প্রেমচন্দই প্রথমে অধ্যাপক পদত যোগদান কৰে। ইয়াৰ পিছত শিক্ষা বিভাগত উপ-সহ পৰিদর্শক ৰূপে নিযুক্তি লাভ কৰে। সেই সময়ত সমগ্র দেশ জুৰি স্বাধীনতা আন্দোলনে গা কৰি উঠিছিল। ১৯২০ চনত প্রেমচন্দই নিজৰ পদৱীৰ পৰা ইস্তফা দিয়ে। চাকৰি জীৱনৰ পৰা বিৰতি লোৱাৰ পিছত প্রেমচন্দই আলোচনী সম্পাদনাৰ কামত মনোনিবেশ কৰে। প্রথমে কাশীৰ পৰা প্রকাশিত 'মর্য্যদা' নামৰ আলোচনীখনৰ সম্পাদকৰ দায়িত্ব বহন কৰে। ইয়াৰ পৰৱর্তী সময়ত লক্ষ্নৌৰ পৰা প্রকাশিত 'মাধুৰী' নামৰ আলোচনীখন সম্পাদনা কৰে। এইবাৰ প্রেমচন্দই কাশীত নিজাকৈ এটি প্রেছ খোলে আৰু সেই প্রেছৰ পৰা 'হংস' আৰু 'জাগৰণ' নামৰ প্রসিদ্ধ আলোচনী দুখন প্রকাশিত হয়। প্রেমচন্দই দুয়োখন আলোচনীৰ সম্পাদনাৰ গুৰু দায়িত্ব বহন কৰে। ১৯৩৬ চনত এই মহান সাহিত্যিক গৰাকীৰ দেহাৱসান হয়।

মৌলিকতা, অতুলনীয় প্রতিভা আৰু স্বকীয় দক্ষতাৰে মহীয়ান প্রেমচন্দই হিন্দী সাহিত্যৰ ভড়াল চহকী কৰি থৈ গৈছে। ঔপন্যাসিক আৰু গল্পকাৰ - দুয়ো ৰূপতেই প্রেমচন্দ অদ্বিতীয় আৰু অনন্য। প্রেমচন্দৰ উপন্যাসৰাজিৰ ভিতৰত 'নির্মলা', 'সেৱাসদন', 'কর্মভূমি', 'গবন', 'প্রেমাশ্রম', 'ৰংভূমি', 'গোদান' আদি অন্যতম। সমালোচকৰ মতে প্রেমচন্দৰ অন্তিম উপন্যাস 'গোদান' তেওঁৰ সর্বশ্রেষ্ঠ কৃতি। প্রেমচন্দৰ উপন্যাসত ভাৰতীয় সমাজৰ বিভিন্ন সমস্যা আৰু দিশ অতি বলিষ্ঠ ৰূপত প্রাণ পাই উঠিছে। সমাজৰ

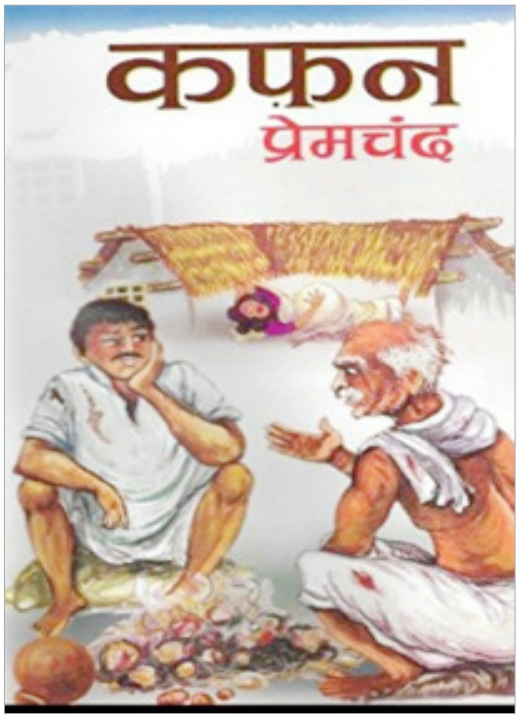

উপেক্ষিত, অৱহেলিত শ্রেণীকো প্রেমচন্দই যথাযোগ্য স্থান প্রদান কৰি উপন্যাস সাহিত্যক সমাজমুখী আৰু বাস্তৱিক কৰি তুলিছে। খেতিয়ক, শ্রমিক, বিধবা, বেশ্যা বিভিন্ন বৃত্তিৰ লোকসকলৰ জীৱনসংগ্রামক অতি সূদ্দেৃষ্টি আৰু সহানুভূতিৰে প্রেমচন্দই পর্য্যবেক্ষণ কৰিছে আৰু উপন্যাসত তাক সবল আৰু মার্মিক ৰূপত ফুটাই তুলিছে যিয়ে পাঠকক আহ্লাদিত কৰে।

আনহাতে হিন্দী চুটিগল্পৰ সম্রাট প্রেমচন্দই নিজৰ গল্পত আদর্শ আৰু বাস্তৱৰ সুষম সংমিশ্রণ ঘটাইছে। টলষ্টয়, মহাত্মা গান্ধী, ৰবীন্দ্রনাথ ঠাকুৰ আদি মহান বিভূতিৰ প্রেৰণাৰে উজ্জীৱিত প্রেমচন্দৰ গল্পত সাধাৰণ মানুহৰ জীৱন পৰিক্রমা উজ্জ্বল ৰূপত মূর্তমান হৈ উঠিছে। বিষয়বস্তু, চৰিত্র, সংলাপ আৰু উপস্থাপন শৈলীৰ স্বকীয়তাই প্রেমচন্দৰ গল্পক নবীন মাত্রা প্রদান কৰিছে। বৈজ্ঞানিক চিন্তাধাৰা, যুক্তিনিষ্ঠতা, প্রগতিশীল মনস্কতা আৰু মনোবিশ্লেষণাত্মক দৃষ্টিভংগীয়ে প্রেমচন্দৰ সমস্ত গল্পৰাজিকে সমৃদ্ধ কৰিছে। সমাজত প্রচলিত কুসংস্কাৰ, ভেদাভেদ, সংকীর্ণতা, অৱদমন আৰু স্থবিৰতাক তীব্রভাবে প্রহাৰ কৰি প্রেমচন্দই নিজৰ সাহসী আৰু উচ্চস্তৰীয় মানসিকতাৰ পৰিচয় দাঙি ধৰিছে। এই মানসিকতাৰ মাজত সমাজৰ বাবেও এক তীক্ষ্ণ বার্তা নিহিত হৈ আছে।

হিন্দী সাহিত্যৰ ৰত্ন প্ৰেমচন্দই প্ৰথমাৱস্থাত উৰ্দূ ভাষাত গল্প লিখা আৰম্ভ কৰিছিল। পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ত হিন্দীত গল্প লিখাত মনোনিবেশ কৰে। 'কফন', 'পুচ কী ৰাত', 'বড়ে ঘৰ কী বেটী', 'ঈদগাহ', 'শতৰঞ্জ কে খিলাড়ী', 'কাৰ্বালা', 'নমক কা দাৰোগা' আদিৰ দৰে অমৰ গল্পৰ স্ৰষ্টা প্ৰেমচন্দই তিনিশতকৈও অধিক গল্প ৰচনা কৰিছে। প্ৰেমচন্দৰ গল্পৰাজি 'প্ৰেম দ্বাদশী', 'প্ৰেম পচীশী', 'প্ৰেম পূৰ্ণিমা', 'প্ৰেম প্ৰসূন', 'সপ্তসৰোজ', 'নবনিধি', 'মানসৰোবৰ' আদি গল্প সংকলনত সংগৃহীত হৈ আছে।

লক্ষণীয়ভাবে হিন্দী সাহিত্য জগততে নহয়, সৰ্বভাৰতীয় তথা বিশ্ব সাহিত্যতো প্ৰেমচন্দৰ গল্পই সুকীয়া সমাদৰ লাভ কৰিছে। প্ৰান্তীয় ভাষাৰ উপৰিও বিশ্বৰ বিভিন্ন ভাষালৈ প্ৰেমচন্দৰ সাহিত্য অনূদিত হৈছে। বিষয়বস্তুৰ জীৱন্ততা, ভাষাৰ সৰলতা আৰু ঘটনাৰ বাস্তৱিকতাই প্ৰেমচন্দৰ গল্পক সৰ্বস্তৰৰ পাঠকৰ মাজত জনপ্ৰিয় কৰি তুলিছে। এই জনপ্ৰিয়তা আজিও অপৰিৱৰ্তিত।

০৪ কফন ঃ

০৪.১ কথাবস্তু

প্ৰচলিত সমাজৰ দ্বাৰা উপেক্ষিত, জীৱনৰ প্ৰতি উদাস, এলেহুৱা স্বভাৱৰ পিতা-পুত্ৰ তথা সদ্যপ্ৰয়াত ঘৰখনৰ একমাত্ৰ মহিলা গৰাকীৰ জীৱন পৰিক্ৰমাৰ আধাৰত 'কফন' গল্পটি ৰচিত হৈছে। কফন শব্দৰ অৰ্থ হ'ল শৰ ঢকা বগা কাপোৰ। এখন কফনক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই গল্পটিৰ কাহিনীভাগ গঢ় লৈ উঠিছে সুসংহত ৰূপত।

কফনৰ কাহিনী অনুসৰি ঘিচু আৰু তেওঁৰ পুত্ৰ মাধৱে জুহালৰ গুৰিত আলু পুৰি পুৰি খাই বিভিন্ন বিষয়ত কথা পাতি আছিল। আনহাতে ঘৰৰ ভিতৰত মাধৱৰ পত্নী বুধিয়া প্ৰসৱ বেদনাত ছট্‌ফটাই আৰ্তনাদ কৰি আছিল। দুয়ো নিজৰ কথা আৰু খোৱাক লৈ ব্যস্ত আছিল। বুধিয়াৰ যন্ত্ৰণা বাঢ়ি আহিছিল যদিও এজনৰো সেইফালে গুৰুত্ব নাছিল। ঘিচুৱে মাধৱক বোৱাৰীৰ ওচৰত যাব কৈছিল, আনহাতে মাধৱেও পিতাকক বুধিয়াৰ ওচৰত যাব দিছিল। আচলতে দুয়োৰে মনত ভয় আছিল যে কোনোবা এজন উঠি গলেই আলুৰ এটা ডাঙৰ অংশ আনজনৰ উদৰস্থ হ'ব। মনোবৈজ্ঞানিক দৃষ্টিৰে চৰিত্ৰ দুটিৰ কামকাজ দ্ৰষ্টব্য।

সুস্বাদু পো�ৱা আলুৰ জুতি লৈ থকা অৱস্থাত ঘিচুৰ বিশ বছৰ আগৰ এখন বিয়াৰ কথা মনত পৰিছিল। সেইখন ঠাকুৰ পৰিয়ালৰ বিয়া আছিল। ছোৱালী পক্ষই সেই বিয়াত দেশী ঘীউৰে বনোৱা পুৰি, চাট্‌নী, ৰায়তা, তিনিবিধ শুকান তৰকাৰী, এবিধ ৰসযুক্ত তৰকাৰী, দৈ, মিঠাই আৰু যে কত কি খুৱাইছিল। সকলোৱে উদৰ পূৰাই ইচ্ছামতে খাইছিল। বিলনীবোৰে নালাগে বুলি কলেও পাতত সুগন্ধিযুক্ত গৰম গৰম কচুৰী দি গৈছিল। ঘিচুৱে ক'লে যে সি যেনেতেনে তাৰ পৰা উঠি আহি বিচনাত পৰিছিল। মাধৱে কথাত ৰস পাইছিল আৰু তাৰ মনতো তেনে এক ৰাজকীয় ভোজভাতৰ অনুষ্ঠানত অংশ লোৱাৰ লালসা জন্মিছিল। এইদৰে দুয়ো বিভিন্ন কথাৰ অৱতাৰণা কৰি পিন্ধি থকা ধুতিৰে নিজৰ গাটো ঢাকি আলু পোৱা চৌকাটোৰ ওচৰতে দুডাল অজগৰৰ দৰে শুই পৰিল। কথাসাহিত্যৰ মাজতো উপমা অলংকাৰৰ সুন্দৰ প্ৰয়োগ হৈছে।

ঘিচু আৰু মাধৱৰ এলেহুৱা আৰু উদাস স্বভাৱৰ কথা গাৱৰ সকলোৰে মুখে মুখে। ঘিচুৱে ঘৰত খাদ্যসম্ভাৰ নাথাকিলে গছত উঠি খৰি কাটে আৰু মাৱৰে সেয়া বজাৰত লৈ গৈ বিক্ৰী কৰে। খৰিৰ পইচাৰে আটা, চাউল আদি ঘৰলৈ লৈ আহে। দুয়ো পুনৰ নিশ্চিত মনেৰে বিশ্ৰাম কৰে। আনৰ ঘৰত কাম কৰিব গ'লেও আধা ঘণ্টা কাম কৰিব আৰু আধা ঘণ্টা চিলিম টানিব। উপায় থাকিলে কোনেও ঘিচু আৰু মাধৱক কামত নলগায়। কিন্তু বছৰ চেৰেক পূৰ্বে মাধৱৰ পত্নীৰূপে বুধিয়া ঘৰলৈ অহাৰ পিছত খোৱা-লোৱাৰ নতুন ব্যৱস্থা হৈছিল। বেচেৰী বুধিয়াই আনৰ ঘৰত কাম কৰি এমুঠি যোগাৰ কৰে আৰু বাপেক-পুতেকে আৰামেৰে খায়। সেই বুধিয়াই আজি প্ৰসৱ বেদনাত অসহায় আৰু কৰুণভাবে ছট্‌ফটাই আছে। পিতা-পুত্ৰৰ সেই বিষয়ে কোনো গুৰুত্ব নাই। তেওঁলোক একেবাৰে নিৰ্বিকাৰ।

কিবাকৈ ৰাতি পুৱাল আৰু বুধিয়াৰ কৰুণ মৃত্যুৰ বাতৰি চাৰিওফালে বনজুইৰ দৰে বিয়পি পৰিল। ঘিচু-মাধৱে কান্দিব ধৰিলে। মৃতদেহ সৎকাৰৰ বাবে প্ৰয়োজন হোৱা কফন কিনিবলৈ হাতত পইচা নাই। সেয়ে দুয়ো ধনভিক্ষা কৰাৰ উদ্দেশ্য প্ৰথমে জমিদাৰ চাহাবৰ ওচৰলৈ গ'ল। দুয়োৰে অকৰ্মণ্য স্বভাৱৰ কথা মনত পৰি জমিদাৰৰ মনে মনে বৰ খং উঠিল যদিও পৰিস্থিতিলৈ লক্ষ্য কৰি সিহঁতলৈ দুটকা দলিয়াই দিলে। ইয়াৰ পিছত অন্যান্য মহাজন, বেপাৰী আদিৰ ওচৰতো হাত পাতিলে আৰু এক মোটা অংকৰ টকা কম সময়ৰ ভিতৰত জমা হ'ল। ইয়াৰ পিছত ঘৰত বুধিয়াৰ মৃতদেহ এৰি দুয়ো কফন কিনিবৰ বাবে বজাৰলৈ গ'ল। বজাৰত উপস্থিত হোৱাৰ পিছত দুয়ো অৱলীলাক্ৰমে

এখন মদৰিালয়ত সোমাল। ক্ষুধাতুৰ পিতা-পুত্রই নিজৰ দায়িত্বৰ কথা পাহৰি বিভিন্ন খাদ্য সামগ্রীৰ লগত সুৰাপান কৰিব ধৰিলে। দুয়ো দার্শনিকৰ দৰে আলোচনা কৰিলে যে বুধিয়াই নিশ্চয় স্বর্গ পাব। কাৰণ তাই জীয়াই থাকোতেও আমাক খুৱাইছিল আৰু মৰাৰ পিছতো আমাক খুৱাইছে। ঘিচুই পুনৰ কফন প্রসংগত নিজৰ মতামত দাঙি ধৰি কলে যে এইটো কেনেকুৱা পৰম্পৰা যে জীয়াই থাকোতে শৰীৰ ঢাকিবলৈ কাপোৰ যোগাৰ কৰিব নেৱাৰা সকলকো মৰাৰ পিছত মৃতদেহ ঢাকিবলৈ কফন লাগে। ইয়াত এক তীক্ষ্ণ ব্যংগৰ প্রয়োগ হৈছে।

ঠিক এই সময়তে এগৰাকী ভিক্ষাৰী সিহঁতৰ ওচৰলৈ আহিল। পিতা-পুত্রই এখন পাতত অলপ খাদ্য ভিখাৰী জনলৈ আগবঢ়ালে আৰু জীৱনত প্রথমবাৰৰ বাবে আনক দিয়াৰ আনন্দ আৰু গৌৰৱ অনুভব কৰিলে। ক্রমশঃ মদিৰালয়ৰ বতাহ মতলীয়া হৈ উঠিল। গ্রাহকবোৰে নিজ ইচ্ছামতে আচহুৱা আচৰণ কৰিব ধৰিলে। অৱশ্যে মদিৰালয়ৰ বাবে এয়া তেনেই স্বাভাৰিক কথা। ঘিচু আৰু মাধৱো মদৰ নিচাত মাতাল হৈ উঠিল আৰু সকলো পাহৰি বিচিত্র ভংগীমাৰে নৃত্য কৰিব ধৰিলে।

০৪.২ চৰিত্রাংকন

কফন গল্পটিত মূল চৰিত্র দুটাই ঃ ঘিচু আৰু মাধৱ। ঘিচু পিতৃ আৰু মাধব তেওঁৰ পুত্র। দুয়ো এলেহুৱা স্বভাৰৰ আৰু উদাসী মনৰ। জীৱনৰ বা ভবিষ্যতৰ প্রতি কোনো দায়বদ্ধতা আৰু চিন্তা নোহোৱাকৈ দুয়ো সময় পাৰ কৰে। প্রকৃততে দুয়ো সমাজৰ অৱহেলিত শ্রেণীৰ প্রতিনিধি চৰিত্র। আলোচ্য 'কফন'ত একমাত্র নাৰী চৰিত্র হ'ল বুধিয়া। গল্পটিত বুধিয়াৰ বিষয়ে বর্ণনা দিয়া অনুসৰি তাই পৰিশ্রমী, দায়বদ্ধ আৰু সমর্পিতা নাৰী চৰিত্র। কিন্তু অকর্মণ্য আৰু হৃদয়হীন শহুৰ আৰু স্বামীৰ নির্লিপ্ততা আৰু শুশ্রূষা লাভ নকৰাকৈ বুধিয়া ইহ সংসাৰ এৰি গুচি যায়। বুধিয়া শতিকাযুৰি লাঞ্ছিতা, বঞ্চিতা আৰু নির্য্যাতিতা নাৰীৰ প্রতীক। আনহাতে কিছুমান চৰিত্রক অতি গৌণ ৰূপত দাঙি ধৰা হৈছে। জমিদাৰ, ভিক্ষাৰী, মদিৰালয়ৰ গ্রাহক আদি তেনে গৌণ চৰিত্র। চৰিত্রচিত্রনৰ দৃষ্টিৰে কফন গল্পটি সফল হোৱা বুলি ক'ব পাৰি।

০৪.৩ সংলাপ প্রক্ষেপণ

বিচিত্র ঘটনা, বাতাৱৰণ আৰু লেখকৰ উদ্দেশ্য বিকাশত এই গল্পটিৰ সংলাপে গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা পালন কৰিছে। বিশেষকৈ চৰিত্র সমূহৰ মানসিকতা উন্মোচিত কৰাত সংলাপে মহত্বপূর্ণ অৱদান আগবঢ়াইছে। সংলাপৰ ভাষা সৰল, স্পষ্ট, বলিষ্ঠ আৰু হৃদয়স্পর্শী। যেনে -

ঘিচু ঃ 'কৈচা বুৰা ৰিৰাজ হেই কি জিচে জিতে জী তন ঢকনে কো চিথড়া ভী ন মিলে, উসে মৰনে পৰ নয়া কফন চাহিয়ে।'

মাধৱ ঃ 'কফন লাশ কে সাথ জল হী তো জাতা হেই।'

গল্পকাৰে সংলাপৰ মাধ্যমেৰে প্রচলিত ত্রুটিপূর্ণ সমাজব্যৱস্থাৰ প্রতি তীব্র কটাক্ষ আৰু ব্যংগ প্রকাশ কৰিছে। সংলাপৰ ভাষা প্রাঞ্জল, কিন্তু শানিত অস্ত্রৰ দৰে তীক্ষ্ণ ধাৰাল। সমাজৰ নিষ্পেষিত মানুহৰ মানসিক ব্যথা আৰু আক্রোশ মনোবৈজ্ঞানিক ৰূপত সংলাপৰ জৰিয়তে মূর্তমান হৈ উঠিছে।

০৪.৪ দেশকাল বা বাতাবৰণ

এই গল্পত একাধিক বাতাৱৰণ চিত্রিত হৈছে। প্রথমে দুয়োৰে কঠোৰ জীৱনসংগ্রামৰ মাধ্যমেৰে সমকালীন ভাৰতীয় নিম্নবিত্ত সমাজৰ বাতাবৰণ দেখুওৱা হৈছে। বুধিয়াৰ মৃত্যুৰ পিছত মৃতকক শ্রদ্ধাঞ্জলী জনাই মহিলাসকলে দুটোপাল চকুলো টোকাৰ চিনাকি দৃশ্য, ঘিচু-মাধবৰ দ্বাৰা জমিদাৰ তথা অন্যান্যসকলৰ ওচৰত ধনভিক্ষা কৰাৰ মাধ্যমেৰে পুতৌজনক আর্থিক বাতাবৰণৰ চিত্র গল্পটিত ফুটি উঠিছে। শেষত কফন কিনিবৰ বাবে বজাৰলৈ যোৱা আৰু তাৰ মদিৰালয়ৰ সজীৱ ছবি গল্পটিত অংকিত হৈছে। মুঠতে পৰাধীন ভাৰতীয় সমাজব্যৱস্থাৰ জীৱন্ত ৰূপ গল্পটিত স্পষ্ট হৈ উঠিছে।

০৪.৫ উদ্দেশ্যধর্মিতা

স্বাধীনতাৰ পূর্বৰ ভাৰতৰ আর্থসামাজিক দিশবোৰৰ ত্রুটী বিচ্যুতিবোৰ এই গল্পটিত স্পষ্টভাবে ফুটি উঠিছে। দৰিদ্রতা, অশিক্ষা, কুসংস্কাৰ, অনগ্রসৰতা আদি নেতিবাচক দিশবোৰ গল্পকাৰে অতি নিখুত ভাবে ফুটাই তুলিছে। অন্যহাতে ঘিচু আৰু মাধবৰ চৰিত্রত ফুটি উঠা পুৰুষতান্ত্রিক মানসিকতাও এই গল্পটিৰ অন্যতম দিশ। দুয়ো দৰিদ্রতাৰ কৰুণ চিকাৰ হৈছে। সমাজৰ কৃষক, শ্রমিক, জমিদাৰ, ব্যৱসায়ী, ভূস্বামী আদিৰ আর্থিক বৈষম্য আৰু জীৱন সংগ্রামাৰ পটভূমি গল্পটিত অতি স্পষ্ট হৈ পৰিছে। নাৰীৰ প্রতি থকা অৱহেলা আৰু মধ্যযুগীয় মানসিকতা গল্পটিত

ফুটি উঠিছে। দৰিদ্রতাই গ্ৰাস কৰা, আশা হেৰাই যোৱা জীৱনবোৰৰ কৰুণ ছবি গল্পটোত স্বাভাৱিক ৰূপত প্ৰকাশ পাইছে। উদ্দেশ্যৰ দৃষ্টিৰে কফন গল্পটিক সন্দেহাতীতভাবে সফল বুলি ক'ব পাৰি।

০৪.৬ ভাষাশৈলী বিচাৰ

প্ৰেমচন্দৰ কফন গল্পটিৰ ভাষাশৈলী প্ৰবাহপূৰ্ণ, সবল আৰু স্পষ্ট। খড়ীবোলী ভাষাত লিখা গল্পটিত মাজে মাজে স্থানীয় আৰু উৰ্দু শব্দবো প্ৰয়োগ হৈছে। ঘিচুৱা, বামন, কলেজিয়া, পুন্ন, ঝমকাৰৈ আদি তদ্ভৱ তথা ঘৰুৱা শব্দৰ প্ৰয়োগ লক্ষণীয়। আনহাতে শৰাবখানা, নশা, মস্ত, খুচ, বদমস্ত, চিখৌনা, ৰিৱাজ, মেহনত, জমানা, মজা, বেদৰ্দ, দিল-দৰিয়াব, ইন্তজাম, ইন্তজাৰ, সন্নাটা আদি উৰ্দু শব্দৰ প্ৰয়োগ হৈছে। গল্পকাৰে গ্ৰামীণ সমাজত প্ৰচলিত কেইটামান প্ৰবচনৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। যেনে ঃ ঘাস খোদনা, গংগা মে নহানা, মাৰে মাৰে ফিৰনা, চুড়েল কা ফিচাদ, চাতি পিট্‌না, চীল কে ঘোসলে মে মাংস আদি। ভাষাশৈলী মূলতঃ বিৱৰণাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক ৰূপত পৰিলক্ষিত হৈছে। ঘটনাৰ বিস্তাৰ আৰু গতিশীলতাত ভাষাই নিসন্দেহে সুন্দৰ অৰিহনা আগবঢ়াইছে। গল্পটিৰ ভাষা আৰু প্ৰকাশ ভংগীয়ে প্ৰতিগৰাকী পাঠকৰ অন্তৰ সহজে স্পৰ্শ কৰিছে। এয়া মহান সাহিত্যিক গৰাকীৰ চমৎকাৰী সাফল্য।

০৫ উপসংহাৰ

আমাৰ পৰিচিত সহজ সৰল ভাৰতীয় গ্ৰামীণ জীৱনৰ নিভাঁজ প্ৰতিবিম্ব কফন গল্পটিত স্পষ্ট ৰূপত উদ্‌ভাষিত হৈ উঠিছে। প্ৰচলিত ঘুনে ধৰা সমাজব্যৱস্থাই শ্ৰমজীৱী মানুহক কিদৰে জীৱনৰ প্ৰতি ভয়ংকৰভাবে নিৰ্লিপ্ত, উদাস আৰু নিৰাশাবাদী কৰি তুলিব পাৰে, তাৰ সুন্দৰ চিত্ৰণ 'কফন'ত পৰিলক্ষিত হৈছে। প্ৰকৃততে কফন হ'ল ভাৰতীয় গ্ৰাম্য জীৱনৰ জীৱন্ত দলিল। সেই সমাজব্যৱস্থাত নাৰীৰ বাবে সমঅধিকাৰ আৰু অনুকম্পা নাই। দুবেলা দুমুঠি অন্ন যোগাৰ কৰা এখন ঘৰৰ একমাত্ৰ মহিলা গৰাকী প্ৰসৱ বেদনাত ছটফটাই থাকোতেও শহুৰেক আৰু গিৰিয়েকৰ জুহালত পোৰা আলু খোৱা আৰু কথাৰ মহলা মৰাৰ প্ৰতিযোগিতা চলি আছে। কেনে এক নিষ্ঠুৰ আৰু অমানৱীয় আচৰণ, আনহাতে কফনৰ বাবে গোট খোৱা ধন মদিৰালয়ত খৰচ কৰা পৰিঘটনাই এই সত্যৰ পিনে ইংগিত দিয়ে যে ক্ষুধাতুৰৰ বাবে ক্ষুধানিৰাৰণতকৈ ডাঙৰ কথা একো নাই। লক্ষ্য কৰিবলগীয়া দিশটো হ'ল প্ৰেমচন্দই গল্পটিত স্পষ্টভাবে কাৰো দোষাৰোপ কৰা নাই। আনকি জমিদাৰ চাহাবৰ দয়ালু স্বভাৱৰ কথাও উল্লেখ কৰিছে। গল্পকাৰে নিজে কোনো অন্তিম ৰায়দান নকৰি সমস্ত ঘটনাৰাজিৰ অধ্যয়ন আৰু বিচাৰৰ ভাৰ পাঠকৰ ওপৰত ন্যস্ত কৰিছে। সকলো দিশ চালি জাৰি চাই এই সত্যত উপনীত হ'ব পাৰি যে কফন গল্প আজিও ভাৰতীয় সমাজজীৱনৰ বাবে তেনেই চিনাকি আৰু প্ৰাসংগিক।

বিষয়বস্তু আৰু অভিব্যক্তি শৈলীৰ দৃষ্টিৰেও কফন ভাৰতীয় কথা সাহিত্যৰ মহৎ, উজ্জ্বল আৰু অমৰ সৃষ্টি। নিশ্চিতভাবে কফন ভাৰতীয় গল্প সাহিত্যৰ মাইলৰ খুটি যি যুগাতীত আৰু দেশাতীত হৈ মানুহৰ মানসপটত উজ্বলি আছে। কফন ভাৰতীয় কথা সাহিত্যৰ চিৰজ্যোতিস্মান ৰত্ন। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১। প্ৰেমচন্দ ঃ কর্মভূমি, সঞ্জয় বুক চেণ্টাৰ, বাৰাণসী-২২১০০১
২। যাদব, ৰাজেন্দ্ৰ (সম্পা) ঃ কথা যাত্ৰা, ৰাধাকৃষ্ণ প্ৰকাশন, নতুন দিল্লী
৩। সিনহা, সুৰেশ ঃ প্ৰেমচন্দ ঃ এক বিবেচন, ৰীগল বুক ডিপো, নতুন দিল্লী
৪। মিশ্ৰ, পাণ্ডে ঃ হিন্দী সাহিত্য কা ইতিহাস, ভাৰতী ভৱন, পাটনা
৫। শম্ভুনাথ (সম্পা) ঃ গৱেষণা সঞ্চয়ন, কেন্দ্ৰীয় হিন্দী সংস্থান,আগ্ৰা
৬। নগেন্দ্ৰ ঃ হিন্দী সাহিত্য কা ইতিহাস, ময়ুৰ পেপাৰবেক্‌চ, নয়দা
৭। প্ৰেমচন্দ্ৰ ঃ গোদান, হৰিশ প্ৰকাশন মন্দিৰ, আগ্ৰা

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

প্রেমচন্দৰ ‘নির্মলা’ উপন্যাসখনৰ মাজেৰে ফুটি উঠা পুৰুষতান্ত্রিক সমাজখনৰ মানসিকতা

অর্ণৱ শর্মা

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
এছ, বি, দেওৰা মহাবিদ্যালয়,
গুৱাহাটী (অসম)
ম'বাইল ঃ ৮০১১৪৮০৭০৪
ই-মেইল ঃ arnabsarmah13@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

সাহিত্যক সমাজৰ দাপোণ আখ্যা দিয়া হয়। কিয়নো সাহিত্যৰাজিৰ মাজেৰেই একোখন সমাজৰ সমসাময়িক সময়ৰ ৰূপটো ফুটি উঠে। আন কথাত আমি সাহিত্যসমূহক একোটা সময়ৰ একোখন জীৱন্ত দলিল আখ্যা দিব পাৰো। প্রাক্-স্বাধীনতা কালৰ ভাৰতীয় সমাজখনৰ ৰূপ বৈচিত্র্যৰ কথা জানিবলৈ আমি প্রথমেই যিসকল সাহিত্যিকৰ সাহিত্য হাতত তুলি লোৱা উচিত, তাৰ ভিতৰত অন্যতম হ'ল মুন্সী প্রেমচন্দ। হিন্দী আৰু উর্দু ভাষাত সাহিত্য চর্চা কৰি খ্যাতি অর্জন কৰা এইগৰাকী কথা সাহিত্যিকে তেওঁৰ উপন্যাস আৰু গল্পৰাজিৰ মাজেৰে সমাজ ব্যৱস্থাটোৰ একোখন নির্মোহ চিত্র অংকন কৰিছে। তেখেতৰ দ্বাৰা ৰচিত ‘নির্মলা’ উপন্যাসখন এই প্রসংগত উল্লেখযোগ্য। মূলতঃ যৌতুক ব্যৱস্থাৰ এগৰাকী নাৰীৰ জীৱনলৈ কঞ্জিয়াই অনা অমানিশাৰ পটভূমিত উপন্যাসখন ৰচিত হৈছে যদিও তাৰ মাজেৰেই ফুটি উঠিছে প্রাক-স্বাধীনতা কালৰ পুৰুষতান্ত্রিক সামাজখনৰ চিন্তাধাৰা আৰু মানসিকতা। প্রস্তাৱিত এই প্রৱন্ধটোৰ মাজেৰে ফুটি উঠা এই চিত্রৰেই আলোকপাত কৰিবলৈ প্রয়াস কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ :

নাৰী, পুৰুষতন্ত্র, যৌতুক, অর্থলিপ্সা ইত্যাদি।

আৰম্ভণি ঃ

প্রাক্-স্বাধীনতা কালত সমসাময়িক সমাজখনৰ জ্বলন্ত সমস্যাৰাজিৰ ওপৰত সহিত্যচর্চা কৰি বিশেষ জনপ্রিয়তা অর্জন কৰা মুন্সী প্রেমচন্দে ৰচনা কৰা এখন মননশীল উপন্যাস হ'ল ‘নির্মলা’। উপন্যাসখনৰ জৰিয়তে সেই সময়ৰ সমাজখনত কালৰূপ ধৰা যৌতুক ব্যৱস্থাটোৰ এটি নির্মোহ উপস্থাপন কৰা হৈছে যদিও তাৰ মাজেৰে প্রাক-স্বাধীনতা কালৰ পুৰুষতান্ত্রিক সমাজখনৰ মানসিকতা আৰু নাৰীৰ প্রতি তেওঁলোকৰ দৃষ্টিভংগীকো তুলি ধৰিছে। সমাজৰ একোটা সমস্যাক আৰু সমাজখনৰ সদস্যসকলৰ মানসিকতাক ইমান জ্বলন্ত আৰু জীৱনত ৰূপত তুলি ধৰা ঔপন্যাসিক ভাৰতীয় কথা সাহিত্যত খুব

কমেইহে আছে। তেনে এজন ঔপন্যাসিক প্রেমচন্দৰ 'নির্মলা' উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্রকাশ পোৱা পুৰুষতান্ত্রিক সমাজখনৰ চিত্র এই প্রৱন্ধটোত আলোকপাত কৰাৰ প্রয়াস কৰা হৈছে।

তথ্যৰ উৎস ঃ

প্রস্তাৱিত এই প্রৱন্ধটো প্রস্তুত কৰাৰ ক্ষেত্রত মূলতঃ গৌণ তথ্য ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। গৌণ তথ্যৰ ভিতৰত নির্মলা উপন্যাসখনৰ অসমীয়া অনুবাদ তথা এই উপন্যাসৰ ওপৰত লিখিত বিভিন্ন কিতাপ আৰু প্রৱন্ধৰ সহায় লোৱা হৈছে।

ঔপন্যাসিকৰ পৰিচয় ঃ

হিন্দী সাহিত্যৰ প্রখ্যাত ঔপন্যাসিক মুন্সী প্রেমচন্দে ৰচনা 'নির্মলা', কেৱল হিন্দী সাহিত্যৰে নহয়, ভাৰতীয় সাহিত্যৰো অন্যতম শ্রেষ্ঠ উপন্যাস। মন কৰিবলগীয়া প্রেমচন্দ দৰাচলতে এটি ছদ্মনামহে। উক্ত ছদ্মনামৰ জৰিয়তে সাহিত্য চর্চা কৰি তেওঁ সাহিত্যিক জীৱনত খ্যাতি অর্জন কৰিছে। হিন্দী সাহিত্যৰ প্রখ্যাত সাহিত্যিক প্রেমচন্দৰ প্রকৃত নাম আছিল ধনপত ৰায় শ্রীবাস্তৱ। ১৮৮০ চনত বাৰাণসীত জন্ম গ্রহণ কৰা এইগৰাকী জনপ্রিয় কথাসাহিত্যিকে হিন্দী ভাষাৰ লগতে উর্দু ভাষাতো সাহিত্য চর্চা কৰি বিশেষ জনপ্রিয়তা অর্জন কৰিছিল। হিন্দী সাহিত্যত উপন্যাস সম্রাট হিচাপে স্বীকৃত এইগৰাকী মহান কথাসাহিত্যিকে নিজৰ প্রায় বছৰীয়া জীৱন কালত কেইবাখনো আগশাৰীৰ উপন্যাস ৰচনা কৰি হিন্দীৰ লগতে ভাৰতীয় সাহিত্য ভঁৰালো সমৃদ্ধ কৰি থৈ গৈছে। তেখেতৰ দ্বাৰা ৰচিত উল্লেখযোগ্য উপন্যাসসমূহ হ'ল — 'দেৱস্থান ৰহস্য' ((১৯০৫), 'প্রেমা; ((১৯০৭), 'কৃষ্ণ' (১৯০৭), 'ৰুথি ৰাণী' (১৯০৭), 'ৱর্দান' (১৯১২), 'সেৱা সদন' (১৯১৯), 'প্রেমাশ্রম' (১৯২২), 'নির্মলা' (১৯২৪), 'কায়কল্প' (১৯২৫), 'প্রতিজ্ঞা' (১৯২৭), 'গবন' (১৯৩১), 'কর্মভূমি' (১৯৩২), 'গোদান' (১৯৩৬) আৰু মংগলসূত্র (অসম্পূর্ণ) । উপন্যাসৰ উপৰিও তেখেতে চুটিগল্প ৰচনা কৰিও হিন্দী চুটিগল্পৰ ক্ষেত্রখন সমৃদ্ধ কৰি গৈছে। তেখেতৰ দ্বাৰা ৰচিত চুটিগল্পসমূহ 'মানসৰোৱৰ' (১৯০০-১৯৩৬) শীর্ষক আঠটা খণ্ডৰ গ্রন্থত সন্নিৱিষ্ট হৈ আছে।

প্রেমচন্দৰ নির্মলা উপন্যাসখনত প্রতিফলিত সমসাময়িক পুৰুষতান্ত্রিক সমাজ ঃ

ঊনৱিংশ শতিকাৰ ভাৰতীয় সমাজ ব্যৱস্থাটোত পৰিলক্ষিত হোৱা যৌতুক ব্যৱস্থা, ক্ষতিকাৰক ৰীতি-নীতি, নাৰীৰ প্রতি দমনৰ মনোভাৱ, নাৰীক পন্য সামগ্রীৰ দৰে গ্রহণ কৰাৰ মনোভাৱ, দৰিদ্রতা, তাৰেই সুযোগ গ্রহণ কৰি এচাম তথাকথিত ভদ্র মানুহে কৰা কু-কর্ম আদিৰ ওপৰত ভিত্তি কৰিয়ে প্রেমচন্দে 'নির্মলা' উপন্যাসখন ৰচনা কৰি উলিয়াইছে। শিৰোনামৰপৰাই এই কথা অনুধাৱন কৰিব পাৰি যে ঔপন্যাসিকে নাৰী জীৱনৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি এই উপন্যাসখন ৰচনা কৰিছে। বিশেষকৈ জাতিভেদ প্রথা আৰু এচাম শিক্ষিত মানুহৰ ঠেক মনোবৃত্তিৰ বাবে কিদৰে এগৰাকী নাৰীৰ জীৱন ধ্বংস হয়, সেই চিত্র অতি সহাপঁভূতিশীল ৰূপত এই উপন্যাসখনৰ জৰিয়তে প্রেমচন্দ ডাঙৰীয়াই অংকন কৰিছে।

বিংশ শতিকাৰ তৃতীয়টো দশকত প্রকাশ পোৱা এই উন্যাসখনৰ কাহিনী মধ্যবিত্ত সমাজৰ নাৰীয়ে জীৱনত সন্মুখীন হোৱা বিভিন্ন সমস্যাবাজিৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি নির্মিত হৈছে। যদিও এগৰাকী নাৰীৰ জীৱনৰ কৰুণ অৱস্থাক এই উপন্যাসখনত মূলতঃ প্রতিফলিত কৰা হৈছে, তথাপিও উ পন্যাসখনখনৰ জৰিয়তে সমসাময়িক সমাজখনৰ পুৰুষতান্ত্রিক মানসিকতাক নির্মোহ ভাৱে পাঠকৰ আগত ঔপন্যাসিকে দাঙি ধৰিছে। 'নির্মলা' উপন্যাসখন চাৰিহাল দম্পত্তিৰ ঘটনা প্রৱাহক কেন্দ্র কৰি ৰচনা কৰা হৈছে। সেয়া হ'লেও উপন্যাসখন তোতাৰাম আৰু নির্মলাৰ জীৱনৰ ঘটনাপ্রৱাহেই দৰাচলতে উপন্যাসখনৰ কাহিনীৰ বিকাশত মুখ্য ভূমিকা পালন কৰিছে। নির্মলাৰ পিতৃ-মাতৃৰ নাম উদয়ভানু আৰু কল্যাণী। পেচাত উদয়ভানু উকীল। তেওঁলোকৰ সন্তান চাৰিটা — নির্মলা, কৃষ্ণা, চন্দ্রভানু আৰু সূর্যভানু। ঘৰখনৰ জ্যেষ্ঠ সন্তান হিচাপে, বিশেষকৈ কন্যা সন্তান হিচাপে নির্মলাৰ বিবাহৰ বিষয়টো ঘৰখনক উত্থাপন হোৱাটো অতি স্বাভাৱিক কথা। কিন্তু পৰিতাপৰ বিসয় এই যে বিৱাহৰ আয়োজন চলা সময়ত নির্মলাৰ বয়স আছিল মাত্র ৰপ্ত বছৰ। ই সেই সময়ৰ সমাজখনত প্রচলিত বাল্য বিবাহৰ কৰুণ চিত্রখন আমাৰ আগত তুলি ধৰিছে। পিতৃ উদয়ভানুৱে নির্মলাৰ অনিচ্ছা স্বত্ত্বেও তাইৰ বিয়া ভালচন্দ্র সিন্হাৰ জ্যেষ্ঠ পুত্র ভূৱনমোহন সিন্হাৰ

লগত ঠিক কৰিছে। সি যি কি নহওক, কন্যা সন্তানৰ বিয়াত যাতে একো ত্রুটি নৰয় আৰু বিয়াৰ পাছত কন্যাই যাতে স্বামিগৃহত লাঞ্ছনা সহিব নোৱাৰে, তাৰ বাবে নির্মলাৰ লগত বয়-বস্তু সহিতে বিদায় দিবলৈ পিতৃয়ে যো-জা কৰিলে। তাৰ বাবে উদয়ভানুৱে মহাজনৰপৰা আনকি অধিক সুদত ধনো ধাৰে আনিলে। স্বামীৰ এই আয়োজন দেখি ভৱিষ্যতে হ'ব পৰা বিপদৰ কথা অনুধাৱন কৰি পত্নী কল্যাণীয়ে আর্থিক ভাৱে স্বচ্ছল নোহোৱা স্বত্ত্বেও এনেদৰে ধন খৰচ কৰা বাবে প্রতিবাদ কৰিছে। পত্নীৰপৰা পোৱা এনে বাধা উদয়ভানুৱে সহ্য কৰিব নোৱাৰি খণ্ডত একো নাই কাজিয়া কৰি ঘৰৰপৰা ওলাই গৈছে আৰু দুর্ভাগ্যৱশতঃ আততায়ীৰ হাতত তেওঁৰ মৃত্যু হয়। দৰাচলতে নির্মলাৰ পিতৃ উদয়ভানুৰ আকস্মিক মৃত্যু আছিল তাইৰ জীৱনৰ 'টার্নিং পইণ্ট'; যিয়ে নির্মলাৰ জীৱনলৈ কেৱল দুখ আৰু সংগ্রাম কঢ়িয়াই আনিছে। স্বামীৰ আকস্মিক মৃত্যুত কাতৰ হৈ পৰিলেও কল্যাণীয়ে নির্মলাৰ ঠিক হৈ থকা বিয়াখন যাতে কুশলে হৈ যায় তাৰ বাবে পুৰোহিতৰ হতুৱাই নির্মলাৰৰ স্বামীগৃহলৈ বার্তা পঠিয়াইছে। কিন্তু পৰিতাপৰ বিষয় এই যে এই ঘটনাৰ কথা জানি ভালচন্দ্রই নির্মলাক ঘৰৰ বোৱাৰী কৰি আনিবলৈ অপাৰগ হৈছে। আনকি শিক্ষিত ডেকা ভূৱনমোহনেও ভৱিষ্যত জীৱনৰ অমংগলৰ দোহাই দি পিতৃৰ কথাতে হয়ভৰ দিছে। মাতৃ ৰংগোলীয়ে বিয়াখন সম্পন্ন হোৱাটো বিচাৰিছিল যদিও পুত্র আৰু স্বামীৰ অনিচ্ছাৰ বাবে তেওঁৰ কথা নৰজিল।

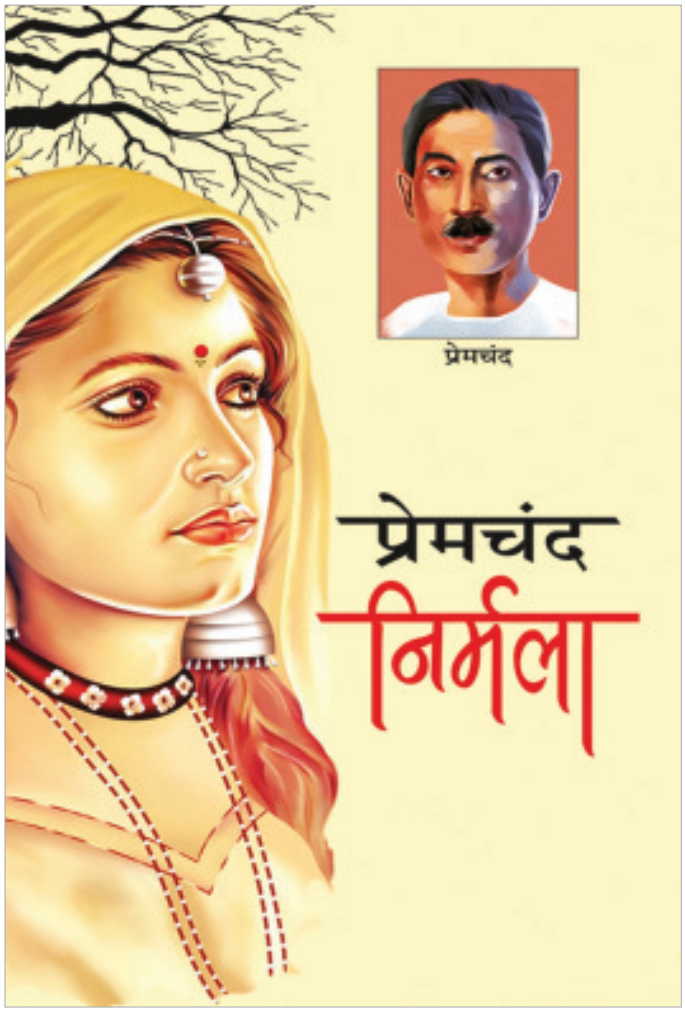

উক্ত ঘটনাই প্রকৃততে সেই সময়ৰ সমাজখনৰ পুৰুষতান্ত্রিক মানসিকতাক পাঠক সমাজৰ আগত উদঙাই দেখুৱাইছে। প্রথমেই আঙুলিয়াব পাৰি নির্মলাৰ বিবাহক কেন্দ্র কৰি পিতৃ উদয়ভানুৱে ঋণ লৈ হ'লেও বিয়াৰ আয়োজন কৰা কথালৈ। মাতৃ কল্যাণীয়ে বাৰে-বাৰে তেওঁলোকৰ আর্থিক অৱস্থাৰ কথা কৈ এই কার্যত বাধা দিলেও উদয়ভানুৱে শুনা নাছিল। ই এটা কথাই প্রতীয়মান কৰে যে সেই সময়ৰ সমাজখন নাৰীৰ মন্তব্য আৰু নাৰীৰ ইচ্ছাক পুৰুষসকলে কাহানিও গুৰুত্বপূর্ণ বুলি বিবেচনা কৰা নাছিল বা বিবেচনাৰ বিষয় বুলিও ভবা নাছিল। উদয়ভাউ আৰু পত্নী কল্যাণীৰ মাজত হোৱা বিবাদে ইয়াৰেই ইংগিত বহন কৰে —

"উদয়ভানু : মই তোমাৰ গোলাম নেকি?

কল্যাণী : মই তোমাৰ ছোৱালী নেকি?

উদয়ভানু : এনেকুৱা পুৰুষ আৰু আছে যি নেকি নাৰীৰ আঙুলিৰ আগত নাছে?

কল্যাণী : তেনেহ'লে এনেকুৱা নাৰীও আছে, যি নেকি পুৰুষৰ ভৰিত পৰি থাকে ?

উদয়ভানু : মই উপার্জন কৰিছোঁ। মোৰ ইচ্ছা মতে মই খৰচ কৰিব পাৰোঁ। মোৰ ওপৰত কাৰো কথা কোৱাৰ অধিকাৰ নাই।

কল্যাণী : তেনেহ'লে আপুনি আপোনাৰ ঘৰ চম্ভালক। এইখন ঘৰক মোৰ দূৰৰপৰাই নমস্কাৰ। ইয়াত আপোনাৰ যিমান অধিকাৰ আছে, সমানে মোৰো অধিকাৰ আছে নে নাই কোনোবাই সুধিছেনে ?

কিন্তু এটা কথা ঠিক, এইখন ঘৰত আপোনাৰ যিমান অধিকাৰ আছে, তাৰ সমানে মোৰো এইখন ঘৰত সমান অধিকাৰ আছে। যদি আপুনি নিজৰ মনৰ ৰজা, তেনেহ'লে ময়ো মোৰ মনৰ ৰাণী। আপোনাৰ ঘৰত আপুনি সুখী হওক। মোৰ এসাঁজ ভাত মই খাবলৈ পাম। আপোনাৰ সন্তান আছে, আপুনি সিহঁতক মাৰক-কাটক-জ্বলাওক, মই মাথোঁ চকুৰে চাই থাকিম। মোৰ অকণো দুখ নালাগে।

উদয়ভানু : তুমি কি ভাবিছা, তুমি নহ'লে মোৰ ঘৰ নচলিব ? অকলেই এনেকুৱা দহখন ঘৰ চম্ভালি ল'ব পৰাৰ মোৰ ক্ষমতা আছে।" (শর্মা, পৰিণীতা; পৃষ্ঠা ১৫)

নাৰীৰ উচিত মন্তব্যক ভৰিৰে মোহাৰি কেৱল নিজৰ সিদ্ধান্তত অটল হৈ থকাৰ যি তুচ্চ মানসিকতা সেই সময়ৰ পুৰুষতান্ত্রিক সমাজত আছিল, তাৰেই প্রতিফলন হ'ল উক্ত কথোপকথন। নাৰীয়ে নিজৰ মন্তব্যৰ অনুৰূপে কার্য নকৰিলে ঘৰ ত্যাগ কৰিবলৈও পুৰুষে যে কুণ্ঠাবোধ নকৰে, তাৰেই প্রমাণ উক্ত কাজিয়াৰ পিছত উদয়ভানুৱে ঘৰ ত্যাগ কৰা ঘটনাটো। কাজিয়াৰ প্রসংগত উদয়ভানুৱে 'এনেকুৱা পুৰুষ আৰু আছে যি নেকি নাৰীৰ আঙুলিৰ আগত নাচে ?' বুলি কৰা মন্তব্যই দৰাচলতে সেই সময়ৰ সমাজখনৰ পুৰুষসকলৰ মানসিকতাক উদঙাই দেখুৱাইছে। প্রাক-স্বাধীনতা যুগৰ পুৰুষতান্ত্রিক সমাজখনে নাৰীসকলক সদায় দমন কৰি ৰাখিব বিচাৰিছিল। তেওঁলোকৰ কথাত উঠা-বহা কৰা, তেওঁলোকৰ অত্যাচাৰকো বিনা প্রতিবাদে সহ্য কৰি থকা নাৰীকহে পুৰুষতান্ত্রিক সমাজখনে ভাল বুলি গণ্য কৰিছিল।

আকৌ পিতৃৰ মৃত্যুৰ পিছত নির্মলাক বোৱাৰী হিচাপে গ্রহণ নকৰাৰ সিদ্ধান্তটোৱে সেই সময়ৰ সমাজৰ পুৰুষসকলৰ লালসা আৰু অর্থলিপসাৰ মনোভাৱক সূচাইছে। বিৱাহক এটি পবিত্র বন্ধন হিচাপে গ্রহণ কৰাৰ সলনি সমসাময়িক সমাজত ইয়াক ধন বা সম্পত্তি আহৰণৰ উপায় হিচাপে গ্রহণ কৰাৰ উপায় হিচাপে বিচাৰ কৰা বুলিলেও ভুল নহ'ব। কিয়নো পিতৃৰ মৃত্যুৰ লগে-লগে ধনহীন হৈ পৰা পৰিয়ালটোৰ লগত বিৱহৰ সম্পর্ক গঞ্জি তুলিবলৈ ভালচন্দ্র অপাৰগ হৈছে। আনকি তেওঁৰ এই সিদ্ধান্তৰ প্রতি নির্লজ্জ ভাৱে সমর্থন আগবঢ়াইছে শিক্ষিত পুত্র ভূৱনমোহনে। তেওঁলোকে বাহিৰত যৌতুকৰ বিৰোধিতা কৰি দেখুৱালেও আৰু ঘঞ্জিয়ালৰ চকুপানী টুকি ভৱিষ্যত জীৱনত অমংগল হোৱাৰ অজুহাত দেখুৱাই বিয়াত বহিবলৈ অমান্তি হ'লেও প্রকৃততে যৌতুক নোপোৱা ঠাইত কোনোপধ্যে বিয়া নকৰোৱাৰ ভূৱনমোহনৰ যি মনোভাৱ, সেয়া পাঠক সমাজৰ আগত অতি স্পষ্ট ৰূপত ফুটাই তোলাত ঔপন্যাসিক সফল হৈছে। ভূৱনমোহন এজন শিক্ষিত ডেকা; দেখনিয়াৰ যদিও তাৰ লালসা পিতৃতকৈ বেছি। যৌতুকৰ ধনেৰে প্রতিপত্তিশালী হোৱাৰ মানসিকতা গ্রহণ কৰি বিয়া নকৰোৱাৰ সিদ্ধান্ত লোৱাৰ পূর্বে ভূৱনমোহনে এই সিদ্ধান্তই নির্মলাৰ জীৱনলৈ কঢ়িয়াই আনিব পৰা অমানিশাৰ কথা এবাৰলৈও ভবা নাছিল। আনকি, প্রথমাৱস্থাত যৌতুকৰ কথা ভাৰি নির্মলাক নিজৰ ঘৰৰ বোৱাৰী কৰি আনিবলৈ অপাৰগ হ'লেও চিঠিখন পঢ়াৰ পিছত নির্মলাৰ জীৱনত হ'ব পৰা সংগ্রামৰ কথা অনুধাৱন কৰিব পাৰিয়েই ভূৱনমোহনৰ মাতৃয়ে নির্মলাক ঘৰৰ বোৱাৰী কৰি আনিব বিচাৰিলেও তেওঁ মন্তব্য পুৰুষতান্ত্রিক সমাজৰ আগত স্থিৰ হৈ থকা নাছিল। এই ঘটনাৰাজিয়ে সেই সময়ৰ সমাজৰ পুৰুষে নাৰীক যে পণ্য সামগ্রীতকৈ অধিক বুলি ভৱা নাছিল তাৰেই ইংগিত বহন কৰে।

উপন্যাসখনৰ কাহিনীৰ গতি ইয়াতেই শেষ নহয়। নির্মলাৰ বিয়া ভঙাৰ পিছত গোটেই পৰিয়ালটোৰ অৱস্থা পানীত হাঁহ নচৰা যেন হ'ল। এফালে নির্মলাৰ বিয়াৰ চিন্তা আৰু আনফালে দুই পুত্রৰ পঢ়া-শুনাৰ চিন্তাই কল্যাণীক ব্যথিত কৰি তুলিছিল। তথাপিও কল্যাণীয়ে নির্মলাক বিয়া দি মুক্ত হ'ব বিচাৰিছিল। পৰৱর্তী সময়ত মাতৃ কল্যাণীয়ে কেইবাঠাইতো নির্মলাৰ বিয়াৰ বাবে যোগাযোগ কৰে যদিও সকলোতে যৌতুকে নির্ণায়ক ভূমিকা গ্রহণ কৰাৰ বাবে বাস্তৱত সেয়া সম্ভৱ হৈ উঠা নাছিল। শেষত উপায়ন্তৰ হৈ নির্মলাক মাতৃ কল্যাণীয়ে যৌতুক নিবিচৰা, পঁয়ত্রিশ বছৰীয়া,

বিপত্নীক তথা তিনিটা সন্তানৰ পিতৃ তোতাৰাম নামৰ এজন আদহীয়া উকীললৈ বিয়া দিছিল। ইও সেই সমাজৰ পুৰুষ সমাজে নাৰীক ভোগৰ বস্তু বুলি গণ্য কৰাৰ এক উদাহৰণ। পুৰুষতান্ত্রিক সমাজৰ নিকৃষ্ট চিন্তাধাৰা আৰু মনোভাৰৰ ফলতহে নির্মলাৰ দৰে বহু নাৰী সেই সময়ৰ সমাজখনত এনে অনামিল বিৱাহৰ সন্মুখীন হ'বলগীয়াত পৰিছিল। ফলত এই নাৰীসকল সাংসাৰিক সন্তুষ্টিৰপৰা প্রায়ে বঞ্চিত হোৱা পৰিলক্ষিত হৈছিল। তোতাৰামে অৱশ্যে নির্মলাৰ মন জয় কৰিবলৈ পার্যমানে চেষ্টা কৰিছিল। পেচাত তেওঁ উকীল আছিল আৰু প্রতি মাহৰ উপার্জন পোনে-পোনে আনি নির্মলাৰ হাতত অর্পণ কৰি নির্মলাৰ মন ভাল লগাবলৈ বিচাৰিছিল। কিন্তু এগৰাকী বিপত্নীক আদহীয়া ব্যক্তিয়ে নির্মলাৰ দৰে ফুলকুমলীয়া ছোৱালীৰ মন জয় কৰাটো সহজ নহয়। নির্মলাই তোতাৰামৰ ওচৰত একোৱে বিচাৰি নাপালে। তোতাৰামে নির্মলাৰ মন জয় কৰিবলৈ যিমানে চেষ্টা কৰিলে, সিমানেই নির্মলা তোতাৰামৰপৰা আঁতৰি গৈ থাকিল। বিশেষকৈ নির্মলাৰ যি জৈৱিক কামনা-বাসনা সেয়া পূৰণ কৰাটো তোতাৰামৰ বাবে সম্ভৱ নাছিল। এই সকলো জানি বুজিও নির্মলাই সকলো বিধিৰ বিধান মানি তোতাৰামৰ সংসাৰখন ভালদৰে চলাই নিবলৈ চেষ্টা অব্যাহত ৰাখিলে।

এইখিনিতে ঔপন্যাসিকে সমাজত নাৰী আৰু পুৰুষৰ মনোভাৱৰ স্পষ্ট পার্থক্য আৰু পুৰুষৰ হাতত নাৰীৰ অৱদমনৰ চিত্র অংকন কৰিছে। প্রাক-স্বাধীনতা যুগৰ ভাৰতীয় সমাজখনত নাৰীয়ে নিজৰ পচন্দ-অপচন্দ অথবা ভাল লগা-বেয়া লগাৰ দিশবোৰ স্পষ্টকৈ ব্যক্ত কৰিব পৰা নাছিল। আকৌ কোনোৱে সেয়া ব্যক্ত কৰিলেও তাৰ প্রতি গুৰুত্ব দিয়া নাছিল। একেই ঘটনা নির্মলাৰ লগতো হৈছিল। নির্মলাৰ বিয়া হোৱাৰ ইচ্ছা নোহোৱা স্বত্ত্বেও তাইৰ বিয়াৰ কথা ঘৰত উলিয়াইছিল। কেৱল এয়াই নহয়, তাইৰ ইচ্ছাৰ বিৰুদ্ধে তোতাৰামৰ দৰে আদহীয়া পুৰুষ এজনলৈ তাইক বিয়া দিছিল। ইয়াৰ মাজেৰে আমাৰ আগত এনে এখন সমাজৰ চিত্র ঔপন্যাসিকে দাঙি ধৰিছে, য'ত সকলো সময়ত পুৰুষসকলৰ ইচ্ছাৰ অধীন হৈ নাৰীসকলৰ জীৱন বিপর্যস্ত হৈ পৰিছিল।

'নির্মলা' উপন্যাসখনৰ পৰৱর্তী ঘটনাপ্রৱাহলৈ দৃষ্টি নিক্ষেপ কৰিলে দেখা যায় যে, নাৰীক পুৰুষে পণ্য আৰু উপভোগৰ সামগ্রী হিচাপে গ্রহণ কৰাৰ যি মানসিকতা, সেয়া প্রতিটো ক্ষেত্রতে ঔপন্যাসিকে উপন্যাসখনৰ মাজেৰে চিত্রায়ণ কৰিছে। এইখিনিতে এটা কথা উল্লেখ কৰা উচিত হ'ব যে, প্রেমচন্দে উপন্যাসৰাজিৰ মাজেৰে যি ঘটনা উপস্থাপন কৰিছে, সেয়া কাল্পনিক নহয়। সমসাময়িক সমাজখনত দেখি থকা ঘটনাপ্রৱাহক কথা সাহিত্যৰ ৰূপ দি তেওঁ আকর্ষণীয় ৰূপত উপন্যাসসমূহৰ মাজত উপস্থাপন কৰিছে। তোতাৰামৰ আদহীয়া বয়স আৰু জৈৱিক অক্ষমতা যিদৰে নির্মলাৰ বাবে এক অতৃপ্তি আৰু সাংসাৰিক অশান্তিৰ কাৰণ আছিল, সেইদৰে ভৰ যৌৱনা নির্মলাৰ ৰূপ-গুণো তোতাৰামৰ বাবে সন্দেহৰ বিষয় হৈ পৰিল। তোতাৰামৰ ডাঙৰ ল'ৰা মন্নাৰাম বয়সত নির্মলাতকৈ অলপহে সৰু আছিল। নির্মলাই সাংসাৰিক সুখৰপৰা বঞ্চিত হ'লেও তোতাৰামৰ সন্তানকেইটাক মাকৰ মৰম দিবলৈ পার্যমানে চেষ্টা কৰিছিল। কিন্তু পৰিতাপৰ বিষয় যে এই মৰমে এটা সময়ত তোতাৰামৰ বাবে সন্দেহৰ কাৰণ হৈ পৰিল। 'নির্মলাৰ মন্নাৰামৰ প্রতি থকা স্নেহ কোনো চেকা নোহোৱাকৈ মাতৃত্বৰ মমতাৰে সিক্ত হোৱা স্বত্ত্বেও তোতাৰামে এই সম্পর্কক সন্দেহৰ চকুৰে চাবলৈ লৈছিল।' (বৰা, দিলীপ, পৃষ্ঠা — ১৮১)। এনে সন্দেহৰ বাবেই আৰু নির্মলাৰপৰা তাক আঁতৰাই ৰাখিবলৈ তোতাৰামে পুত্র মন্নাৰমক বর্ডিং স্কুললৈ পঠিয়াই দিছিল। কিন্তু তাত মন্নাৰাম বেমাৰত পৰে আৰু তোতাৰামে তাক ঘৰলৈ অনাৰ পৰিৱর্তে তাৰেই হস্পিতালত ভর্তি কৰালে। তোতাৰামে আনকি মাক নির্মলাক তাৰ ওচৰলৈ যাবলৈও মানা কৰিলে। তোতাৰামৰ এনে মানসিকতাই সেই সময়ৰ সমাজৰ পুৰুষসকলে নিজৰ মাজত পুহি ৰখা সন্দেহবাদী মনটোলৈ ইংগিত প্রদান কৰে। নির্মলাই সকলো অশান্তি আৰু সাংসাৰিক যন্ত্রনাক একাষৰীয়াকৈ ৰাখি ঘৰখনৰ বাবে পার্যমানে সকলো কৰিলেও, তাৰ স্বীকৃতি কোনোদিনে নিজৰ স্বামীৰপৰা পোৱা নাছিল। তাৰ সলনি পাইছিল নিজৰ পুত্রৰ লগত অবৈধ সম্পর্ক ৰখাৰ দৰে নিকৃষ্ট অভিযোগ। এনে অভিযোগ অনাৰ পূর্বে তোতাৰামে এবাৰ হ'লেও তাত যুক্তিযুক্ততাৰ কথা বা নির্মলাৰ ত্যাগৰ কথা ভাৰি চোৱা নাছিল। পুৰুষসকলৰ

সন্দেহবাদী মনে কিদৰে এগৰাকী নাৰীৰ জীৱনলৈ অমানিশা কঢ়িয়াই আনিব পাৰে, তাৰেই প্ৰতিফলন হ'ল উপন্যাসখনৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ নিৰ্মলা।

সি যি কি নহওক, সমাজৰ চকুত যিয়েই নহওক, মাতৃ হিচাপে নিজৰ দায়িত্ব সৎ ভাৱে পালন কৰাৰ হেতু নিৰ্মলাই স্বামী তোতাৰামৰ বাধা আৰু সমাজৰ দৃষ্টিক অৱহেলা কৰি পুত্ৰৰ শুশ্ৰূষাৰ অৰ্থে মন্নাৰামৰ ওচৰলৈ গ'ল আৰু নিজৰ তেজ দি হ'লেও তাক বচাবলৈ সাজু হ'ল। কিন্তু দুভাগ্যবশতঃ নিৰ্মলাই কিবা কৰিবলৈ পোৱাৰ পূৰ্বেই মন্নাৰমৰ মৃত্যু হয়। 'সৰুতে মাক হেৰুওৱা এই দুৰ্ভগীয়া সৰু ল'ৰাটোৱে নিৰ্মলাৰ মাজত পোৱা মাতৃত্বৰ মমতাৰ কথা কৈ তেওঁৰ গৰ্ভতে পুনৰ জন্ম লোৱাৰ আশা প্ৰকাশ কৰি কৰুণ মৃত্যুক সাৱটি ল'লে।' (বৰা, দিলীপ; পৃষ্ঠা ১৮১)। আনফালে, তোতাৰামৰ আৰ্থিক অৱস্থা দূৰ্বল হৈ অহা বাবে পুত্ৰ জিয়াৰামে নিৰ্মলাৰ ৰূপৰ আ-অলংকাৰ বাকচটোকে চুৰ কৰি নিছিল। এফালে পুত্ৰ হেৰুৱাৰ দুখ আৰু আনফালে আন এজন পুত্ৰৰ হাতত নিজৰ সম্বল বুলিবলৈ থকা অলংকাৰখিনি হেৰুৱাৰ দুখে নিৰ্মলাক জৰ্জৰিত কৰিছিল। এই ঘটনাইও সমসাময়িক সমাজৰ এচাম পুৰুষৰ লুভীয়া আৰু স্বাৰ্থপৰ মনোভাৱক উদঙাই দেখুৱাইছে, যিয়ে নিজৰ ইচ্ছা চৰিতাৰ্থ কৰিবলৈ আনকি নিজৰ ঘৰৰ সম্পত্তি ধ্বংস কৰিবলৈ কুণ্ঠাবোধ নকৰে। মন্নাৰামৰ চিকিৎসাৰ প্ৰসংগতে ডাঃ ভালচন্দ্ৰ সিন্হা আৰু তেওঁৰ পত্নী সুধাৰ অৱতাৰণা হয় উপন্যাসখনত। ভালচন্দ্ৰ সিন্হা আছিল সেইজন ব্যক্তি যিয়ে যৌতুকৰ লোভত নিৰ্মলাক বিয়া নকৰাই নিৰ্মলাৰ জীৱনলৈ অমানিশা কঢ়িয়াই আনিছিল। কালক্ৰমত নিৰ্মলা ডাক্তৰ পত্নী সুধাৰ সৈতে ঘনিষ্ঠ হৈ পৰিল। এদিন জীৱনত সন্মুখীন হোৱা ঘটনাপ্ৰৱাহত বিষণ্ণ হৈ নিৰ্মলাই সুধাৰ সংগ বিচাৰি ডাক্তৰৰ ঘৰলৈ গ'ল। কিন্তু সুধা ঘৰত নথকাৰ সুযোগ লৈ ডাক্তৰে নিৰ্মলাৰ মাজেৰে নিজৰ কামনা চৰিতাৰ্থ কৰিবলৈ বিচাৰিলে। পৰৱৰ্তী সময়ত সুধাই এই কথা গম পোৱাত লাজে-অপমানে জৰ্জৰিত হৈ ডাক্তৰে আত্মহত্যা কৰিলে যদিও এই ঘটনাৰ মাজেৰে পুনৰ নাৰী যে পুৰুষসকলৰ দৃষ্টিত সেই সময়ৰ সমাজত পণ্য দ্ৰব্য আৰু ভোগৰ সামগ্ৰীৰ লেখীয়া আছিল, সেয়া প্ৰমাণিত কৰিলে। যি ভূৱনমোহনে এটা সময়ত যৌতুকৰ লোভত পৰি নিৰ্মলাক প্ৰত্যাখ্যান কৰি নিৰ্মলাৰ জীৱনলৈ দুৰ্দিন কঢ়িয়াই অনাত অৰিহণা যোগাইছিল, সেই একেজন বিবাহিত ব্যক্তিয়ে পাছত নিৰ্মলাৰ মাজেৰেই নিজৰ জৈৱিক কামনা পূৰণ কৰিবলৈ বিচৰাটোৱে এচাম মানুহৰ নিকৃষ্ট মানসিকতাকে সূচায়।

সামৰণি ঃ

মুন্সী প্ৰেমচন্দে সমসাময়িক সমাজখনৰ একোটা জ্বলন্ত সমস্যা লৈ উপন্যাস তথা গল্পসমূহ ৰচনা কৰিছিল। আন কথাত ক'বলৈ গ'লে, তেওঁৰ উপন্যাস বা গল্পবোৰ সেই সময়ৰ সমাজখনৰ একোখন জীৱন্ত দলিল। সাহিত্য যে প্ৰকৃতাৰ্থত সমাজৰ দাপোণ সেয়া প্ৰেমচন্দৰ উপন্যাস অধ্যয়ন কৰিলেই বুজা যায়। 'নিৰ্মলা' উপন্যাসখনৰ জৰিয়ে প্ৰেমচন্দে যদিও যৌতুক ব্যৱস্থাৰ দৰে এটা জ্বলন্ত সমস্যাক কথা সাহিত্যৰ মাজেৰে তুলি ধৰিছে, তথাপিও তাৰ মাজেৰে সেই সময়ৰ সমাজখনৰ পুৰুষতন্ত্ৰৰ মানসিকতাৰ এটি জীৱন্ত চিত্ৰ পোৱা যায়। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

দাস, দুলাল চন্দ্ৰ : তুলনামূলক সাহিত্য আৰু ভাৰতীয় প্ৰেক্ষাপট, প্ৰথম প্ৰকাশ, এপ্ৰিল, ২০২২, অশোক বুক ষ্টল

বৰা, দিলীপ : তুলনাত্মক সাহিত্য, তৃতীয় প্ৰকাশ, ২০১৬, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ

ভট্টাচাৰ্য, পৰাগ কুমাৰ আৰু ৰাজবংশী, পৰমানন্দ (সম্পা): ভাৰতীয় সাহিত্য সংকলন, প্ৰথম প্ৰকাশ, জুন, ২০০৫, বনলতা

শৰ্মা, পৰিণীতা (অনু.) : নিৰ্মলা, প্ৰথম প্ৰকাশ, ডিচেম্বৰ, ২০১৪, বীণা লাইব্ৰেৰী

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

কাৰবি ভাষা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ণ

বনজিৎ শর্মা

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
বি. এইচ্. কলেজ, হাউলী
ম'বাইল ঃ ৮৮৭৬০৪৬৯৪৭
ই-মেইল ঃ banjitnishasarma@gmail.com

পৰিচয় ঃ

ভাৰতৰ উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলত প্ৰচলিত তিব্বত-বৰ্মীয় ভাষাগোষ্ঠীৰ এটা উল্লেখযোগ্য ভাষা হৈছে কাৰবি ভাষা। গ্ৰীয়াৰ্চন, সুনীতি কুমাৰ চেটাৰ্জী আদি পণ্ডিতসকলে কাৰবি ভাষাৰ অসম-বৰ্গীয় নগা-কুকিচীন শাখাৰ সৈতে সম্পৰ্ক দেখুৱাইছে। কাৰবি ভাষা বৰো শাখাৰ অন্তৰ্গত বুলি উপেন্দ্ৰ নাথ গোস্বামী আদি কৰি আন এছাম পণ্ডিতে মত পোষণ কৰে। পূৰ্বতে কাৰবিসকলক মিকিৰ বুলিহে জনা গৈছিল। কিন্তু তেওঁলোকে নিজক মিকিৰ বুলি পৰিচয় দি ভাল নাপায়। তেওঁলোকে নিজকে কাৰবি বুলি পৰিচয় দি ভাল পায়। মিকিৰ শব্দটো প্ৰকৃততে কাৰবিসকলে কেনেকৈ আৰু কেতিয়াৰ পৰা বুজাবলৈ ল'লে সেই সম্পৰ্কে বিশেষ জনা নাযায়। কিছুমানৰ মতে কাৰবিসকলে পোহনীয়া মেকুৰী এটা হেৰুৱাত তাক বিচাৰি ফুৰোঁতে অনাকাৰবি কেইজনমানক লগ পায়। ভাব-বিনিময়ত অসুবিধা হোৱা বাবে কেৱল মে'ং কিৰি অংশহে অনাকাৰবিসকলে মনত ৰাখিবলৈ সক্ষম হয় আৰু তেওঁলোকৰ মাজৰ কথোপকথনৰ ফলত পৰৱৰ্তী সময়ত জাতিটোৰ নাম হয় মিকিৰ। আন কিছুমানৰমতে, থিৰে'ং ৰাৰে'ং নামৰ এজন ৰজাৰ মেক্ৰি নামৰ এগৰাকী কন্যাক নগা কোঁৱৰলৈ বিয়া দিছিল। নগাসকলে মেক্ৰি নামটোৰ উচ্চাৰণ বিভ্ৰাট ঘটাই মিকিৰ কৰাৰ ফলত সেই নামেৰে জাতিটোক বুজাবলৈ আৰম্ভ কৰিলে।

কাৰবিসকল প্ৰধানকৈ অসমৰ কাৰ্বিআংলং পাহাৰত বসবাস কৰে। অৱশ্যে অসমৰ বিভিন্ন ঠাই যেনে- নগাঁও, মৰিগাঁও, কামৰূপ, গোলাঘাট, শোণিতপুৰ আদিতো কাৰবিসকলৰ বসতি আছে। আনহাতে অসমৰ ওচৰ চুবুৰীয়া ৰাজ্য মেঘালয়, নাগালেণ্ড, অৰুণাচল প্ৰদেশ আদিতো কাৰবিসকলৰ বসতি আছে। কাৰ্বিআংলং জিলাখন অসমৰ মধ্য অঞ্চলৰ এখন ডাঙৰ জিলা। জিলাখনৰ পূবে নাগালেণ্ড আৰু গোলাঘাট জিলা, পশ্চিমে কামৰূপ জিলা আৰু মেঘালয় ৰাজ্য, উত্তৰে নগাঁও আৰু দক্ষিণে উত্তৰ কাছাৰ জিলা, মেঘালয় আৰু নাগালেণ্ড ৰাজ্য।

কাৰবি ভাষাৰ লিখিত ইতিহাস পোৱা নাযায়। কাৰবিসকলৰ মাজত

মৌখিক ৰূপত প্ৰচলিত মুছেৰা কে'হিৰ গীতত পোৱা বৰ্ণনা মতে কাৰবিসকল তিব্বতৰ পৰা প্ৰব্ৰজন কৰি অসমত প্ৰবেশ কৰে আৰু স্থায়ীভাবে বসবাস কৰিবলৈ লয়। কাৰবি ভাষা চৰ্চাৰ ক্ষেত্ৰত আমেৰিকান বেপ্তিষ্ট মিছনেৰীসকলৰ অৱদান উল্লেখনীয়। ১৮৫৯ চনতে কাৰবিসকলে মিছনেৰী আৰু খ্ৰীষ্ট ধৰ্মৰ সংস্পৰ্শ লাভ কৰিছিল। মিছনেৰীসকলৰ ভিতৰত পোন প্ৰথমে ৰেভাৰেণ্ড পি ই মূৰ আৰু জে এম কাৰৰেলে কাৰবি ভাষা চৰ্চাৰ ক্ষেত্ৰত আগভাগ লৈছিল। তেখেতসকলে ভাষাটো শিকাৰ উপৰিও সেই ভাষাত পুথিও প্ৰকাশ কৰিছিল। ১৮৭৫ চনত প্ৰকাশ কৰা অসমীয়া লিপিত মুদ্ৰিত কাৰবি ভাষাৰ প্ৰথম পুথি 'ধৰম্ আৰ্নাম্ আফ্ৰাং ইকিথিন্' নামৰ পুথিখনৰ পিছত কাৰবি ভাষাত কিতাপ লিখা আৰু প্ৰকাশ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত ৰেভাৰেণ্ড পি ই মূৰ আৰু জে এম কাৰৰেলে গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছিল। আনহাতে, মিছনেৰীসকলে 'বিৰতা' (বাতৰি), আৰু 'থেংতম' (বন্তি) নামৰ দুখন আলোচনীও প্ৰকাশ কৰি উলিয়াইছিল।

কাৰবি ভাষাৰ বিকাশৰ ক্ষেত্ৰত ব্ৰিটিছ চৰকাৰী বিষয়াসকলৰো ভূমিকা অতুলনীয়। প্ৰথমতে ৰেভাৰেণ্ড আৰ্ ই নেবৰে 'A Vocabulary in !ßnglish and Mikirs' নামৰ ইংৰাজী-কাৰবি দ্বিভাষিক গ্ৰন্থএখন ৰচনা কৰে। এই পুথিখনকে পিছত ১৯৪০ চনত এ'ড্ৰাৰ্ড ষ্টেক্ আৰু ছাৰ্ডকা পেৰ্কিকেই বৰ্ধিত ৰূপত An English Mikir Vocabulary অভিধান হিচাপে প্ৰকাশ কৰি উলিয়াই। ড° গ্ৰীয়াৰ্চন চাহাবে Linguistic Survey of India, Vol.- III Part II গ্ৰন্থত কাৰবি ভাষাৰ পৰিচয়মূলক আলোচনা আগবঢ়ায়। ১৯০৮ চনত প্ৰকাশিত চাৰ্লছ্ লায়েলৰ The Mikirs নাম গ্ৰন্থখন কাৰবি ভাষা সম্পৰ্কে আলোচনা দাঙি ধৰা প্ৰথম মৌলিক গ্ৰন্থ।

আনহাতে, চল্লিছৰ দশকতে কাৰবিসকলৰ মাজৰ এচাম লোকে ভাষা-সাহিত্যৰ বিকাশ সাধনৰ অৰ্থে দুৰ্গম পাহাৰীয়া গাঁও আৰু ভিতৰুৱা গাঁওবিলাকলৈ গৈ পৰম্পৰাগতভাৱে চলি অহা মৌখিক লোকসাহিত্যৰ সমল গোটাই সেইবোৰ প্ৰকাশৰ ব্যৱস্থা কৰিছিল। তেখেতসকলৰ একান্ত প্ৰচেষ্টাত হা-ঈ-আলুন (১৯২৬), ৰুকাছেন্ আলুন (১৯৩৭), আদাম্-আছাৰ (১৯৩৭) আদি কাৰবি লোকসাহিত্যই প্ৰকাশৰ বাট দেখিবলৈ পাইছিল। লগতে এচাম শিক্ষিক ডেকাই ১৯৬৬ চনত 'কাৰবি সাহিত্য সভা' (কাৰবি লাম্মেত্ আমেই)ৰ জন্ম দিয়ে। এই সাহিত্য সভাই জন্মলগ্নৰ পৰা বৰ্তমানলৈকে কাৰবি ভাষা সাহিত্যৰ বিকাশৰ বাবে অহৰহ কাম কৰি আছে। অসম সাহিত্য সভাইও বিভিন্ন গীত-পদ, সাধুকথা প্ৰকাশ কৰি কাৰবি ভাষাক উন্নতিৰ পথলৈ যোৱাত সহায় কৰি আহিছে।

কাৰবি ভাষাৰ ভাষাতাত্ত্বিক বৈশিষ্ট্য ঃ

স্বৰধ্বনি আৰু ব্যঞ্জনধ্বনি ঃ

কাৰবি ভাষাত সাতোটা স্বৰধ্বনি আৰু ওঠৰটা বিশিষ্ট ব্যঞ্জন ধ্বনিৰ ব্যৱহাৰ দেখিবলৈ পোৱা যায়। স্বৰধ্বনিবোৰৰ হ্ৰস্বদীৰ্ঘৰ পাৰ্থক্য নাই। স্বৰধ্বনি কেইটা হৈছে ঃ /অ/, /অ'/, /আ/, /ই/, /উ/, /এ/, আৰু /এ'/। উদাহৰণ হিচাপে অ-অং (মোমাই); অ'-অ'ছা (জোঁৱাই); এ- এৰ্ (ৰঙা); এ'- এ'জন (এটা) ইত্যাদি।

কাৰবি ভাষাৰ ব্যঞ্জনধ্বনি কেইটা হ'ল ঃ ক, /খ/, /চ/, /ছ/, /জ/, /ত/, /থ/, /দ/, /ন/, /প/, /ফ/, /ব/, /ম/, /ৰ/, /ল/, /ৱ/, /য়/ আৰু /হ/। উদাহৰণস্বৰূপে ঃ প-প' (দেউতা); ফ-ফু (ককা); চ- চু (চুলি); ছ- ছাং (চাউল); দ- আদাপ্ (ৰাতিপুৱা); ন- পিনি (আজি) ইত্যাদি।

কাৰবি ভাষাত ভালেমান অসমীয়া মূলৰ শব্দ পোৱা যায় যিবোৰ শব্দ থলুৱা কাৰবি উচ্চাৰণ পদ্ধতিৰে গৰকি নতুন ৰূপ লোৱাত শব্দবোৰ আচহুৱা যেন লাগে। উদাহৰণস্বৰূপে —

কাৰবি শব্দ		অসমীয়া শব্দ
মাদুৱাম	<	মধুৰিআম
কিতাপ	<	কিতাপ
দহন	<	ধন
কাদ	<	গাধ
নাৰিকই	<	নাৰিকল
ফলং	<	ফৰিং
খন্তা	<	ঘণ্টা
আলহী	<	আলহী
খৰি	<	ঘড়ী
কপাই	<	কপাল
আদিন	<	দিন। ইত্যাদি

কাৰবি ভাষাৰ প্ৰচলন কাৰবিসকলৰ মাজতহে দেখিবলৈ পোৱা যায়। কাৰবিসকলে ঘৰ বা গাঁৱৰ বাহিৰত অথবা অন্যভাষী মানুহৰ সৈতে নিজৰ ভাষাত ভাব বিনিময় কৰিব নোৱাৰে। আনহাতে, উৎসৱ অনুষ্ঠান, বজাৰ, মেলা আদিত কাৰবি ভাষাটোৰ প্ৰয়োগ তেখেতসকলৰ মাজতেই সীমাবদ্ধ হৈ থকা দেখা যায়। অফিছ-কাছাৰী, কাৰ্যালয়, আদালত আদিত এই ভাষাৰ মাধ্যমত আনুষ্ঠানিক ভাব-বিনিময় নহয়। অৱশ্যে বৰ্তমান প্ৰাথমিক পৰ্যায়ত অঞ্চল বিশেষত কাৰবি ভাষাৰ যোগেদি শিক্ষা প্ৰদান কৰা দেখা যায়।

কাৰবি ভাষাৰ শব্দ গঠন ঃ

সকলো ভাষাৰে শব্দ গঠন প্ৰণালী দুই ধৰণে পোৱা যায়। এটা হৈছে- মৌলিক শব্দ আৰু আনটো হৈছে- যৌগিক শব্দ। মৌলিক ৰূপবিলাক স্পষ্ট ৰূপত স্বতন্ত্ৰভাৱে প্ৰয়োগ হয়। কিছুমান মৌলিক শব্দ এনেধৰণৰ— মনিত্ (মানুহ), ইংলং (পাহাৰ), চে'লং (ম'হ), চাইনং (গৰু) ইত্যাদি। আনহাতে, মূল ৰূপৰ লগত বিভিন্ন প্ৰত্যয় সংযোগ কৰি নতুবা একাধিক প্ৰকৃতি লগ-লাগি যৌগিক শব্দৰ সৃষ্টি হয়। প্ৰত্যয়যুক্ত যৌগিক শব্দ কিছুমান হ'ল এনেধৰণৰ—

কা - কা + আৱ্দম্ = কাৱ্দম্ (নমস্কাৰ)

কে' - কে + চান্ = কে'চান্ (বৃদ্ধি পোৱা)

পা - পা + কান্ = পাকান্। ইত্যাদি।

ভিন ভিন শব্দ লগ লাগি যৌগিক শব্দৰ সৃষ্টি হয়। যেনে ঃ আৱ্নি + ইছি = আৱ্নিছি, আৰলং + কেচৰ = লংচৰ, তমন + কেদেং = মনদেং। ইত্যাদি।

বিশেষ্য পদ ঃ

বিশেষ্য পদবোৰক কাৰবি ভাষাত মৌলিক আৰু সাধিত- এই দুই ধৰণে ভাগ কৰা হৈছে। মৌলিক বিশেষ্য পদবোৰ স্বতন্ত্ৰ ৰূপত ব্যৱহৃত হয়। আনহাতে, একাধিক শব্দৰে আৰু প্ৰত্যয়ৰ দ্বাৰা সাধিত বিশেষ্য পদ গঠন হয়।

(ক) মৌলিক বিশেষ্য পদৰ উদাহৰণ ঃ

আৱ্নি (বেলি), মে'ং (মেকুৰী), ফাক্ (গাহৰি), লাং (পানী), লংলে' (মাটি) ইত্যাদি।

(খ) সাধিত বিশেষ্য পদ ঃ

(একাধিক শব্দৰে সাধিত) ঃ লাংপি < লাং + আপি (নদী), ৱ'আক্ < ৱ + আক্ (কাউৰী), হে'ম্ফু < হেম্ + ফু (গৃহদেৱতা) ইত্যাদি।

(প্ৰত্যয়ৰদ্বাৰা সাধিত) ঃ কেকান্ < কে + কান্ (নৃত্য কৰা), কেলুন্ < কে + লুন্ (গোৱা), কিৱাং < কে + ৱাং (অহা) ইত্যাদি।

সৰ্বনাম পদ ঃ

কাৰবি ভাষাত ব্যক্তিবোধক সৰ্বনামৰ ৰূপ কৰোঁতে পদৰ শেষত '-তুম' ব্যৱহাৰ কৰিলে বহুবচন বুজায়, সন্মানাৰ্থ বুজাবলৈ একবচন আৰু বহুবচনৰ মূল পদৰ পাছত '-লি' বিভক্তি যোগ কৰা হয়। যেনে —

	একবচন	বহুবচন
প্ৰথম	নে (মই)	নেতুম্ (আমি)
পুৰুষ	নেলি	নেলিতুম্
	(মই-সন্মানাৰ্থত)	(সন্মানসূচক আমি)
দ্বিতীয়	নাং (তুমি, তই)	নাংতুম্ (তোমালোক, তহঁত)
পুৰুষ		নালিংতুম্ (সন্মানসূচক, আপোনালোক)
তৃতীয়	আলাং	আলাংতুম্ (তেওঁলোক,
পুৰুষ	(তেওঁ, সি, তাই)	সিহঁত, তাইহঁত)
	আলাংলি	আলাংলিতুম্ (তেওঁলোক,
	(তেওঁ, তেখেত)	তেখেতসকল)
		(সন্মানসূচক)

ঠিক তেনেদৰে, কাৰবি ভাষাৰ কালবাচক সৰ্বনাম শব্দ কেইটামান তলত দাঙি ধৰা হ'ল ঃ

নন্ (এতিয়া), পিনি (আজি), আনকে (তেতিয়া), পিনাপ্দিক (পৰহি) আদি।

অব্যয় পদ ঃ

কাৰবি ভাষাত অব্যয় পদৰ প্রয়োগ দেখিবলৈ পোৱা যায়। অব্যয় পদবোৰ এনেধৰণৰ ঃ লাপে্ন (আৰু, সৈতে, লগত), পেন্ (সৈতে), বন্তা (কিন্তু, হ'লেও, তথাপি), ত (বাৰু) ইত্যাদি। তলত এশাৰী বাক্যৰ যোগেদি অব্যয় পদৰ প্রয়োগ দেখুৱাবলৈ চেষ্টা কৰা হ'ল।

যেনে ঃ আতুমি নাংফান্ নে' নাংচ'ংহংল' বন্তা নাংচক' ৱাৱে'দেত্ল' (কালি তোমাৰ বাবে অপেক্ষা কৰি আছিলোঁ, কিন্তু তুমি নাহিলা।)

প্রত্যয় ঃ

- কাৰবি ভাষাত পূর্ব প্রত্যয় আৰু পৰপ্রত্যয় এই দুই ধৰণৰ প্রত্যয়ৰ ব্যৱহাৰ দেখা যায়। কা-, কি-, কে'-, চা-, চি-, চে'-, পা-, পি-, পে'-, এই কেইটা কৃৎ প্রত্যয়ৰ ব্যৱহাৰ কাৰবি ভাষাত হয়। যেনে — বিশেষ্য পদ গঠন কৰিবলৈ 'কা'-, 'কি'-, 'কে'- প্রত্যয় ব্যৱহাৰ হয় ঃ

কা + আৰ্জাপ্ = কাৰ্জাপ্ (থিয় হ)
কা + আৰ্জু = কাৰ্জু (সোধা)
কি + লুন্ = কিলুন্ (গীত গোৱা)
কি + হাং = কিহাং (চিঞৰা)

পাঁচনি অর্থত 'পা-', 'পে-' প্রত্যয়ৰ ব্যৱহাৰ হয়। যেনে ঃ

পা + লাং = পালাং (চাবলৈ দিয়া)
পা + দাম্ = পাদাম্ (যাবলৈ দিয়া)

তদ্ধিত প্রত্যয়ৰ ক্ষেত্রত চা-, কা-, কি-, কে'- আদি পূর্বপ্রত্যয়েৰে বিশেষ্য পদৰ পৰা বিশেষণ পদলৈ ৰূপান্তৰিত হয়। যেনে ঃ

চা + আৰ্নাম্ = চাৰ্নাম্ (কথা, বচন)
কা + ইংহন্ = কাংহন (ভাল পোৱা)
কি + লু = কিলু (হোজা)
কে' + ৰে = কে'ৰে (চোকা) ইত্যাদি।

আনহাতে, নিশ্চয়তা বুজাবলৈ '-থা' প্রত্যয়ৰ ব্যৱহাৰ হয়। যেনে ঃ ৱাংথা (আহিবাচোন), দুন্থা (লগত যোৱাচোন) ইত্যাদি।

বচন ঃ

কাৰবি ভাষাত বচন দুই প্রকাৰৰ- একবচন আৰু বহুবচন। কাৰবি ভাষাত একবচন আৰু বহুবচন বুজাবৰ বাবে শব্দৰ পাছত -তুম, -আতুম, -মাৰ, -হুৰ, -মখা, -পেনাং আৰু -ফাই যোগ কৰা হয়। কাৰবি ভাষাত দ্বিবচন নাই। মানুহৰ অর্থ বুজাবলৈ হ'লে শব্দৰ শেষত '-তুম' যোগ কৰা হয়। যেনে ঃ বীৰেন আতুম্ (বীৰেনহঁত), মনিত আতুম্ (মানুহবোৰ), ছপী আতুম্ (জীয়েকবিলাক), আৰলেং আতুম্ (কাৰবিসকল) ইত্যাদি। কাৰবি ভাষাত -তুম, -হুৰ আৰু -মখা বহুবচনৰ প্রত্যয় হিচাপে যোগ দিবৰ সময়ত তিনিওটাৰে আগত '-আ'ৰ আগম হয়। যেনে ঃ কিপি আহুৰ (বান্দৰবোৰ), মনিত আমখা (মানুহবোৰ) ইত্যাদি। উল্লেখযোগ্য যে, 'কিপি' শব্দ প্রাচীন অসমীয়াৰ 'কপি' (বান্দৰ), যেনে ঃ অনন্তৰে কপিগণে মাথা তুলি চাইলা বিস্তৰ গম্ভীৰ সাগৰক ভেট পাইল- (ৰঘুনাথ মহন্তৰ 'শত্রুঞ্জয়') শব্দ আৰু 'মখা' শব্দ অসমীয়া ভাষাৰ 'মখা' (যেনে ঃ গৰুমখা, মানুহমখা) আদিৰ লগত তুলনা কৰিব পাৰি।

লিংগ ঃ

পৰম্পৰাগত নিয়ম অনুসৰি অসমীয়া ভাষাৰ দৰে কাৰবি ভাষাতো দুই প্রকাৰৰ লিংগৰ ব্যৱহাৰ দেখিবলৈ পোৱা যায়। পুংলিংগ আৰু স্ত্রীলিংগ।

কাৰবি ভাষাত সুকীয়া সুকীয়া শব্দৰ প্রয়োগৰ যোগেদি লিংগ নির্ণয় কৰাৰ নিয়ম আছে।

যেনে ঃ পুংলিংগত প' (দেউতা), পুনু (খুৰা); স্ত্রীলিংগত পাই (মা), পীনু (খুৰী)।

লিংগ নিৰপেক্ষ ৰূপবিলাকত '-আল' আৰু '-আপী' প্রত্যয় যোগ দি পুংলিংগ আৰু স্ত্রীলিংগ শব্দ গঠন কৰিব পাৰি। যেনে ঃ

	পুংলিংগ	স্ত্রীলিংগ
বি (ছাগলী)	বি আল' (মতা ছাগলী)	বি আপী (মাইকী ছাগলী)

ৰ' (চৰাই)	ৰ' আল' (মতা চৰাই)	ৰ' আপী (মাইকী চৰাই)
ইংনাৰ্ (হাতী)	ইংনাৰ্ আল' (মতা হাতী)	ইংনাৰ্ আপী (মাইকী হাতী) ইত্যাদি।

কাৰক আৰু শব্দ বিভাক্তি ঃ

কাৰবি ভাষাত সাতটা কাৰকৰ প্রয়োগ আছে। যেনে ঃ

কর্তা কাৰক ঃ ১। মই ভাত খাওঁ (অসমীয়াত)
নে' আন্ চ' (কাৰবিত)
২। কাদমে গীত গাইছে (অসমীয়াত)
কাদম্ লুন্ লুন্ (কাৰবিত)

কর্ম কাৰক ঃ ১। মোক যাবলৈ দিয়ক (অসমীয়াত)
নে'লিফান্ নে' লিপাদাম্ ইক্নন (কাৰবিত)

কৰণ কাৰক ঃ ১। দাৰে বাঁহ কাটিছে (অসমীয়াত)
নক্পাক্ পেন্ চেক্ কে'থু। (কাৰবিত)

নিমিত্ত কাৰক ঃ ১। মই ডিফুলৈ যাম (অসমীয়াত)
নে'লি দিফু দাম্জি (কাৰবিত)

অপাদান কাৰক ঃ ১। তিলৰ পৰা তেল পোৱা যায় (অসমীয়াত)
নে'ম্প' পেন্ জাংথু লং। (কাৰবিত)

সম্বন্ধ পদ ঃ ১। ৰংপি মানুহজন ঘৰত নাই (অসমীয়াত)
ৰংপি আবাং হেম্ আৰে' (কাৰবিত)

অধিকৰণ কাৰক ঃ ১। মোৰ লগত ভাল ভাল কিতাপ আছে (অসমীয়াত)
নে'লং মে'পিক্পিক্ আল' দ'। (কাৰবিত)

শব্দ বিভক্তি ঃ

প্রথমা	০, -ছি
দ্বিতীয়া	-ফান্, -আফান্
তৃতীয়া	-পেন্, -লাপেন্
চতুর্থী	-ফান, -আফান
পঞ্চমী	-পেন
ষষ্ঠী	-আ
সপ্তমী	- লং, -আলং

সম্বন্ধবাচক শব্দ ঃ

কাৰবি ভাষাৰ সম্বন্ধবাচক শব্দ কেইটামান অসমীয়া সমার্থক সম্বন্ধ শব্দেৰে সৈতে তলত দাঙি ধৰা হ'ল।

কাৰবি	অসমীয়া
প'	দেউতা
অং	মোমাই
ইক্	ককাই
ছ'পী	জী
নি	পেহী
নেং	নবৌ
ফু	ককাদেউতা
লক্	পেহা। ইত্যাদি।

সংখ্যাবাচক শব্দ ঃ

কাৰবি ভাষাৰ সংখ্যাবাচক শব্দ কিছুমানৰ উল্লেখ তলত দাঙি ধৰা হ'ল।

কাৰবি	অসমীয়া
ইছি	এক
হিনি	দুই
কেথম্	তিনি
থ্রক্	ছয়
কেপ্	দহ
ক্রে-থম্	তেৰ
ইংকই	ঊনৈছ
ফ-কেপ্	বিছ ইত্যাদি।

বছৰ আৰু মাহ বুজোৱা শব্দ ঃ

কাৰবি ভাষাত মাহবিলাকৰ নাম তলত দাঙি ধৰা হ'ল।

কাৰবি	অসমীয়া
থাংথাং	ফেব্রুৱাৰী
থে'ৰে'প'	মার্চ
আৰু	মে'
চিতি	ছেপ্তেম্বৰ

ফ্রে’	অক্টোবৰ	
নিফাই	বাৰ, তাৰিখ	ইত্যাদি।

কাৰবি ভাষাৰ পানী সম্বন্ধীয় আৰু স্থল সম্বন্ধীয় শব্দ ঃ

কাৰবি	অসমীয়া
লাংপী	নদী
লাংছ’	জুৰি
ইংলং	পাহাৰ
মিন্‌দাৰ	মাটি, পৃথিৱী
ইংনাম্‌	হাবি ইত্যাদি।

কাৰবি ভাষাত দিশৰ নাম ঃ

কাৰবি ভাষাত দিশৰ ধাৰণা দিন অর্থাৎ সূর্যৰ অৱস্থানক কেন্দ্র কৰি গঢ় লৈ উঠিছে। সেইবাবে প্রতিটো দিশ বুজাবলৈ ‘নি’ (দিন) শব্দাংশ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। তলত কাৰবি ভাষাত দিশৰ নাম উল্লেখ কৰা হ’ল।

কাৰবি	অসমীয়া
নিহাং	পূব
নিৱাং	পূব দিশ
নিশি	পশ্চিম দিশ
নিজাং	পশ্চিম
নিতুৰ	দক্ষিণ ইত্যাদি।

সামৰণি ঃ

কাৰবি ভাষাৰ প্রচলন কাৰবিসকলৰ মাজতহে দেখিবলৈ পোৱা যায়। কাৰবিসকলে ঘৰ বা গাঁওৰ বাহিৰত অথবা অন্যভাষী মানুহৰ সৈতে নিজৰ ভাষাত ভাব বিনিময় কৰিব নোৱাৰে।

আনহাতে, উৎসৱ অনুষ্ঠান, বজাৰ, মেলা আদিত কাৰবি ভাষাটোৰ প্রয়োগ তেখেতসকলৰ মাজতেই সীমাবদ্ধ হৈ থকা দেখা যায়। অফিছ-কাছাৰী, কার্যালয়, আদালত আদিত এই ভাষাৰ মাধ্যমত আনুষ্ঠানিক ভাব-বিনিময় নহয়। অৱশ্যে বর্তমান প্রাথমিক পর্যায়ত অঞ্চল বিশেষত কাৰবি ভাষাৰ যোগেদি শিক্ষা প্রদান কৰা দেখা যায়। ❑

প্রসংগপুথি ঃ

১। ডেভী, গণেশ নাৰায়ণ (মুখ্য সম্পাদক) আৰু ভৰালী, বিভা আৰু চক্রৱর্তী, বনানি (সম্পাদক আৰু অনুবাদ সম্পাদক) ঃ অসমৰ ভাষা (ভাৰতীয় জন ভাষা জৰীপ, খণ্ড-৫)। গুৱাহাটী ঃ বনলতা, পানবজাৰ। প্রথম সংস্কৰণ ঃ ৫ ছেপ্তেম্বৰ, ২০০৩।

২। বৰুৱা, ভীমকান্ত ঃ অসমৰ ভাষা। ডিব্রুগড় ঃ বনলতা (নতুন বজাৰ)। চতুর্থ পৰিবর্ধিত সংস্কৰণ ২০০৩ চন।

৩। টেৰণ, লংকাম ঃ কাৰবি জনগোষ্ঠী। যোৰহাট ঃ অসম সাহিত্য সভা, ১৯৭৪। প্রকাশিত।

৪। দাস, বসন্ত ঃ কাৰবি সংস্কৃতিৰ ইতিহাস। গুৱাহাটী ঃ আঁকবাক, ২০১০। প্রকাশিত।

৫। বৰুৱা, সুৰেন্দ্র নাথ ঃ কাৰবি লোকজীৱনত এভুমুকি। গুৱাহাটী ঃ বহ্নিমান প্রকাশন, ১৯৯৮। প্রকাশিত।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

অসমৰ মহিলা পৰিচালিত নাট্যগোষ্ঠী ঃ এটি অধ্যয়ন

বিটুমণি মালীয়া

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
মাৰ্ঘেৰিটা মহাবিদ্যালয়
জিলা ঃ তিনচুকিয়া, অসম-৭৮৬১৮১
ম'বাইল ঃ ৪৩৫৪৭৫৯৪১
ই-মেইল ঃ bitumanimaliadas1980@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

নাটক হৈছে এবিধ দৃশ্য-শ্ৰব্য কলা। প্ৰাচীন কালৰে পৰা ভাৰতত নাট্য-কলাৰ চৰ্চা হৈছিল। অসমতো ষোড়শ শতিকাত মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে নাট্য-সাহিত্যৰ জন্ম দিয়ে। কিন্তু তেতিয়াৰ পৰা ঊনবিংশ শতিকা পৰ্য্যন্ত অসমৰ নাট্য জগতত কোনো মহিলাৰ অংশগ্ৰহণৰ কথা পোৱা নাযায়। কিন্তু ১৯৩৩ চনত অভিনয়ৰ যোগেদি পোন প্ৰথমবাৰৰ বাবে অসমীয়া মহিলাই নাট্য জগতত খোজ দিয়ে। সময়ৰ লগে লগে মহিলাই নাটক-ৰচনা, অভিনয়, নাট-পৰিচালনাকে ধৰি নাটকৰ সৈতে জড়িত সকলোবোৰ দিশলৈকে আগবাঢ়ি আহিল। অসমীয়া মহিলাই সম্প্ৰতি কেইবাটাও নাট্যগোষ্ঠীৰ জন্ম দি নাটক পৰিচালনা কৰি আছে।

বীজ শব্দ ঃ

নাটক, নাট্যগোষ্ঠী, মহিলা, অভিনয়, পৰিচালনা ইত্যাদি।

লোকৰঞ্জন আৰু লোকশিক্ষাৰ উদ্দেশ্যে ভাৰতবৰ্ষত প্ৰাচীনকালৰ পৰাই নাট্যচৰ্চা হৈছিল। অসমত পঞ্চদশ শতিকাত শংকৰদেৱে প্ৰথম নাট্যসাহিত্য সৃষ্টি কৰে। কিন্তু তেতিয়াৰ পৰা ঊনবিংশ শতিকা পৰ্য্যন্ত অসমৰ নাট্যজগতত কোনো মহিলাৰ নাম পোৱা নাযায়।

অসমৰ নাট্যজগতত মহিলাৰ পদাৰ্পণ কুৰি শতিকাৰ পৰিঘটনা। আনকি মহিলাৰ আগমনৰ পিছতো বহুদিনলৈ মুকলি মনেৰে মহিলাই নাট্যজগতৰ সৈতে জড়িত হ'ব পৰা নাছিল। কাৰণ, সমসাময়িক সমাজখনে অভিনয় জগতত প্ৰৱেশ কৰা মহিলাক ভাল চকুৰে নাচাইছিল। সেয়েহে নাট্যক্ষেত্ৰখনত মহিলাৰ অংশগ্ৰহণৰ জৰিয়তে উদ্ভৱ হোৱা পৰিস্থিতি সহজ আৰু স্বাভাৱিক হ'বলৈ কেইবাটাও দশক লাগি গৈছিল। কিন্তু কালক্ৰমত এনেবোৰ বাধা নিষেধৰ প্ৰাচীৰ আঁতৰি গৈছিল আৰু সম্প্ৰতি কেৱল নাটক বুলিয়েই নহয়, অভিনয়ৰ সকলো মাধ্যমতে মহিলাৰ সক্ৰিয় অংশগ্ৰহণ দেখা যায়। কেৱল সেয়াই নহয়, অভিনয়ৰ সমানে সমানে নাট্যৰচনা, নাট্য পৰিচালনা-প্ৰযোজনাকে ধৰি নাটকৰ আন আন দিশতো মহিলাসকলে নিজৰ প্ৰতিভা আৰু বিচক্ষণতাৰ পৰিচয় দিছে।

অসমৰ নাট্যজগতলৈ অতি কম যদিও কেইগৰাকীমান মহিলা নাট্য-সংগঠক তথা নাট্য-পৰিচালক ওলাই আহিছে। তেওঁলোকে একো একোটা

নাট্যগোষ্ঠী প্ৰতিষ্ঠা কৰি নাট্যজগতলৈ বৰঙণি আগবঢ়াইছে। মহিলাৰ দ্বাৰা পৰিচালিত নাট্যগোষ্ঠীসমূহ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰিবলৈকে আমাৰ কাকতখন প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

০.১ আলোচনাৰ পৰিসৰ ঃ

আমাৰ কাকতখনৰ পৰিসৰে কেৱল অসমৰ মহিলা পৰিচালিত নাট্যগোষ্ঠীৰ পৰিচয় আৰু নাট্যগোষ্ঠীকেইটাই অসমৰ নাট্যজগতলৈ আগবঢ়োৱা অৱদানসমূহকে সামৰি ল'ব।

০.২ আলোচনাৰ লক্ষ্য ঃ

অসমৰ নাট্যজগতলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখিম যে কুৰি শতিকাৰ চতুৰ্থ দশক পৰ্য্যন্ত নাটক ৰচনা আৰু অভিনয় কোনোটো দিশতে মহিলাসকলে অংশগ্ৰহণ কৰা নাছিল। কুৰি শতিকাৰ চতুৰ্থ দশকত মহিলাই অসমৰ নাট্যজগতত পদাৰ্পণ কৰে যদিও স্বাধীনতাৰ আগলৈকে সেয়া সহজ নাছিল। কালক্ৰমত অসমৰ মহিলাসকল সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ সকলো দিশৰ লগতে নাট্যক্ষেত্ৰলৈও আগবাঢ়ি আহে। কুৰি শতিকাৰ শেষ ভাগত অসমৰ মহিলাই নাট্যগোষ্ঠী গঠন কৰি নাটক পৰিচালনা কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰে। এনে মহিলাৰ দ্বাৰা পৰিচালিত নাট্যগোষ্ঠীসমূহৰ ওপৰত কিঞ্চিত পোহৰ পেলোৱাই আমাৰ কাকতখনৰ মূল লক্ষ্য।

০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

কাকতখনত ঘাইকৈ বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হ'ব। অৱশ্যে ঠায়ে ঠায়ে বিশ্লেষণ কৰিবলৈও যত্ন কৰা হ'ব। এই অধ্যয়নত তথ্য সংগ্ৰহৰ বাবে ঘাইকৈ মহিলা পৰিচালকসকলৰ সাক্ষাৎকাৰ গ্ৰহণ কৰা হৈছে। প্ৰয়োজনত কেতবোৰ গৱেষণাত্মক গ্ৰন্থ আৰু আলোচনীৰ সহায় লোৱা হৈছে।

১.০ অসমীয়া নাটকত মহিলাৰ অংশগ্ৰহণ ঃ

অসমীয়া নাট্যসাহিত্যই পঞ্চদশ শতিকাতে জন্ম লাভ কৰে যদিও কুৰি শতিকাৰ চতুৰ্থ দশকৰ পৰাহে আমি অসমৰ নাট্য-ইতিহাসত মহিলাৰ নাম পাওঁ। ১৯৩৩ চনত সৈনিক শিল্পী ব্ৰজনাথ শৰ্মাই পোনপ্ৰথমে *কহিনুৰ থিয়েটাৰ*ৰ জৰিয়তে প্ৰথম মহিলা অভিনেতাক নাট্যমঞ্চত তোলে। ১৯৩৩ চনৰ নৱেম্বৰ মাহত ব্ৰজনাথ শৰ্মাই ডুমডুমা নাট্যমন্দিৰত কমলানন্দ ভট্টাচাৰ্য্যৰ ঐতিহাসিক নাটক *মৰাণ জীয়ৰী* মঞ্চস্থ কৰাইছিল। এইখন নাটকতে প্ৰথমবাৰৰ বাবে অসমৰ নাট্যমঞ্চত মহিলাই অভিনয় কৰে। এই মহিলাসকল আছিল- পুৰণি গুদামৰ গোলাপী দাস আৰু সৰ্বেশ্বৰী দাস, চামগুৰিৰ ফুলেশ্বৰী দাস, যোৰহাটৰ শেলবালা দেৱী, উত্তৰ গুৱাহাটীৰ লাৱণ্য দাস আৰু বিনোদ গগৈ।

আনহাতে ১৯৩৮ চনত অসমৰ মহিলাই পোনপ্ৰথমবাৰৰ বাবে নাটক ৰচনা কৰে। ১৯৩৮ চনত মালৰিকা দেৱীয়ে *আদিকবি* নাটকখন ৰচনা কৰে।[১] তেখেতৰ আনকেইখন নাটক হৈছে- *চম্পাৱতী, শিশুগান্ধী আৰু গাঁৱলৈ*। স্বৰাজোত্তৰ কালৰ পৰা অসমীয়া সাহিত্যত মহিলা নাট্যকাৰৰ অৱদান বিশেষভাৱে লক্ষ্য কৰা যায়। এই সময়ছোৱাত শুচিব্ৰতা ৰায়চৌধুৰী, ৰাজলক্ষ্মী দাস, নলিনীবালা দেৱী, সৌজন্যময়ী ভট্টাচাৰ্য্যকে ধৰি কেইবাগৰাকী নাট্যকাৰে নাটক ৰচনা কৰে। পৰৱৰ্তী সময়তো আমি সুপ্ৰভা দত্ত, অৰ্পণা বণিক্য, বীণাপাণি দাস, আৰতি দাস বৈৰাগী, ইলা বৰগোহাঁই, এলি আহমেদ আদি নাট্যকাৰৰ নাম পাওঁ।

অভিনয়ৰ ক্ষেত্ৰত ডুমডুমা নাট্য মন্দিৰত কহিনুৰ অপেৰাৰ প্ৰথম সহ-অভিনয়ৰ পিছত ডিব্ৰুগড়ৰ আমোলাপট্টিৰ ৰাজহুৱা মঞ্চত ১৯৩৯ চনত মহিলাই প্ৰভাত শৰ্মাৰ *দীপশিখা* নাটকখনত অভিনয় কৰে। এই নাটকখনৰ নাৰীচৰিত্ৰ ৰূপায়িত কৰিছিল লাৱণ্যপ্ৰভা হাজৰিকা আৰু গুণদাবালা গগৈয়ে।[২] ইয়াৰ পাছত ১৯৪৭ চনত নগাঁও নাট্যমন্দিৰত *পিয়লি ফুকন* নাটকত আৰু ১৯৪৮ চনত *কাৰেঙৰ লিগিৰী* নাটকত মহিলাই অভিনয় কৰাৰ কথা জনা যায়।[৩] ১৯৪৮ চনত গুৱাহাটীৰ ভৰলুমুখত আৰু ১৯৪৯ চনত শুক্ৰেশ্বৰ ঘাটৰ আর্য্য নাট্য ৰঙ্গমঞ্চতো মহিলাই অভিনয় কৰিবলৈ আগবাঢ়ি আহে।[৪] পৰৱৰ্তী সময়ত সমাজৰ বাধা নিষেধ ক্ৰমান্বয়ে আঁতৰি যায় আৰু পুৰুষৰ সমানে সমানে মহিলায়ো নাটক ৰচনা আৰু অভিনয় ক্ষেত্ৰত অংশগ্ৰহণ কৰিবলৈ ধৰে।

২.০ অসমৰ মহিলাৰ দ্বাৰা পৰিচালিত নাট্যগোষ্ঠী ঃ

বৰ্তমানলৈকে অসমত সাতটা সম্পূৰ্ণৰূপে মহিলাৰ দ্বাৰা পৰিচালিত নাট্যগোষ্ঠী আছে। সেয়া হৈছে- *জিৰছং থিয়েটাৰ, উৎস হৰাইজন চ'ছিঅ কালচাৰেল অৰগেনাইজেচন, জে.বি. প্ৰডাকচন, মানচালেংকা, চিফুং-দ্য-আটিষ্ট* আৰু *ডেনদুন-দ্য থিয়েটাৰ*। ইয়াৰে ভিতৰত দুই এটা নাট্যগোষ্ঠীৰ সক্ৰিয়তা কিছু কম। তদুপৰি অসমত কেইবাটাও এনে নাট্যগোষ্ঠী আছে, যিসমূহত মহিলাই সক্ৰিয় ভূমিকা গ্ৰহণ কৰি আছে। তলত মহিলাৰ দ্বাৰা পৰিচালিত নাট্যগোষ্ঠী সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ল।

২.১ জিৰছং থিয়েটাৰ ঃ

জিৰছং থিয়েটাৰ মহিলা নাট্যসংগঠকৰ দ্বাৰা প্ৰতিষ্ঠিত প্ৰথম নাট্যগোষ্ঠী। এই নাট্যগোষ্ঠীটো ১৯৯৫ চনত ৰবিজিতা গগৈয়ে ডিফু চহৰৰ কেইগৰাকীমান সংস্কৃতিৱান যুৱক-যুৱতীৰ সহযোগত প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল। ৰাষ্ট্ৰীয় নাট্য বিদ্যালয়ৰ স্নাতক শ্ৰীমতী গগৈয়ে তেওঁৰ নাট্যকৰ্মৰ বাবে ২০০৬ বৰ্ষৰ সংগীত নাটক একাডেমীৰ *বিছমিল্লাহ খান যুৱ বঁটা* লাভ কৰে। জিৰছং থিয়েটাৰে বিভিন্ন ভাষাত (যেনে - অসমীয়া, হিন্দী, নাগামিজ, বড়ো, কাৰ্বি, ইংৰাজী আদি) ২৫ খনতকৈ অধিক নাটক প্ৰযোজনা আৰু পৰিচালনা কৰিছে। এই নাট্যগোষ্ঠীটোৱে সদায় নাটকৰ নতুন শৈলী, নতুন কলা-কৌশল আৰু বহুভাষিক ধাৰণাক সমৰ্থন কৰে। জিৰছং থিয়েটাৰে প্ৰযোজনা কৰা কেইখনমান নাটক হৈছে - *ষ্টেটাছ কমপ্লিকেটেড* (ৰচনা, পৰিচালনা - প্ৰাঞ্জল কে. শইকীয়া), *বাঘ* (নাট্যকাৰ - শিশিৰ কুমাৰ দাস, অসমীয়া ৰূপান্তৰ - ড° মামণি ৰয়চম গোস্বামী, পৰিচালনা - ৰবিজিতা গগৈ), *ইতি মৃণালিনী* (মূল - ৰবীন্দ্ৰ নাথ ঠাকুৰ, অনুঃ /পৰিচালনা - ৰবিজিতা গগৈ), *ফফৌ ফৌ আলুগুটি বেঙেনা* (পৰিচালনা - হিমাংশু গগৈ) *দেৱীপীঠৰ তেজ* (মূল - মামণি ৰয়চম গোস্বামী, নাট্যৰূপ - ৰবিজিতা গগৈ), *গাঁথা - দ্য ফাৰ্ষ্ট টেক্সট্, আনটাইটেল্ড ১, এণ্টিগনি মেনিয়া, যাত্ৰা শুভ হওক* (মঞ্চৰূপ /পৰিচালনা ঃ ৰবিজিতা গগৈ, প্ৰাঞ্জল শৰ্মা বশিষ্ঠ আৰু ফণিশ্বৰ নাথ ৰেণুৰ দুটি কাহিনীৰ আধাৰত ৰচিত নাট), *টেকনিকালাৰ ক্লিষ্মছ* (নাগামিজ ভাষাৰ, পৰিচালনা - ৰবিজিতা গগৈ) ইত্যাদি। এই নাটকসমূহ অসমৰ ৰবীন্দ্ৰ ভৱন, শংকৰদেৱ কলাক্ষেত্ৰ, গুৱাহাটী জিলা পুথিভঁৰালৰ উপৰিও অসমৰ বাহিৰৰো বিভিন্ন মঞ্চ আৰু নাট্য মহোৎসৱত প্ৰদৰ্শিত হৈছে। নাটক পৰিচালনাৰ উপৰি নাট্যগোষ্ঠীটোৱে অসমত এচাম নতুন নাট্যশিল্পী সৃষ্টিৰ বাবে কেইবাখনো নাটকৰ কৰ্মশালা অনুষ্ঠিত কৰি আহিছে। জিৰছং থিয়েটাৰৰ অধীনত বছৰৰ বিভিন্ন সময়ত অভিনয়ৰ প্ৰশিক্ষণ নাট্যগোষ্ঠীটোৱে দি আছে। বিশেষকৈ নাট্যসংগঠক তথা প্ৰশিক্ষক ৰবিজিতা গগৈয়ে নাট্যাভিনয়ৰ *ষ্টেনিস্লাভস্কি কৌশল* সম্পৰ্কে প্ৰশিক্ষাৰ্থীসকলক প্ৰশিক্ষণ দি আহিছে। জিৰছং থিয়েটাৰৰ সৈতে জড়িত হৈ থকা নাট্যশিল্পী কেইগৰাকীমান হৈছে - নীলাক্ষী চেতিয়া, ৰূপলেখা দেৱী, নমিতা চন্দন গোস্বামী, পুণম সিংহ, হিমাক্ষী মজুমদাৰ, কস্তুৰী কাশ্যপ, মমী গগৈ, পাহি বৈশ্য, তৰালী বৰা, ধৰিত্ৰী জুমি কলিতা, জ্বলী ভট্টাচাৰ্য্য, নীলাক্ষী হাজৰিকা, মীনা ইংতি, বাবী বৰুৱা ইত্যাদি।

ৰবিজিতা গগৈয়ে ২০১৩ চনত জিৰছং থিয়েটাৰৰ বেনাৰত গিৰীশ কাৰ্ণাডৰ *ব্ৰকেন ইমেজেচ* অসমীয়াত পৰিচালনা কৰিছিল। এই নাটকখন অসম ৰাজ্যিক সংগ্ৰহালয়ৰ কনকলাল বৰুৱা প্ৰেক্ষাগৃহত ২০১৩ চনৰ ১৭ আৰু ১৮ আগষ্ট তাৰিখে মঞ্চস্থ হৈছিল। এই নাটকখনত সীমা বিশ্বাসে অভিনয় কৰিছিল।

২.২ উৎস ঃ

উৎস অন্য এক মহিলা পৰিচালিত নাট্যগোষ্ঠী। ৰাষ্ট্ৰীয় নাট্যবিদ্যালয়ৰ স্নাতক তথা বিশিষ্ট অভিনেতা বিদ্যাৰতী ফুকনে ১৯৯৭ চনৰ ২৭ জুন তাৰিখে আনুষ্ঠানিকভাৱে এই নাট্যগোষ্ঠীটোৰ জন্ম দিছিল। নাট্যগোষ্ঠীটোৰ আখৰাগৃহ তথা নাট্যচৰ্চাৰ কেন্দ্ৰ তিনিচুকীয়া জিলাৰ কাকপথাৰ ন-মাইথং গাঁৱত অৱস্থিত। নাট্যগোষ্ঠীটোৰ সৈতে জড়িত হৈ থকা শিল্পীসকল হৈছে - অনিল গোহাঁই, বিপুল ফুকন, দীপ বৰপাত্ৰ গোহাঁই, বিপনজিৎ গগৈ, বসন্ত চুতীয়া, অনাদি অনন্ত ফুকন, শোণিত কুমাৰ বৰা, দীপমণি ৰাজকোঁৱৰ, মণ্টু গগৈ, বিকাশ কটকী, পূণ্যজিৎ মৰাণ, শৈলেন দুৱৰী, বিশ্বনাথ গগৈ, অণ্টু সোনোৱাল, মঞ্জু ৰাজকোঁৱৰ, পল্লৱী গগৈ, চুমী বৰগোহাঁই, পূণ্য গগৈ, নিবেদিতা ফুকন, অৰুমী চুতীয়া, গীতা বৰুৱা, স্মৃতি হাজৰিকা, বন্তি সোনোৱাল, বিনোদ তুৰী, প্ৰাঞ্জল মহন্ত ইত্যাদি। এই নাট্যগোষ্ঠীটো প্ৰধানকৈ পিছপৰা অঞ্চলটোত নাট্য চৰ্চা, নাট্য সচেতনতা জাগ্ৰত কৰিবলৈ প্ৰতিষ্ঠা কৰা হৈছিল।

১৯৯৭ চনৰ পৰাই *উৎস* নাট্যগোষ্ঠীটোৱে নাট প্ৰতিযোগিতা, বাটৰ নাট, নাটকৰ কৰ্মশালা আদিৰ উপৰিও বছৰি কমেও এখনকৈ পূৰ্ণাঙ্গ নাটক মঞ্চস্থ কৰি আহিছে। আৰম্ভণিতে ই কেৱল অপেছাদাৰী নাট্যগোষ্ঠী হিচাপে কাম আৰম্ভ কৰিছিল যদিও পিছলৈ ই নাটকৰ গৱেষণা, প্ৰশিক্ষণ আৰু পৰিবেশন কেন্দ্ৰ হিচাপে গঢ় লৈ উঠে। ৰাষ্ট্ৰীয় নাট্য বিদ্যালয়ৰ অৰ্থ সাহায্যৰে গোষ্ঠীটোৱে বহুকেইখন নাট-কৰ্মশালা অনুষ্ঠিত কৰিলে। উৎসৰ আখৰা গৃহটোৰ নাম *উদং মজিয়া*। নাট্যগোষ্ঠীটোৱে আৱাসিক নাট্য প্ৰশিক্ষণ কেন্দ্ৰ হিচাপেও কাম কৰি আহিছে।

২০০৪ চনত *উৎস*ই এখন দুমহীয়া কর্মশালা অনুষ্ঠিত কৰি *ইষ্টেচনৰ আহিন*নামৰ নাটকখন মঞ্চস্থ কৰে। নাটকখন অনুৰাধা শর্মা পূজাৰীৰ এটি গল্পৰ আধাৰত পংকজ জ্যোতি ভূঞাই ৰূপ দিছে। বিদ্যাৰতী ফুকনৰ সামগ্রিক পৰিকল্পনা আৰু পৰিচালনাৰে নাটকখন গুৱাহাটীৰ কুমাৰ ভাস্কৰ নাট্য মন্দিৰ, শংকৰদেৱ কলাক্ষেত্র, মাছখোৱা সাংস্কৃতিক প্রকল্প আদিত অভিনীত হৈছিল।

২০০৬ চনত ৰাষ্ট্রীয় নাট্য বিদ্যালয়ৰ উদ্যোগত *উৎস* ই কাকপথাৰ আঞ্চলিক সাংস্কৃতিক কেন্দ্রত ৪৫ দিনীয়া আৱাসিক নাট কর্মশালাৰ আয়োজন কৰি আন এখন নাটকৰ জন্ম দিয়ে। নাটকখন হৈছে *গুটি ফুলৰ গামোছা*। অসমীয়া জাতিৰ প্রাণস্পন্দনস্বৰূপ বিহুক নাটকখনৰ জৰিয়তে নিভাঁজ ৰূপত উপস্থাপন কৰা হৈছে। গুৱাহাটীৰ ৰবীন্দ্র ভৱন আৰু কলাক্ষেত্রত নাটকখন কেইবাবাৰো মঞ্চস্থ হৈছিল। তদুপৰি অসমৰ বিভিন্ন ঠাইত চৈধ্যবাৰকৈ নাটকখন মঞ্চস্থ হোৱাৰ লগতে আগৰতলাৰ নজৰুল কলাক্ষেত্র আৰু জীৱণীয়া সাংস্কৃতিক সদনতো অভিনীত হয়। গেংটকৰ ডিফেন্স অ'ডিট'ৰিয়ামত ২০০৮ চনত, North east Theatre Festival, Bangalore ত ২০১১ চনত আৰু মুম্বাইত ২০১০ চনত *গুটি ফুলৰ গামোচা*প্রদর্শিত হয়। ২০০৭ চনত কর্ণাটক চৰকাৰৰ দ্বাৰা আয়োজিত আন্তঃৰাষ্ট্রীয় নাট মহোৎসৱ হাম্পি, ২০০৮ চনত মাইচো�ৰ, দিল্লীৰ ভাৰত ৰঙ্গ মহোৎসৱ, বাংগালুৰু, ২০১০ চনত দিল্লী শ্রীৰাম চেণ্টাৰত *মহিন্দ্র এক্সেলেঞ্চ ইন থিয়েটাৰ এৱার্ড* অনুষ্ঠানত *গুটি ফুলৰ গামোচা* উচ্চ প্রশংসিত হয়। *গুটি ফুলৰ গামোচা* নাটকখনৰ বাবে দিল্লী শ্রী ৰাম চেণ্টাৰত অনুষ্ঠিত হোৱা মহিন্দ্র এক্সেলেঞ্চ ইন থিয়েটাৰ এৱার্ডত বিদ্যাৰতী ফুকনে শ্রেষ্ঠ পৰিচালক আৰু শ্রেষ্ঠ ৰূপসজ্জাৰ বঁটা লাভ কৰে।

২০০৯ চনৰ ২৭ মার্চৰ পৰা ২৪ জুনলৈ তিনিটা পর্য্যায়ত *উৎস* ই ৰাষ্ট্রীয় নাট্য বিদ্যালয়ৰ উদ্যোগত ৬৫ দিনীয়া আন এখন আৱাসিক কর্মশালা অনুষ্ঠিত কৰে। এই কর্মশালাৰ অন্তত *উৎস* ই প্রযোজনা কৰে অসমৰ জাতীয়-জীৱন আৰু লোক-কৃষ্টি প্রতিফলিত কৰা আন এখন নাটক *ব'ল চেনাই তালৈকে*। নাটকখনৰ পৰিকল্পনা আৰু পৰিচালনা আছিল বিদ্যাৰতী ফুকনৰ। এই নাটকখন তিনিচুকীয়া, মাইথং, বাৰেকুৰি, নাহৰকটীয়া, ফিল'বাৰী, ডিব্রুগড়, টেঙাখাত আদি বিভিন্ন ঠাইত মঞ্চস্থ কৰাৰ পিছত গুৱাহাটীৰ ৰবীন্দ্র ভৱনত *সূর্য্য নাট সমাৰোহ*, দিল্লীৰ মেঘদূততে *ভাৰত ৰঙ্গ মহোৎসৱ-২০১০* আদিত অভিনীত হয়।

২০১০ চনত আন এখন কর্মশালাৰ জৰিয়তে উৎসই মহাপুৰুষ শ্রীমন্ত শঙ্কৰদেৱৰ বিৰচিত অংকীয়া নাট *পাৰিজাত হৰণ* অনুশীলন কৰায়। নাটখন পৰিচালনা কৰে ভবানন্দ ৰৱৰায়ন আৰু বিদ্যাৰতী ফুকনে। *পাৰিজাত হৰণ* নাটখন কর্মশালাৰ অন্তত ন-মাইথঙত প্রায় ৩০০০ দর্শকৰ আগত প্রদর্শন কৰা হয়। নাটখন অসমৰ বিভিন্ন ঠাইৰ উপৰিও গুৱাহাটীৰ জ্যোতি চিত্রবনতো প্রদর্শিত হয়। *উৎস* গোষ্ঠীৰ আন এখন নাটক হৈছে *আহ যাওঁ ওমলোঁগৈ* (২০১১)। শঙ্কৰদেৱৰ *ৰুক্মিনী হৰণ* নাটখনো *উৎস*ই প্রযোজনা কৰি ২০১২ চনত চেঙেলীজান গাঁও নামঘৰ আৰু কাকপথাৰ মহাপুৰুষীয়া নামঘৰত প্রদর্শন কৰে। নাটখন পৰিচালনা কৰে ভবানন্দ ৰৱৰায়ন আৰু বিদ্যাৰতী ফুকনে।

২০১৪ চনত ৰাজীৱ লোচন বৰাই ৰচনা কৰা *ঢুলীয়া ওজা* উৎসই প্রযোজনা কৰে। নাটকখন গুণমণি বৰুৱাই পৰিচালনা কৰিছিল। এইখন নাটক মাইথং, ফিল'বাৰী আৰু তিনিচুকীয়াৰ লগতে ৰাষ্ট্রীয় নাট্য বিদ্যালয়ৰ সহযোগত গুৱাহাটীৰ কুমাৰ ভাস্কৰ নাট্য মন্দিৰত অভিনীত হৈছিল। ২০১৪ চনতে হেম বৰুৱাৰ বিখ্যাত কবিতা *মমতাৰ চিঠি* ৰ আধাৰত গুণমণি বৰুৱাই একে নাম দি নাট্যৰূপ কৰিছিল। গুণমণি বৰুৱাৰ পৰিকল্পনা আৰু পৰিচালনাৰেই *মমতাৰ চিঠি* উৎসৱ বেনাৰত অভিনীত হৈছিল।

সেইদৰে *উৎস* নাট্যগোষ্ঠীয়ে কাকপথাৰত শঙ্কৰদেৱৰ *কেলিগোপাল*, বিপনজিৎ গগৈ আৰু ৰঞ্জিত সন্দিকৈ পৰিচালিত *সাধুৰ মাজৰ সাধুকথা*, ৰাজীৱ লোচন বৰা পৰিচালিত *শিয়াল পণ্ডিত*আৰু *ডাইনী* ২০১৫ চনত মঞ্চস্থ কৰে। দহটি একক অভিনয়েৰে *ভাওৰীয়া* (২০১৫) *উৎস* ই পৰীক্ষামূলকভাৱে মঞ্চস্থ কৰে। এই নাটকখনৰ বাবে *উৎস* ৰ নিয়মীয়া নাট্যচর্চাস্থলী *আনন্দ সৰোৱৰ* ত নাট্যকর্মীসকলে বাঁহ আৰু বাতৰি কাকত ব্যৱহাৰ কৰি ঘূৰণীয়া ৰঙ্গমঞ্চ নির্মাণ কৰি লৈছিল। সময়ে সময়ে অংকীয়া নাট আৰু অন্যান্য নাটকৰ কর্মশালা অনুষ্ঠিত কৰি অহা *উৎস* ই ২০২১ চনতো ফেব্রুৱাৰী মাহত ১৫ দিনীয়া অংকীয়া নাটৰ কর্মশালা অনুষ্ঠিত কৰি কিৰণ বৰা আৰু মুকুল শইকীয়া বৰৱায়নৰ পৰিচালনাত শংকৰদেৱৰ *ৰামবিজয়* নাট পৰিবেশন কৰে।

২.৩ হৰাইজন চ'ছিঅ' কালচাৰেল অৱগেনাইজেচন ঃ

মহিলা নাট্যকর্মীৰ দ্বাৰা প্ৰতিষ্ঠিত আৰু পৰিচালিত অন্য এটা অনুষ্ঠান হৈছে *হৰাইজন চ'ছিঅ' কালচাৰেল অৱগেনাইজেচন*। অনুষ্ঠানটোৰ জন্মদাতা হৈছে অনুৰূপা ডেকাৰজা। প্ৰকৃততে হৰাইজন চ'ছিঅ' কালচাৰেল অৱগেনাইজেচন এটা নাট্য-নৃত্য বিষয়ক সংস্থা। এই সংস্থাৰ অধীনত শ্ৰীমতী ডেকাৰজাই দুখন নাট্য বিদ্যালয় পৰিচালনা কৰি উঠি অহা প্ৰজন্মক অভিনয় আৰু নৃত্যৰ শিক্ষা প্ৰদান কৰি আহিছে। তেওঁ তেওঁৰ নাট্য বিদ্যালয়ৰ শিক্ষার্থীসকলক লৈ জামছেদপুৰ, মুম্বাই, ক'লকাতা, মধুপুৰ, হিমাচল প্ৰদেশ, চণ্ডীগড় আদি ঠাইত নাট্য প্ৰদৰ্শন কৰিছে। ২০০৪ চনৰ পৰা প্ৰায় পাঁচ বছৰ তেওঁ সৰ্বভাৰতীয় নাট্য প্ৰতিযোগিতাসমূহত নাট্যদল লৈ অংশগ্ৰহণ কৰিছে। ২০০৪ চনত ডেকাৰজাই তেওঁৰ নাট্যদল লৈ প্ৰথম জামছেদপুৰত টাটাই অনুষ্ঠিত কৰা নাট্য প্ৰতিযোগিতাত অংশগ্ৰহণ কৰিছিল। এই সংস্থাৰ বেনাৰত অনুৰূপা ডেকাৰজাই ৰচনা আৰু পৰিচালনা কৰা *জেনেৰেচন* নাটকখনে (জামছেদপুৰত অনুষ্ঠিত) ৰাষ্ট্ৰীয় নাট আৰু নৃত্য সমাৰোহত *চেয়াৰমেন এৱার্ড* লাভ কৰাৰ লগতে নাটকখনে শ্ৰেষ্ঠ পাণ্ডুলিপি আৰু শ্ৰেষ্ঠ পৰিচালকৰ বঁটাও লাভ কৰে।

তেওঁৰ নাট্যগোষ্ঠীটোৰ দ্বাৰা মঞ্চস্থ নাটকসমূহ হৈছে - *ভুলৰ পৰিণতি, ৰেগিং, মই ডাইনী নহয়, ৰম্ভা*, শিশু নাটক *পোহৰ বিচাৰি যাওঁ, জেনেৰেচন* ইত্যাদি।

২.৪ জে. বি. প্ৰডাকচন ঃ

জে. বি. প্ৰডাকচন হৈছে মহিলা নাট্য সংগঠকৰ দ্বাৰা প্ৰতিষ্ঠিত এটি আগশাৰীৰ নাট্যগোষ্ঠী। এই গোষ্ঠীটোৰ প্ৰতিষ্ঠাতা হৈছে বিশিষ্ট অভিনেতা ডা° জাহানাৰা বেগম। ২০০৯ চনতে প্ৰতিষ্ঠা হোৱা জে. বি. প্ৰডাকচনে অসমৰ লগতে অসমৰ বাহিৰতো নাটক প্ৰদৰ্শন কৰি আহিছে। জে. বি. প্ৰডাকচনে প্ৰতিটো বর্ষৰ প্ৰথম দিনটোত *নাটকৰ দিন* পালন কৰি বিশিষ্ট নাট্যকর্মীসকলক সম্বৰ্দ্ধনা জনায়। তদুপৰি নাট্যগোষ্ঠীটোৱে ২০১৬ বর্ষৰ পৰা প্ৰতিবছৰে একোগৰাকী মহিলা মঞ্চ অভিনেতাক *কিৰণময়ী বৰা মঞ্চাভিনেত্ৰী বঁটা* ৰে সন্মানিত কৰি আহিছে। এনে কেইগৰাকীমান মহিলা অভিনেতা হ'ল - অনুপমা ভট্টাচার্য্য (২০১৬), বৰুণা মুখার্জী (২০১৭), ৰীণা ডেকা বৰুৱা (২০১৮), লীলাৱতী দত্ত মজুমদাৰ (২০১৯) ইত্যাদি। জে. বি. প্ৰডাকচনৰ সৈতে বহুকেইগৰাকী অভিনেতা নাট্যকর্মী জড়িত হৈ আছে। তাৰ ভিতৰত জ্বলী লস্কৰ, অর্পণা দত্ত চৌধুৰী, মীনাক্ষী ভূঞা, কল্পনা কলিতা আদিৰ নাম উল্লেখযোগ্য। জে. বি. প্ৰডাকচনে প্ৰযোজনা আৰু মঞ্চস্থ কৰা কেইখনমান নাটক হৈছে - অৰুণ শর্মাৰ *চিত্ৰলেখা, অদিতিৰ আত্মকথা, অন্য এক অধ্যায়*, মোহন ৰাকেশৰ মূল নাটকৰ অসমীয়া ৰূপান্তৰ *আহাৰৰ এদিন, আধে অধুৰে, উর্মিমালাৰ মৰাল*, গিৰিন্দ্ৰ মোহন দাসৰ *বন্দিনী বৈদেহী*, চাউলি মিত্ৰৰ *নাথৱতীৰ অনাথবৎ*, ৰবীন্দ্ৰ নাথ ঠাকুৰৰ উপন্যাসৰ আধাৰত ডা° জাহানাৰা বেগম আৰু অবিনাশ শর্মাই নাট্যৰূপ দিয়া *মালঞ্চ* ইত্যাদি। তদুপৰি অনুৰাধা শর্মা পূজাৰীৰ উপন্যাস *কাঞ্চন* ৰ নাট্যৰূপ, *বাদুলি* গল্পৰ নাট্যৰূপ আদি জে. বি. প্ৰডাকচনৰ উল্লেখযোগ্য নাট্যকর্ম। ইয়াৰে কাঞ্চন, মালঞ্চ, আহাৰৰ এদিন, উর্মিমালাৰ মৰাল আদি নাটকত ডা° বেগমে মূল চৰিত্ৰত অভিনয় কৰিছে। ইয়াৰ বাহিৰেও ডা° বেগমে নাট্যগোষ্ঠীটোৰ বেনাৰত ইবছেনৰ *A Dolls House*, গিৰীশ কার্ণাডৰ *Broken Images*, নির্মল বর্মাৰ *ধূপ কা এক টুক্ৰা* আদি নাটক অসমীয়ালৈ অনুবাদ কৰি অভিনয় কৰিছে। জে. বি. প্ৰডাকচনৰ নিজা আখৰাগৃহটোৰ নাম *কুশীলৱ*।

২.৫ মানচালেংকা ঃ

মানচালেংকা নাট্যগোষ্ঠীৰ পৰিচালক হৈছে ৰাষ্ট্ৰীয় খ্যাতিসম্পন্ন শিল্পী, সংগীত নাটক একাডেমীৰ বিছমিল্লা খাঁ যুৱ বঁটা বিজয়ী ৰয়ন্তী ৰাভা। ২০০৯ চনত গোৱালপাৰাৰ বালাচাৰা আমগুৰিত *অসম নাট্য সন্মিলন* ৰ এটি শাখা প্ৰতিষ্ঠা হয় আৰু তাত ২০ দিনীয়া কর্মশালা এখন অনুষ্ঠিত কৰা হয়। এই কর্মশালাত ৰয়ন্তী ৰাভাই প্ৰশিক্ষক হিচাপে জড়িত হৈ থাকে। পিছলৈ ইয়াতে ৰয়ন্তী ৰাভাই সুদর্শন ৰাভাৰ সহযোগত *মানচালেংকা* নামৰ নাট্যসংগঠন এটিৰ জন্ম দিয়ে। বিশিষ্ট নাট্যকর্মী প্ৰকাশ চন্দ্ৰ ৰাভাক প্ৰতিষ্ঠাপক সভাপতি আৰু সুদর্শন ৰাভাক সচিব হিচাপে নিযুক্ত কৰি ৰয়ন্তী ৰাভাই মুখ্য প্ৰশিক্ষক হিচাপে দায়িত্ব পালন কৰে। ৰয়ন্তী ৰাভাই নিজে পৰিচালকৰো দায়িত্ব গ্ৰহণ কৰে। তেখেতে সুদর্শন ৰাভাৰ সৈতে লগ লাগি তিনি বিঘা মাটিত *মানচালেংকা* ৰ নাট্যশালাটো স্থাপন কৰিছে। সম্পূর্ণ প্ৰাকৃতিক পৰিবেশত শিবিৰ আৰু নাট্য চর্চাৰ মঞ্চ শিল্পীসকলেই সাজি লৈছে। নৱনির্মিত কলাকেন্দ্ৰটোৰ উদ্বোধনী অনুষ্ঠানত বিশিষ্ট নাট্যকাৰ এইচ. এচ.

শিৱপ্ৰকাশৰ মূল নাট *সতী* ৰ ৰাভা অভিযোজনা এইচ. তোম্বাৰ পৰিচালনাত মঞ্চস্থ কৰা হয়। কোনো ধৰণৰ বৈদ্যুতিক আহিলা, যন্ত্ৰ-পাতি বা কৃত্ৰিম পোহৰ ব্যৱহাৰ নকৰাকৈ মুকলি আকাশৰ তলত সূৰ্য্যৰ পোহৰতে ইয়াত নাটক মঞ্চস্থ হয়। *মানচালেংকা*ৰ মজিয়াত ব্যৱহৃত বাদ্য-যন্ত্ৰও থলুৱা ৰাভা-সংস্কৃতিৰ নিভাঁজ বাদ্য-যন্ত্ৰ। এই নাট্যগোষ্ঠীত ৰাভা জনজাতীয় শিল্পীৰ সমাহাৰ হৈছে। তেওঁলোক হ'ল - আনন্দ ৰাভা, ৰমান ৰাভা, ভাগীৰথ ৰাভা, লিপিকা ৰাভা, সমতি ৰাভা, মমতা ৰাভা, নাট্য ৰাভা, মৃদুলা ৰাভা, সবিতা ৰাভা, মনেশ্বৰ ৰাভা, নমিতা ৰাভা, গীতিকা ৰাভা, মৃদুলা ৰাভা, বিজুমণি ৰাভা। এইসকল নাট্যকৰ্মীয়ে অভিনয়, মঞ্চসজ্জা, ৰূপসজ্জা, আবহ সংগীতত কণ্ঠদান - এই আটাইবোৰ কার্য্যই কৰে। বৰ্তমান *মানচালেংকা* ৰাভা জনগোষ্ঠীৰ গৌৰৱোজ্জ্বল নাট্যচৰ্চাৰ দল। ৰাভা লোক-সংস্কৃতি বিষয়ত আলোকপাত কৰি ৰাজেন পামে ৰচনা কৰা *জানংজিনং* নামৰ উপন্যাসখনৰ আধাৰত প্ৰকাশ চন্দ্ৰ ৰাভাই ৰাভা ভাষাত ৰচনা কৰা নাটক *জানংজিনং* মানচালেংকা নাট্যগোষ্ঠীয়ে ২০১১ চনত নতুন দিল্লীৰ *ইন্দিৰা গান্ধী ৰাষ্ট্ৰীয় কলাকেন্দ্ৰ*ৰ উদ্যোগত আয়োজিত সৰ্বভাৰতীয় নাট উৎসৱত মঞ্চস্থ কৰি প্ৰশংসিত হৈছিল।

২.৬ চিফুং- দ্য আৰ্টিষ্ট ঃ

চিফুং - দ্য আৰ্টিষ্ট নাট্যগোষ্ঠীটোৰ প্ৰতিষ্ঠাপক হৈছে পৰী শৰণীয়া। এই নাট্যগোষ্ঠীটো তেখেতে ২০১০ চনত গোৱেশ্বৰত প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল। প্ৰতিষ্ঠাৰ সময়ৰ পৰাই গোষ্ঠীটোৱে অসমৰ চহকী সংস্কৃতি সম্পৰ্কে পিছপৰা অঞ্চলসমূহত বাস কৰা শিশুসকলৰ জ্ঞানৰ পৰিসীমা বৃদ্ধি কৰিবলৈ তথা স্বাস্থ্য, শিক্ষা আদি বিভিন্ন দিশত সজাগতা বৃদ্ধি কৰিবলৈ চেষ্টা কৰি আহিছে। তাৰ বাবে *চিফুং-দ্য আৰ্টিষ্টে* শিশুসকলক নিয়মিতভাৱে নাটক, নৃত্য, যোগাভ্যাস আৰু চিত্ৰাংকনৰ বিনামূলীয়া শিক্ষা প্ৰদান কৰি আহিছে। মাজে মাজে গোষ্ঠীটোৰ তৰফৰ পৰা নাটকৰ কৰ্মশালা আয়োজন কৰা হয়। *চিফুং - দ্য আৰ্টিষ্ট* গোষ্ঠীৰ বেনাৰত মঞ্চস্থ নাটকসমূহ হৈছে - *চুইচাইড নোট, মাই নেম ইজ খাণ্ডু, ডেউকা, ডেউকা-২, মন্দোদৰী, মোৰ ঘৰ ক'ত, থেংফাখ্ৰী* ইত্যাদি। নাটককেইখন পৰী শৰণীয়াই নিজেই পৰিচালনা কৰিছে। এই নাট্যগোষ্ঠীটোৱে পিছপৰা অঞ্চলৰ শিশুসকলৰ মাজত শৈক্ষিক পৰিবেশ সৃষ্টিৰ বাবে ভ্ৰাম্যমাণ গ্ৰাম্য পুথিভৰাঁলৰ ব্যৱস্থাও কৰিছে।

২.৭ ডেনদুন দ্য থিয়েটাৰ ঃ

২০১৫ চনত গায়ত্ৰী দলেই ধেমাজি জিলাৰ গোগামুখত স্থাপন কৰা *ডেনদুন দ্য থিয়েটাৰ* এটি জনগোষ্ঠীয় নাট্য সংগঠন। এদল উদীয়মান মিছিং যুৱক-যুৱতীক লৈ নাট্যদলটো শ্ৰীমতী দলেই আৰম্ভ কৰিছিল। নাট্যদলটোৰ জৰিয়তে জনগোষ্ঠীটোৰ কৃষ্টি-সংস্কৃতিক উজ্জীৱিত কৰিবলৈ তেখেতে প্ৰয়াস কৰিছিল। ২০১৬ চনৰ ডিচেম্বৰ মাহত কলিকতাৰ বীৰভূমত অনুষ্ঠিত হোৱা ৰাষ্ট্ৰীয় নাট্য বিদ্যালয়ৰ আদিবিম্ব মহোৎসৱত *ডেনদুন দ্য থিয়েটাৰে Aane lokke ga:nelo:pe* (নদীৰ পৰা সাগৰলৈ) নামৰ মিছিং ভাষাৰ নাটক এখন মঞ্চস্থ কৰে। নাটকখনৰ ৰচনা গায়ত্ৰী দলেৰ আৰু পৰিচালনা কৰিছিল অনিৰ্বান বৰগোহাঞিয়ে। এই নাটকখনেই আন্দামান নিকোবৰলৈও নিৰ্বাচিত হৈছিল। সেইদৰে, ২০১৭ চনত কলিকতাৰ বীৰভূমত পুনৰ *ডেনদুন দ্য থিয়েটাৰে ওলগোলান* (আন্দোলন) নামৰ আন এখন নাটক মঞ্চস্থ কৰে। ২০১৭ চনত গোগামুখৰ স্থানীয় ল'ৰা-ছোৱালীৰ মাজত এই নাট্যগোষ্ঠীটোৱে নাটকৰ কৰ্মশালা আয়োজন কৰি তেওঁলোকক নাট্য সচেতন কৰি তুলিবলৈও যত্ন কৰিছিল। কিন্তু ২০১৭ চনৰ পিছৰ পৰা এই নাট্যগোষ্ঠীটোৰ সক্ৰিয়তা কমি অহা দেখা যায়।

৩.০ উপসংহাৰ ঃ

শংকৰদেৱে ষোড়শ শতিকাৰ আগভাগতে নাট ৰচনা আৰু পৰিবেশন কৰি অসমীয়া নাট্য ইতিহাসৰ শুভ আৰম্ভণি ঘটায়। সময়ৰ লগে লগে অসমীয়া নাটকে এক সমৃদ্ধ ৰূপ পৰিগ্ৰহণ কৰিছে। কিন্তু ষোড়শ শতিকাতে জন্ম লাভ কৰা অসমীয়া নাটকৰ সৈতে বহুদিনলৈকে মহিলা জড়িত হ'ব পৰা নাছিল। ১৯৩৩ চনতহে পোনপ্ৰথমবাৰৰ বাবে অসমীয়া মহিলা নাটকৰ সৈতে জড়িত হয়। স্বৰাজোত্তৰ কালৰ পৰা অসমীয়া মহিলাই মুকলি মনেৰে নাটকত অংশগ্ৰহণ কৰে। সম্প্ৰতি নাটক ৰচনা, পৰিচালনা আৰু অন্যান্য কৌশলগত দিশতো বহুসংখ্যক মহিলাই অংশগ্ৰহণ কৰিছে।

আমাৰ কাকতখনত মহিলাৰ দ্বাৰা পৰিচালিত নাট্যগোষ্ঠী সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা হৈছে। এই অধ্যয়নত দেখা গ'ল যে পুৰুষৰ সমানে সমানে বৰ্তমান মহিলাসকলেও নাটক পৰিচালনাৰ লগতে একোটা নাট্যগোষ্ঠীও দক্ষতাৰে পৰিচালনা কৰি গৈছে। এই নাট্যগোষ্ঠীসমূহে অসমৰ নাট্যজগতলৈ বহুখিনি অৱদান আগবঢ়াইছে আৰু দেশে-বিদেশে নাট পৰিবেশন কৰি সুনাম কঢ়িয়াই আনিছে। তদুপৰি মহিলা পৰিচালিত এই নাট্যগোষ্ঠীসমূহে নৱ-প্ৰজন্মক নাটকৰ প্ৰশিক্ষণ দি এচাম নতুন নাট্যশিল্পীও গঢ়ি তুলিছে। ❑

প্ৰসংগ টোকা ঃ

[১] হৰিচন্দ্ৰ ভট্টাচার্য্য ঃ *অসমীয়া নাট্য সাহিত্যৰ জিলিঙণি,* পৃ-৪৮১

[২] শ্যামা প্ৰসাদ শৰ্মা ঃ 'মহিলা নাট্যদলঃ সম্ভাৱনা আৰু প্ৰত্যাহ্বান' (পাদটীকা), ভূপেন গোস্বামী (সম্পা)ঃ *চয়নিকাৰ পঁচিশ বছৰ-নাট্যচিন্তা নাট্যচর্চা,* পৃ-৫৩১

[৩] ৰাজকুমাৰ ভট্টাচার্য্য ঃ 'নগাঁও নাট্যসমিতি আৰু মন্দিৰৰ সংক্ষিপ্ত কথা,' মনোৰঞ্জন বৰুৱা (সম্পা) ঃ *শৰদঃশতম্,* নগাঁও নাট্য সমিতিৰ শতবর্ষ স্মৃতি অর্ঘ্য, পৃ-১২০

[৪] শ্যামা প্ৰসাদ শৰ্মা ঃ উল্লিখিত প্ৰবন্ধ, পৃ-৫৩১

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১। গোস্বামী, ভূপেন (সম্পা) ঃ *চয়নিকাৰ পঁচিশ বছৰ-নাট্যচিন্তা নাট্যচর্চা,* চয়নিকা, ডিব্ৰুগড়, ২০১৬

২। বৰুৱা, মনোৰঞ্জন (সম্পা) ঃ *শৰদঃশতম্,* নগাঁও নাট্য সমিতিৰ শতবর্ষ স্মৃতি অর্ঘ্য, (১৮৯৬-১৯৯৬)

৩। বড়া, প্ৰাঞ্জল প্ৰতীম আৰু অন্যান্য (সম্পা) ঃ *অসমৰ ভ্ৰাম্যমাণ থিয়েটাৰ,* অসম কলেজ শিক্ষক সংস্থা, ২০২১

৪। ভট্টাচার্য্য, হৰিচন্দ্ৰ ঃ *অসমীয়া নাট্য সাহিত্যৰ জিলিঙণি,* লয়ার্ছ বুকষ্টল, প্ৰথম প্ৰকাশ ২০১৬

৫। শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ ঃ *অসমীয়া নাট্য সাহিত্য,* সৌমাৰ প্ৰকাশ, ২০১৩

৬। হাজৰিকা, অতুলচন্দ্ৰ ঃ *মঞ্চলেখা,* লয়ার্ছ বুকষ্টল, ১৯৯৫

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ লোকজীৱনৰ ওপৰত বিশ্বায়নৰ প্ৰভাৱ : এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

দিপ্তী সিতলা

সহকাৰী অধ্যাপক, বাণিজ্য বিভাগ
লোকনায়ক অমিয় কুমাৰ দাস মহাবিদ্যালয়,
ঢেকিয়াজুলি-৭৮৪১১০
গৱেষক, কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়
(KKHSOU), গুৱাহাটী (অসম)
ম'বাইল ঃ ৯৭০৭৫০৭৭৭৮
ই-মেইল ঃ dipti.sitola123@gmail.com

ড° স্মৃতিশিখা চৌধুৰী

সহকাৰী অধ্যাপক
কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়
(KKHSOU), গুৱাহাটী (অসম)

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

বিশ্বায়ন আৰু প্ৰযুক্তিগত বিকাশৰ এই যুগত কেৱল অৰ্থনীতিয়েই নহয়, ব্যক্তি আৰু সংস্কৃতিয়েও বিশ্বব্যাপী মত বিনিময় কৰে। ইয়াৰ ফলত সাংস্কৃতিক পৰিৱেশে এক নতুন গভীৰতা লাভ কৰিছে। জনজাতীয় লোকসকলৰ কলা-সংস্কৃতিৰ অনন্য পৰম্পৰাগত ঐতিহ্যৰ বাবে পৰিচিত ভাৰতৰ উত্তৰ-পূব অঞ্চলত বহুতো জনগোষ্ঠীয়ে বসবাস কৰে। বৰ্তমানৰ অধ্যয়নত বিশ্বায়নৰ সাংস্কৃতিক আৰু সামাজিক দিশ আৰু উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ লোকসকলৰ জনজাতীয় সংস্কৃতিৰ ওপৰত বিশ্বায়নৰ প্ৰভাৱৰ অনুসন্ধান কৰা হৈছে। এইটো মূলতঃ গৌণ তথ্যৰ ওপৰত ভিত্তিকৰি কৰা বিশ্লেষণাত্মক গৱেষণা। অধ্যয়নটোৱে ইংগিত দিয়ে যে, বৰ্তমানৰ পৰিস্থিতিৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি বিশ্বায়ন অনিবাৰ্য আৰু উত্তৰ পূব ভাৰতৰ জনজাতিসকলে সমৃদ্ধিশালী হোৱাৰ লগতে বিশ্বৰ বাকী অংশৰ সৈতে প্ৰতিযোগিতাত অৱতীৰ্ণ হ'বলৈ বিশ্বায়নে সহায় কৰিব লাগিব। কিন্তু অঞ্চলটোৰ পৰম্পৰাগত সংস্কৃতিৰ ওপৰত বিশ্বায়নৰ নেতিবাচক আৰু অভাৱনীয় প্ৰভাৱ সীমিত কৰিবলৈ সাৱধানতা অৱলম্বন কৰা নিতান্তই প্ৰয়োজনীয়।

মূলশব্দ ঃ

বিশ্বায়ন; প্ৰযুক্তিগত; জাতিগত; উত্তৰ-পূব অঞ্চল; লোক-সংস্কৃতি; সামাজিক; পৰম্পৰা।

পাতনি ঃ

ভাৰতৰ উত্তৰ-পূব অঞ্চলটো এক বৈচিত্ৰ্যপূৰ্ণ অঞ্চল। ই এক সীমান্তৱৰ্তী অঞ্চল। ইয়াৰ ২০০০ কিলোমিটাৰ সীমা ভূটান, চীন, ম্যানমাৰ, আৰু বাংলাদেশৰ সৈতে ভাগ কৰা হৈছে আৰু ভাৰতৰ বাকী অংশৰ সৈতে ২০ কিলোমিটাৰ বহল স্থল কৰিডৰৰ দ্বাৰা সংযুক্ত। ভাৰতৰ অন্যান্য অংশৰ তুলনাত এই অঞ্চল

পৰিৱেশগত ভাৱে সুকীয়া। এই অঞ্চলৰ অন্যান্য বৈশিষ্ট্যসমূহ হ'ল ওখ পাহাৰ, বৰফেৰে আবৃত অঞ্চল, ডাঠঅৰণ্য, নদী, মালভূমি আৰু সমভূমি, আৰু অধিক বৰষুণৰ আৰ্দ্র বতৰ। উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চল ভাৰত নৈতিক আৰু ভাষিকভাৱে বৈচিত্রময় অঞ্চলসমূহৰ ভিতৰত অন্যতম। প্রতিখন ৰাজ্যৰে নিজা সুকীয়া সংস্কৃতি আৰু ৰীতি-নীতি থাকে। (দাস, ২০১৫)। আঠখন ৰাজ্যক সামৰি লোৱা ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৰ অঞ্চলত শ শ জনগোষ্ঠীয়ে বাস কৰে, অৱশ্যে বিশ্বায়নৰ যুগত সংস্কৃতি এটা পণ্য হৈ পৰিছে। ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলকে ধৰি ভাৰতীয় সাংস্কৃতিক জীৱনত যথেষ্ট পৰিৱর্তন দেখা গৈছে। ইতিমধ্যে বিশ্বায়নে অঞ্চলটোৰ মানুহৰ জীৱন আৰু সংস্কৃতিত প্রভাৱ পেলাইছে, যাৰ ফলত বহুল প্রতিক্রিয়াৰ সৃষ্টি হৈছে। কিছু সংখ্যক লোকে আশংকা কৰে যে লোক-সংস্কৃতিৰ বৃহৎ পৰিসৰৰ পৰিৱর্তন আৰু সহ-সংশোধনে তেওঁলোকৰ বিশেষ পৰিচয় নির্মূল কৰিব, আনহাতে কিছু সংখ্যকে অনুভৱ কৰে যে, বিশ্বায়ন আৰু প্রযুক্তিগত উদ্ভাৱনে পৰম্পৰাগত সাংস্কৃতিক বিপণন আৰু সংৰক্ষণ দুয়োটাৰে সুযোগ প্রদান কৰিব। কাজী, ২০২২। বিশ্বায়নৰ সাংস্কৃতিক মাত্রা পৰীক্ষা কৰি বর্তমান অধ্যয়নৰ লক্ষ্য হৈছে উত্তৰ-পূৰ ভাৰতৰ লোক-সংস্কৃতিৰ ওপৰত বিশ্বায়নৰ প্রভাৱ।

ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৱ অঞ্চলত অসম, অৰুণাচল প্রদেশ, মেঘালয়, মিজোৰাম, নাগালেণ্ড, মণিপুৰ, ছিকিম আৰু ত্রিপুৰা আদি আঠখন ৰাজ্যক সামৰি লোৱা লোককথা ইতিহাস ৰচনাৰ বাবে এক গুৰুত্বপূর্ণ উৎস। বিভিন্ন ধৰণৰ জনজাতীয় জনগোষ্ঠীৰ বাসস্থান আদি আপাটানি, আংগামী, আও, ৰেংমা, নিছি, গাৰো, খাছি, চিনটেং, মিজো, কুকি, বডো, ডিমাছা, মিছিং, ৰিয়াং, নেপালী, ত্রিপুৰীকে ধৰি প্রতিটো জনগোষ্ঠী আৰু জাতিৰ সাংস্কৃতিক ঐতিহ্যৰ এক গুৰুত্বপূর্ণ অংশ হিচাপে লোককথা ইইতিহাসতো ভূমিকা লাভ কৰে। এটা গোটৰ লোককথাই ইয়াৰ জাতিগত আৰু সামাজিক পৰিচয়ৰ অনুভূতিক শক্তিশালী কৰে। জাতিগত সংস্কৃতি উত্থানৰ ক্ষেত্রত ইতিহাসে সহায় কৰে। ই এক জীৱন্ত আৰু বিকশিত পৰম্পৰা। এই বুজাবুজিৰ বাবেই লোককথাক ইতিহাসৰ বাবে এক উল্লেখযোগ্য উৎস হিচাপে গণ্য কৰা হয়। এনে তাৎপর্য অর্জনৰ বাবে লোককথাৰ প্রকাশ ভংগীৰ বৌদ্ধিক সম্পত্তি সুৰক্ষাৰ প্রয়োজনীয়তা প্রয়োজনীয় হৈ পৰে, যিটো আধুনিক তথ্য প্রযুক্তিৰ দ্বাৰা উদ্ভাৱন কৰাটো প্রয়োজনীয়। জন্ম, বিবাহ আৰু মৃত্যুৰ সৈতে জড়িত প্রথাৰ লগতে জীৱনৰ কম পৰিঘটনা যেনে ৰোগ আৰু ঘাঁৰ চিকিৎসা, কৃষি, ব্যৱসায়, আৰুবৃত্তি, ধর্মীয় জীৱন আদি লোককথা হিচাপে গৃহীত সাধাৰণ বিশ্বাসৰ উদাহৰণ। (ডেকা, ২০১১))

উদ্দেশ্য ঃ

১। উত্তৰ-পূৱ ভাৰতৰ বিভিন্ন ৰাজ্যৰ বিভিন্ন লোক-সংস্কৃতিৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা।

২। উত্তৰ-পূৱ ভাৰতৰ লোক-সংস্কৃতিৰ ওপৰত বিশ্বায়নৰ প্রভাৱ বুজি পোৱা।

সাধাৰণ মানুহৰ অভিজ্ঞতা, অভ্যাস, বিশ্বাস আদিৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি স্থানীয় জনগোষ্ঠীসমূহে সৃষ্টি কৰা এক প্রকাৰৰ সংস্কৃতি হৈছে লোক-সংস্কৃতি। গ্রাম্য বাসিন্দাৰ এটা সৰু, সমজাতীয় গোটে প্রায়ে ইয়াক অনুসৰণ কৰে। লোকসংগীত, গীত, গল্পকোৱা, লোকনৃত্য, পৰম্পৰাগত সাজ-পোছাক, গহনা, খাদ্য, আৰু অন্যান্য সামগ্রী আদি সকলো লোকসংস্কৃতিৰ উপাদান যিবোৰ প্রজন্মৰ পৰা প্রজন্মলৈ চলি থাকে।

উত্তৰ-পূৱ ভাৰতৰ বিভিন্ন লোকসংস্কৃতি ঃ

উত্তৰ - পূৱৰ সকলো ৰাজ্যৰ প্ররেশ দ্বাৰ হ'ল অসম। অসমৰ বাসিন্দাসকল মংগোলয়ড, ভাৰত-বার্মিজ, ভাৰত-ইৰাণী, আৰু আর্য জনগোষ্ঠীৰ মিশ্রণ। অসমীয়া সংস্কৃতি হৈছে এই সকলো জাতিৰ এক চহকী আৰু জটিল সংমিশ্রণ। অসমীয়া অসমৰ ৰাজ্যিক ভাষা, আৰু ইয়াৰ থলুৱা লোকসকলক 'অসমীয়া' নামেৰে জনা যায়। ৰাজ্যখনত অসংখ্য জনজাতি আছে, প্রত্যেকৰে নিজ স্বৰীতি-নীতি, সংস্কৃতি, সাজ-পোছাক আৰু বিদেশী জীৱন-ধাৰণৰ পদ্ধতি আছে। অসমত বডো, কছাৰী, কার্বি, মিৰি, মিছিমি, ৰাভা, আদি কেইবাটাও জনগোষ্ঠীৰ সহাৰস্থান; বেছিভাগ জনগোষ্ঠীৰ নিজস্ব ভাষা আছে, আনহাতে অসমীয়া ৰাজ্যৰ প্রাথমিক ভাষা। (https.//culturalaffairs.assam.gov.in)। অসমত বৈচিত্রময় জনজাতিৰ বাসস্থান আৰু বহু-সাংস্কৃতিক জনগোষ্ঠীয় সমাজৰ গলনাংক বুলি সঘনাই উল্লেখ কৰা হয়। মৌখিক সাহিত্য যিকোনো সম্প্রদায়ৰ বিষয়ে তথ্যৰ এক গুৰুত্বপূর্ণ উৎস। ই কেৱল সমাজৰ বিষয়ে আমাৰ বুজাবুজিত সহায় কৰাই নহয়, যিকোনো সময়বা স্থানৰ ইতিহাস পুন গঠনৰ বাবেও ই এক মূল্যৱান সম্পদ। লোক সংস্কৃতি বস্তুগত সংস্কৃতিৰ ৰূপত প্রকাশ পায়। বস্তুগত

সংস্কৃতিয়ে মানুহৰ ঘৰ, ঘৰুৱা সামগ্ৰী, বিভিন্ন ধৰণৰ যন্ত্ৰপাতি, যন্ত্ৰপাতি, অস্ত্ৰ-শস্ত্ৰ, বন্ধন সামগ্ৰী আৰু পৰিবহণৰ পদ্ধতিকে ধৰি সকলো বস্তুগত সম্পত্তিকে সামৰি লয়। বস্তুগত সংস্কৃতিৰ পাঁচটা বহল শ্ৰেণী আছে। লোকশিল্প, লোকস্থাপত্য, লোকসাজ-পোছাক, আৰু লোক বন্ধন প্ৰণালী আদি। লোক সাহিত্য আৰু বস্তুগত সংস্কৃতিয়ে লোকৰীতি-নীতিৰ প্ৰতিফলন ঘটায়। ই মৌখিক আৰু লিখিত সাহিত্যৰ মাজত যোগসূত্ৰ হিচাপে কাম কৰে। লোক ৰীতি-নীতিৰ ভিতৰত কৃষি, জন্ম, বিবাহ, মৃত্যু আদিৰ লগত জড়িত পৰম্পৰা আৰু ৰীতি-নীতি আদি অন্তৰ্ভুক্ত। লোক ৰীতি-নীতিক চাৰিটা ভাগত বিভক্ত কৰা হৈছে। লোক-উৎসৱ, লোক-খেল, লোক-চিকিৎসা, আৰু লোকধৰ্ম। আন অসমীয়া ৰীতি-নীতিৰ দৰে অসমীয়া পৰম্পৰাগত চিকিৎসা পদ্ধতিও যথেষ্ট চহকী। এসময়ত লোক চিকিৎসাক বিভিন্ন ৰোগৰ নিৰাময় বুলি ভবা হৈছিল। অসমৰ জংঘলত ঔষধি উদ্ভিদ সাধাৰণতে ৰোগ নিৰাময়ৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। (https.//kkhsou.ac.in /eslm) ৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত।

অৰুণাচল প্ৰদেশৰ লোক-সংস্কৃতি ঃ

ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ সীমান্তৱৰ্তী ৰাজ্যখনৰ নাম অৰুণাচল। ইয়াৰ বাহিৰৰ সীমাৰেখা চাৰিখন জাতি: উত্তৰত তিব্বত আৰু চীন, পূবত ম্যানমাৰ আৰু পশ্চিমে ভূটান। ভাৰতৰ বাকী অংশলৈ ইয়াৰ একমাত্ৰ প্ৰৱেশ পথ হৈছে অসম আৰু নাগালেণ্ড। ৰাজ্যখনৰ সুবিধাজনক অৱস্থানৰ বাবেই জাতিটোৰ মাজত সদায় ৰাজনৈতিক আৰু জনসাধাৰণৰ নিৰীক্ষণৰ আওতালৈ আহিছে। অৰুণাচলত প্ৰায় ২০ টা সম্প্ৰদায় আৰু ইয়াৰ ৪৩ টা উপগোট পোৱা যাব পাৰে। ভাৰতীয় নৃতত্ত্ব জৰীপৰ সমীক্ষাতসকলো জনজাতিকে পাঁচটা সাংস্কৃতিক মণ্ডলত বিভক্ত কৰা হৈছে যদিও জনজাতিসমূহক বহুলাংশে তিনিটা গোটত ভাগ কৰিব পাৰি। বৌদ্ধ জনগোষ্ঠীসমূহে প্ৰথম গোটটো গঠন কৰে। আকৌ এবাৰ ইয়াক মহাযান আৰু হিনায়ন বৌদ্ধ ধৰ্ম পালন কৰা জনগোষ্ঠীত বিভক্ত কৰিব পাৰি। অৰুণাচল প্ৰদেশৰ পূব অংশৰ খাম্পতী আৰু চিংফৌসকলে বৌদ্ধধৰ্মৰ হিনায়ন পন্থা পালন কৰাৰ বিপৰীতে অৰুণাচল প্ৰদেশৰ পশ্চিম অৰ্ধৰ মনপা, শ্বেৰডুকপেন, মেম্বা, খাম্বাসকলে মহায়ান পন্থা পালন কৰে। দ্বিতীয়টো শ্ৰেণী, য'ত আদিছ, আকাশ, আপাতানি, বুংনি, নিছিছ, মিছিমি, আৰু মিজি আদিক অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে। ইয়াকো ঈশ্বৰত্বৰ ওপৰত তেওঁলোকৰ ভিন্ন দৃষ্টি ভংগীৰ ভিত্তিত দুটা ভাগত বিভক্ত কৰিব পাৰি। ডনি-পোলো আৰু আৱো-তানি 'সূৰ্য আৰু চন্দ্ৰদেৱতা' আদি তেওঁলোকৰ উপাস্য দেৱতা। আপাতানি আৰু নিছিসকলে তেওঁলোকৰ পূৰ্বপুৰুষ হিচাপে শ্ৰদ্ধা কৰে, আনহাতে নানি ইন্টায়াক মিছিমিসকলে তেওঁলোকৰ আদিম দেৱী হিচাপে শ্ৰদ্ধা কৰে। টিৰা পজি লাৱনক্টেছ আৰু ৰানচোছে তৃতীয়টো গোট গঠন কৰে। (চিপা, ২০১৭)। অৰুণাচলত অনেক উৎসৱ পালন কৰা হয়। প্ৰতিটো জনগোষ্ঠীৰ এটা অনন্য উৎসৱ আছে যিয়ে তেওঁলোকৰ সাজ-পোছাক, ডিজাইন, নৃত্য, বাদ্যযন্ত্ৰ আদিকে ধৰি তেওঁলোকৰ শিল্পৰ স্বকীয়তা প্ৰদৰ্শনৰ বাবে এক সৃষ্টিশীল মঞ্চ হিচাপে কাম কৰে। সাধাৰণতে এই উৎসৱৰ লগত কৃষিক্ষেত্ৰত ৰোপণ আৰু চপোৱাৰ কিবা এটা সম্পৰ্ক থাকে। কাৰ্যালয়ত এতিয়া শাৰীৰিক আৰু পেছাগত দুয়োটা দিশতে মহিলাৰ প্ৰাদুৰ্ভাৱ যথেষ্ট বেছি। নৃত্যত বিশেষ অনুষ্ঠান বা নিয়মীয়া কাম-কাজ, যেনেধৰ্মীয়নৃত্য, চিকাৰ বা যুদ্ধ নৃত্য ইত্যাদি চিত্ৰিত কৰা হয়। পৰম্পৰাগত নাট্য প্ৰযোজনাত পুতলা বা পেণ্টোমাইম মাজে মাজে ব্যৱহাৰ কৰা হয়, য'ত প্ৰায়ে অভিনয়, গায়ন, নৃত্য, কথাকোৱা, আখ্যান বা আবৃত্তিকৰা হয়। পৰম্পৰাগত থিয়েটাৰসমূহ জনসাধাৰণৰ বাবে কেৱল 'পাৰফৰমেন্স'তকৈও অধিক; সংস্কৃতি আৰু সমাজত ইহঁতে গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে। চিপা, ২০১৭।

মণিপুৰ ঃ

উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ এখন ভগ্নী ৰাজ্য মণিপুৰৰ পূবে ম্যানমাৰ, উত্তৰ, দক্ষিণ আৰু পশ্চিমে ক্ৰমে নাগালেণ্ড, মিজোৰাম আৰু অসমৰ সীমা। পাহাৰ আৰু উপত্যকা ৰাজ্যখনৰ দুটা প্ৰধান ভৌগোলিক বিভাজন। ৰাজ্যখনৰ সমগ্ৰ ভূমিৰ নব্বৈ শতাংশ মণিপুৰ পাহাৰে সামৰি লৈছে। কেন্দ্ৰত অণ্ডাকাৰ আকৃতিৰ ইম্ফল উপত্যকা। গড় সমুদ্ৰ পৃষ্ঠৰ পৰা ৭৯০ মিটাৰ, ৫৯০ ফুট উচ্চতাত ইয়াৰ চাৰিওফালে নীলাপৰ্বতমালা আৰু ইয়াৰ আয়তন প্ৰায় ২০০০ বৰ্গকিলোমিটাৰ। মণিপুৰৰ তিনিটা বৃহৎ জনগোষ্ঠী হ'ল মেইটেই, নগা আৰু কুকি। চাণ্ডেল, চুৰাচান্দপুৰ, কামজং, কাংপকপি, ননে, ফেৰজাউল, সেনাপতি, টামেংলং, টেংগনৌপাল, আৰু উখৰুল পাহাৰ জিলাত নগা আৰু কুকি জনজাতিৰ গৰিষ্ঠ সংখ্যকৰ লগতে ইয়াৰ কেইবাটাও উপ-জনজাতিৰ প্ৰতিটোতে বাস কৰে। ইম্ফল পূৰ, ইম্ফল পশ্চিম, বিষ্ণুপুৰ, জিৰিবাম, থৌবাল আৰু ককচিং উপত্যকাৰ জিলাত বেছিভাগেই মেইটেই জনগোষ্ঠীৰ লোকে বসতি স্থাপন কৰি আহিছে। ঝুম খেতি কৰাৰ বাবে নগা আৰু কুকিসকলে ঐতিহাসিক আৰু অৰ্থনৈতিক কাৰণত পাহাৰত বসতি স্থাপন কৰিছিল, আনহাতে মেইটেইসকল সাধাৰণতে মণিপুৰৰ সমভূমিতে আৱদ্ধ হৈ আছিল। (থাইমেই, ২০২১)।

মেঘালয় ঃ

ভাৰতৰউত্তৰ পূব অঞ্চলত অৱস্থিত মেঘালয় হৈছে চহকী আৰু বৈচিত্ৰময় লোকসংস্কৃতিৰ বাবে জনাজাত এখন ৰাজ্য। মেঘালয়ৰ লোকসংস্কৃতিত ৰাজ্যখনত বসবাস কৰা বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ পৰম্পৰা, বিশ্বাস, ৰীতি-নীতিৰ সুন্দৰ সংমিশ্ৰণ। মেঘালয়ৰ লোক-সংস্কৃতিৰ এটা মূল দিশ তলত উল্লেখ কৰা হ'ল।

১। সংগীত আৰু নৃত্য ঃ সংগীত আৰু নৃত্য মেঘালয়ৰ লোক-সংস্কৃতিৰ এক অবিচ্ছেদ্য অংগ। ৰাজ্যখনত বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ বাসস্থান, প্ৰত্যেকৰে অনন্য নৃত্যৰ ধৰণ, বাদ্যযন্ত্ৰ, ছন্দ। মেঘালয়ৰ কিছুমান জনপ্ৰিয় নৃত্যৰ ভিতৰত নংক্ৰেম নৃত্য, শ্বাদচু কমিনছিম নৃত্য, ৰাংগালা নৃত্য আদি উল্লেখযোগ্য। এই নৃত্যবোৰ প্ৰায়ে ধৰ্মীয় উৎসৱ আৰু অন্যান্য সামাজিক সমাৱেশৰ সময়ত পৰিবেশন কৰা হয় (The Cultural Heritage of Meghalaya, p. 42-44)।

২। হস্তশিল্প ঃ মেঘালয় হস্তশিল্পৰ চহকী পৰম্পৰাৰ বাবেও পৰিচিত। ৰাজ্যখনৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীয়ে বোৱা, টোপোলা নিৰ্মাণ, মৃৎশিল্প, কাঠখোদিত আদি বিভিন্ন হস্তশিল্পত পাকৈত। মেঘালয়ৰ কিছুমান জনপ্ৰিয় হস্তশিল্পৰ ভিতৰত খাচী বেত আৰু বাঁহৰ হস্তশিল্প, যিবোৰ জটিল ডিজাইন আৰু স্থায়িত্বৰ বাবে জনাজাত। (উৎস : মেঘালয়ৰ হস্তশিল্প, পৃষ্ঠাৰ-৫)।

৩। পৰম্পৰাগত সাজ-পোছাক ঃ মেঘালয়ৰ জনজাতিসকলৰ পৰম্পৰাগত সাজ-পোছাক ৰাজ্যখনৰ লোক-সংস্কৃতিৰ আন এক উল্লেখযোগ্য দিশ। ৰাজ্যখনৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ অনন্য সাজ-পোছাক শৈলী আছে, যিবোৰ প্ৰায়ে ৰঙীন আৰু স্পন্দনশীল। উদাহৰণস্বৰূপে খাচী জনগোষ্ঠীটো জিম্ফং নামৰ দীঘল হাতৰ পোছাকৰ বাবে পৰিচিত আৰু তাৰ লগত পাগুৰি সদৃশ মূৰৰ পোছাক পিন্ধা হয় যাৰ নাম ধৰা। আনহাতে গাৰো জনগোষ্ঠীটে ডাকমাণ্ডা নামৰ হাতৰ আঁচলবিহীন সাজ-পোছাকৰ বাবে জনাজাত যিটো ৰীছা নামৰ চাদৰৰ সৈতে পিন্ধে (Traditional Attire of Meghalaya, p. 12-17)

মিজোৰাম ঃ

মিজোৰাম ভাৰতৰ উত্তৰ-পূব অঞ্চলৰ এখন ৰাজ্য, যিখন ৰাজ্যৰ সজীৱ আৰু বৈচিত্ৰময় লোকসংস্কৃতিৰ বাবে পৰিচিত। ৰাজ্যখনত বিভিন্ন খিলঞ্জীয়া জনজাতি, প্ৰত্যেকৰে নিজ স্বৰীতি-নীতি, বিশ্বাস, পৰম্পৰা আছে। মিজোৰামৰ লোকসংস্কৃতিৰ কিছুমান মূল দিশ, তলত আলোচনা কৰা হ'ল।

১। সংগীত আৰু নৃত্য ঃ মিজোৰামৰ লোক-সংস্কৃতিৰ এক অবিচ্ছেদ্য অংগ সংগীত আৰু নৃত্য। চেৰাউ, খুয়াল্লাম, চাইলাম, ছেইহলাম আদি সজীৱ লোকসংগীত আৰু নৃত্যৰ বাবে ৰাজ্যখন পৰিচিত। এই নৃত্যবোৰ প্ৰায়ে উৎসৱ আৰু অন্যান্য সামাজিক সমাৱেশৰ সময়ত পৰিবেশন কৰা হয় আৰু ইয়াৰ লগত পৰম্পৰাগত বাদ্যযন্ত্ৰ যেনে ঢোল, গং, বাঁহী আদিও পৰিবেশনকৰাহয় (Folk Dances of Mizoram, p. 12-18)।

২। লোককথা আৰু কিংবদন্তি ঃ মিজোৰামৰ মৌখিক পৰম্পৰা লোককথা আৰু কিংবদন্তিৰে সমৃদ্ধ যিয়ে ৰাজ্যখনৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ বিশ্বাস, ৰীতি-নীতি, মূল্যবোধৰ বিষয়ে অন্তৰ্দৃষ্টি প্ৰদান কৰে। এই কাহিনীবোৰত প্ৰায়ে অলৌকিক উপাদান আৰু নায়ক দেখা যায় যিয়ে প্ৰতিকূলতাক জয় কৰি নিজৰ লক্ষ্যত উপনীত হয়।

মিজোৰামৰ কিছুমান জনপ্রিয় লোককথাৰ ভিতৰত খিয়াঙৰ কাহিনী আৰু মোহিত গাঁও জাউল বুকৰ কাহিনী। (Folktales of Mizoram, p. 3-9)।

৩। হস্তশিল্প ঃ মিজোৰাম হস্তশিল্পৰ চহকী পৰম্পৰাৰ বাবেও পৰিচিত। ৰাজ্যখনৰ বিভিন্ন জনজাতি বিভিন্ন হস্তশিল্প যেনে বাঁহ-বেতবোৰা, মৃৎশিল্প, এমব্রয়ডাৰী আদিত পাকৈত। বিশেষকৈ ৰাজ্যখনৰ বাঁহ আৰু বেতৰ হস্তশিল্পৰ জটিল ডিজাইন আৰু স্থায়িত্বৰ বাবে অতিশয় চার্য হৈছে। (Handcrafts of Mizoram, p. 1-5)।

৪। পৰম্পৰাগত সাজ-পোছাক ঃ ৰাজ্যখনৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ সাজ-পোছাকৰ অনন্য শৈলী আছে, যিবোৰ প্রায়ে ৰঙীন আৰু স্পন্দনশীল। উদাহৰণস্বৰূপে মিজো জনগোষ্ঠীটো পুয়ানৰ বাবে পৰিচিত, যিটো ব্লাউজ আৰু চাদৰৰ সৈতে পিন্ধাৰে পাৰআউট স্কার্ট। আনহাতে হমাৰ জনগোষ্ঠীটোৱে বোৱা কপাহী কাপোৰৰ পৰা তৈয়াৰী বকিৰিয়া নামৰ সাজ-পোছাকৰ বাবে জনাজাত (Traditional Attire of Mizoram, p. 12-17)।

নাগালেণ্ড ঃ

উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ এখন চহকী আৰু বৈচিত্রময় লোক-সংস্কৃতিৰ বাসস্থান নাগালেণ্ড। ৰাজ্যখনত বিভিন্ন খিলঞ্জীয়া জনজাতি, প্রত্যেকৰে নিজস্ব ৰীতি-নীতি, বিশ্বাস, পৰম্পৰা আছে। নাগালেণ্ডৰ লোকসংস্কৃতিৰ কিছুমান মূল দিশ তলত উল্লেখ কৰা হ'ল।

১। সংগীত আৰু নৃত্য ঃ সংগীত আৰু নৃত্য নাগালেণ্ডৰ লোকসংস্কৃতিৰ এক অবিচ্ছেদ্য অংগ। ৰাজ্যখন জেলিয়াং, চুমি, আও আদি সজীৱ লোকসংগীত আৰু নৃত্যৰ বাবে পৰিচিত। এই নৃত্যবোৰ প্রায়ে উৎসৱ আৰু অন্যান্য সামাজিক সমাৱেশৰ সময়ত পৰিবেশন কৰা হয় আৰু ইয়াৰ লগত পৰম্পৰাগত বাদ্যযন্ত্র যেনে ঢোল, বাঁহৰ বাঁহী, গং আদিও পৰিবেশন কৰা হয়। (Folk Dances of Nagaland, p. 12-18)।

২। হস্তশিল্প: ৰাজ্যৰ বিভিন্ন জনজাতি বিভিন্ন হস্তশিল্প যেনে বোৱা, কাঠখোদিত, মৃৎশিল্প আদিত পাকৈত। বিশেষকৈ ৰাজ্যখনৰ বাঁহ আৰু বেতৰ হস্তশিল্পৰ জটিল ডিজাইন আৰু স্থায়িত্বৰ বাবে অতিশয় উল্লেখনীয়। (Handicrafts of Nagaland, p. 1-5)।

৩। খাদ্য আৰু ৰান্ধনীশাল ঃ ৰাজ্যখনৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ ৰান্ধনীশালৰ অনন্য পৰম্পৰা আছে, যিবোৰ প্রায়ে স্থানীয়ভাৱে উপলব্ধ সামগ্রীৰ ওপৰত ভিত্তিকৰি গঢ়লৈ উঠে। নাগালেণ্ডৰ কিছুমান জনপ্রিয় খাদ্যৰ ভিতৰত সিজোৱা শাক-পাচলি আৰু মাংসৰ পৰা তৈয়াৰী খাদ্য আকিবিয়ে আৰু শুকান ৰঙালাও পাতৰ পৰা তৈয়াৰী খাদ্য অনিছি। (Cuisine of Nagaland, p. 20-25)।

ছিকিম ঃ

উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ এখন সৰু ৰাজ্য ছিকিম চহকী আৰু বৈচিত্রময় লোকসংস্কৃতিৰ বাবে পৰিচিত। ৰাজ্যখনত বিভিন্ন খিলঞ্জীয়া জনজাতি, প্রত্যেকৰে নিজস্ব ৰীতি-নীতি, বিশ্বাস, পৰম্পৰা আছে। ছিকিমৰ লোকসংস্কৃতিৰ কিছুমান মূল দিশ আছিল।

১। সংগীত আৰু নৃত্য ঃ সংগীত আৰু নৃত্য ছিকিমৰ লোকসংস্কৃতিৰ এক অবিচ্ছেদ্য অংগ। মৰুণী, ঘাতোচা, সিংহীছাম আদি সজীৱ লোকসংগীত আৰু নৃত্যৰ বাবে ৰাজ্যখন পৰিচিত। এই নৃত্যবোৰ প্রায়ে উৎসৱ আৰু অন্যান্য সামাজিক সমাৱেশৰ সময়ত পৰিবেশন কৰা হয় আৰু ইয়াৰ লগত পৰম্পৰাগত বাদ্যযন্ত্র যেনে ঢোল, জংঘল, বাঁহী আদিও পৰিবেশন কৰা হয়। চিকিম : এট্রেভেলাৰছগাইড, পৃষ্ঠা ১২৩-১৩০।

২। হস্তশিল্প ঃ ৰাজ্যৰ বিভিন্ন জনজাতি বিভিন্ন হস্তশিল্প যেনে বোৱা, কাঠ খোদিত, মৃৎশিল্প আদিত পাকৈত। বিশেষকৈ ৰাজ্যখনৰ থাংকা চিত্রসমূহৰ জটিল ডিজাইন আৰু আধ্যাত্মিকতাৎ পর্যাৰ বাবে অতিশয় বিচৰা হৈছে। (Handicrafts of Sikkim, p. 1-5)।

৩। পৰম্পৰাগত সাজ-পোছাক ঃ ছিকিমৰ জনজাতিসকলৰ পৰম্পৰাগত সাজ-পোছাক ৰাজ্যখনৰ লোকসংস্কৃতিৰ আন এক উল্লেখযোগ্য দিশ। উদাহৰণস্বৰূপে ভুটীয়া জনগোষ্ঠীটো খোৰ বাবে জনাজাত, যিটো দীঘলীয়া চোলা, যিটো গামোচা আৰু কঁকালৰ বেণ্ডৰ সৈতে পিন্ধা হয়। আনহাতে লেপচা জনগোষ্ঠীটোৱে হাতেৰে বোৱা কপাহী কাপোৰৰ পৰা তৈয়াৰী ডুমৰম নামৰ পোছাকৰ বাবে পৰিচিত। (Traditional Attire of Sikkim, p. 12-17)।

ত্রিপুৰা ঃ

উত্তৰ-পূব ভাৰতত অৱস্থিত এখন সৰু ৰাজ্য ত্রিপুৰাৰ এক চহকী আৰু বৈচিত্রময় লোকসংস্কৃতি আছে যিয়ে ৰাজ্যখনৰ দীঘলীয়া আৰু জটিল ইতিহাসক প্রতিফলিত কৰে। ৰাজ্যখনত বিভিন্ন খিলঞ্জীয়া জনজাতি, প্রত্যেকৰে

নিজস্ব ৰীতি-নীতি, বিশ্বাস, পৰম্পৰা আছে। ত্রিপুৰাৰ লোকসংস্কৃতিৰ মূল দিশসমূহ হ'ল।

১। হস্তশিল্প ঃ ত্রিপুৰা হস্তশিল্পৰ চহকী পৰম্পৰাৰ বাবেও পৰিচিত। ৰাজ্যৰ বিভিন্ন জনজাতি বিভিন্ন হস্তশিল্প যেনে বোৱা, বাঁহআৰুবেতৰশিল্প, কাঠখোদিত আদিত পাকৈত। বিশেষকৈ ৰাজ্যখনৰ বেত আৰু বাঁহৰ সামগ্রীসমূহৰ জটিল ডিজাইন আৰু স্থায়িত্বৰ বাবে অতিশয় বিচৰা হৈছে।

২। পৰম্পৰাগত সাজ-পোছাক ঃ ত্রিপুৰাৰ জনজাতিসকলৰ পৰম্পৰাগত সাজ-পোছাক ৰাজ্যখনৰ লোকসংস্কৃতিৰ আন এক উল্লেখযোগ্য দিশ। ৰাজ্যখনৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ অনন্য সাজ-পোছাক শৈলী আছে, যিবোৰ প্রায়ে ৰঙীন আৰু স্পন্দনশীল। উদাহৰণস্বৰূপে ত্রিপুৰী মহিলাসকলে ৰিগনাই নামৰ দীঘল স্কার্ট পিন্ধে যিটো ব্লাউজ আৰু চাদৰৰ সৈতে পিন্ধে। আনহাতে পুৰুষসকলে কঁকাল আৰু ভৰিত মেৰিয়াই থোৱা ৰিকুটু নামৰ কাপোৰ পিন্ধে। চক্রৱর্তী, ২০১৭।

৩। খাদ্য আৰু ৰান্ধনী শাল ঃ ত্রিপুৰাৰ খাদ্য আৰু ৰান্ধনীশালত ৰাজ্যখনৰ ৰৈচিত্র্যপূর্ণ জনজাতীয় জনসংখ্যাৰ প্রভাৱ পৰিছে। ৰাজ্যখনৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ নিজস্ব ৰান্ধনী পৰম্পৰা আছে, যিবোৰ প্রায়ে স্থানীয়ভাৱে উপলব্ধ সামগ্রীৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি গঢ় লৈ উঠে। ত্রিপুৰাৰ কিছুমান জনপ্রিয় খাদ্যৰ ভিতৰত বাঁহৰ ডালৰ পৰা তৈয়াৰী খাদ্য চাকৰি আৰু সিজোৱা চাউলৰ পিঠা আৰু গুড়ি কৰা শাক-পাচলিৰে তৈয়াৰী খাদ্য। মুয়াআৰন্দ্রু বিষ্ট, ২০১০।

উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ লোকসংস্কৃতিৰ ওপৰত বিশ্বায়নৰ প্রভাৱ ঃ

বিশ্বায়ন অর্থাৎ গোলকীকৰণে উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ সংস্কৃতি আৰু সমাজত যথেষ্ট পৰিৱর্তন আনিছে। সাতখন ৰাজ্যৰে গঠিত এই অঞ্চলটোৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ অনন্য ৰীতি-নীতি, বিশ্বাস, পৰম্পৰাক প্রতিফলিত কৰা এক চহকী আৰু ৰৈচিত্রময় লোকসংস্কৃতি আছে। কিন্তু বিশ্বায়নৰ দ্রুতগতিৰ ফলত অঞ্চলটোৰ লোকসংস্কৃতিৰ সংৰক্ষণ আৰু প্রসাৰৰ ক্ষেত্রত ইতিবাচক আৰু নেতিবাচক দুয়োটা প্রভাৱ পৰিছে। গোলকীকৰণৰ ফলত অৰুণাচল প্রদেশত পশ্চিমীয়া সংস্কৃতিৰ প্রভাৱ বৃদ্ধি হোৱাটো পৰিলক্ষিত হৈছে। যাৰ প্রভাৱ ৰাজ্যখনৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰপৰম্পৰাগত বিশ্বাস আৰু আচাৰ-ব্যৱহাৰত পৰিছে। ৰাজ্যখনৰ পৰম্পৰাগত সাজ-পোছাক আৰু হস্তশিল্প কিন্তু পর্যটকৰ মাজত জনপ্রিয় হৈয়েই আছে। হেগডে, ২০১৯। লগতে অৰুণাচল প্রদেশৰ পৰম্পৰাগত কৃষি পদ্ধতিৰ পৰিৱর্তন, কৃষকসকলে পৰম্পৰাগত জীৱিকাৰ শস্যৰ সলনি চাহ আৰু ৰবৰৰ দৰে খেতি কৰাৰ প্রতি অধিক আগ্রহী হৈ পৰিছে। ইয়াৰ ফলত ৰাজ্যখনৰ লোকসংস্কৃতিত মিশ্রিতপ্রভাৱপৰিছে, কিছুমান কৃষকে পৰম্পৰাগত পদ্ধতি পৰিত্যাগ কৰিছে আৰু আন কিছুমানে পৰম্পৰাগত পদ্ধতিৰ সমান্তৰালভাৱে নতুন কৃষি কৌশলো অন্তর্ভুক্ত কৰিছে। খানআৰুআহমেদ, ২০১৮। ৰৰা আৰু ৰৰুৱাই ২০১৯ বিচাৰি উলিয়াইছে যে অসমত বিশ্বায়নৰ ফলত সস্তা আমদানিৰ আগমন ঘটিছে, যাৰ ফলত ৰাজ্যৰ পৰম্পৰাগত উদ্যোগসমূহৰ ওপৰত নেতিবাচক প্রভাৱ পৰিছে। অৱশ্যে পর্যটনৰ জৰিয়তে পৰম্পৰাগত শিল্পকর্মৰ প্রচাৰে এই উদ্যোগসমূহ সংৰক্ষণ কৰাত সহায় কৰা বুলিও অধ্যয়নটোত উল্লেখ কৰা হৈছে। অসমত সাংস্কৃতিক প্রকাশৰ এক নতুন ৰূপ, যেনে, পৰম্পৰাগত অসমীয়া সংগীতক পশ্চিমীয়া ধাৰাসমূহৰ সৈতে মিহলি কৰা সংযোজন সংগীত, বিশ্বায়নৰফল। কলিতা আৰু শইকীয়া, ২০১৯। মইৰাংথেম, ২০১৯। লক্ষ্য কৰিছে যে বিশ্বায়নৰ ফলত সাংস্কৃতিক প্রকাশৰ নতুন ৰূপ, যেনে আধুনিক নৃত্য আৰু সংগীতৰ উত্থান ঘটিছে আৰু পৰম্পৰাগত কলা আৰু শিল্পকর্ম, যেনে মৃৎশিল্প, বয়ন, আৰু বাঁহৰ কাম, যিবোৰ হৈছে... মণিপুৰত সস্তা, গণ উৎপাদিত আমদানিৰ সৈতে প্রতিযোগিতাত অৱতীর্ণ হ'বলৈ সংগ্রাম কৰি আছে। নংব্রিয়ে ২০১৮। মেঘালয়ৰ খাচী সংগীত উদ্যোগত বিশ্বায়নৰ প্রভাৱৰ বিষয়ে অন্বেষণ কৰিছিল। তেওঁৰ অধ্যয়ন অনুসৰি বিশ্বায়নৰ ফলত ৰক আৰু পপৰ দৰে নতুন সংগীতৰ উত্থান ঘটিছে, যিয়ে পৰম্পৰাগত খাচী সংগীতক স্থানচ্যুত কৰি তুলিছে। অৱশ্যে এই অধ্যয়নত এইটোও উল্লেখ কৰা হৈছে যে খাচী সংগীত ৰাজ্যখনৰ সাংস্কৃতিক পৰিচয়ৰ এক গুৰুত্বপূর্ণ অংশ হৈয়েই আছে আৰু পর্যটনৰ পদক্ষেপৰ জৰিয়তে সক্রিয়ভাৱে প্রচাৰ কৰা হৈছে। গোলকীকৰণৰ ফলত নাগালেণ্ডৰ খিলঞ্জীয়া জনগোষ্ঠীৰ মাজত পৰম্পৰাগত কৃষি পদ্ধতি হেৰুৱাই পশ্চিমীয়া সাজ-পোছাকৰ শৈলী গ্রহণ কৰা হৈছে। কিন্তু পৰম্পৰাগত হস্তশিল্প আৰু সংগীতৰ সক্রিয় প্রচাৰ আৰু উদযাপন অব্যাহত আছে। (Kikon and Pochury, 2019)। উল্লেখ কৰা অনুসৰি বিশ্বায়নৰ ফলত পশ্চিমীয়া সাজ-পোছাক গ্রহণ কৰা হৈছে, যিটো ছিকিমৰ নৱপ্রজন্মৰ মাজত জনপ্রিয় হৈপৰিছে। আকৌ খাদ্যৰ অভ্যাসৰ পৰিৱর্তন ঘটিছে, নৱপ্রজন্মই পৰম্পৰাগত ছিকিম খাদ্যতকৈ

ফাষ্টফুডপছন্দ কৰিছে ‘ডর্জী, ২০১৯’। সিং আৰু ঝা ‘২০২১ ’ ৎমতে বিশ্বায়নৰ ফলত মিজোৰামৰ খিলঞ্জীয়া জনগোষ্ঠীৰ মাজত কৃষি আৰু চিকাৰৰ দৰে পৰম্পৰাগত পদ্ধতিৰ অৱনতি ঘটিছে। কিন্তু বাঁহৰ কাম, বস্ত্র বোৱা আদি পৰম্পৰাগত হস্তশিল্প ৰাজ্যখনৰ সাংস্কৃতিক ঐতিহ্যৰ এক গুৰুত্বপূর্ণ অংগ হৈয়েই আছে।

উপসংহাৰ ঃ

সামৰণিত ক’ব পাৰি যে বিশ্বায়নে উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ লোকজীৱনত যথেষ্ট প্রভাৱ পেলাইছে। পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি, বিশ্বাস আৰু আচাৰ-ব্যৱহাৰ পাশ্চাত্য সংস্কৃতিৰ দ্বাৰা প্রভাৱিত হোৱাৰ ফলত সাজ-পোছাক, খাদ্যাভ্যাস, লোকসংগীত, লোকনৃত্য, লোকউৎসৱ, আচাৰ-ব্যৱহাৰ আদিৰ পৰিৱর্তন ঘটিছে। নৱপ্রজন্মই পাশ্চাত্য সংস্কৃতি গ্রহণৰ প্রতি অধিক আগ্রহ প্রকাশ কৰিছে আৰু ইয়াৰ ফলত পৰম্পৰাগত জীৱন শৈলীৰ পৰা আঁতৰি আহিছে। কিন্তু মন কৰিবলগীয়া যে বিশ্বায়নেও নতুন সুযোগ কঢ়িয়াই আনিছে, যেনে পৰম্পৰাগত হস্তশিল্পৰ প্রসাৰ আৰু সাংস্কৃতিক ঐতিহ্য সংৰক্ষণ। সাংস্কৃতিক পৰিচয় সংৰক্ষণ আৰু নতুন পদ্ধতি আৰুপ্রযুক্তি গ্রহণৰ মাজত ভাৰসাম্য ৰক্ষা কৰাটো নীতি নির্ধাৰক আৰু অংশীদাৰসকলৰ বাবে অতি গুৰুত্বপূর্ণ। সাংস্কৃতিক পর্যটনৰ প্রসাৰ, সাংস্কৃতিক কেন্দ্র স্থাপন, উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ চহকী সাংস্কৃতিক ঐতিহ্যক প্রচাৰৰ বাবে সজাগতা অভিযান সৃষ্টিৰ জৰিয়তে এই কাম সম্ভৱ হ’ব পাৰে। সামগ্রিকভাৱে বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়নটোৱে প্রকাশ কৰিছে যে বিশ্বায়নে লোকজীৱনত ইতিবাচক আৰু নেতিবাচক দুয়োটা প্রভাৱ পেলায় আৰু বিশ্বায়নৰ সুবিধাসমূহ আকোৱালি লোৱাৰ সমান্তৰালভাৱে সাংস্কৃতিক পৰিচয় সংৰক্ষণৰ বাবে এক সুষম পন্থা গ্রহণ কৰাটো অতিকৈ প্রয়োজনীয়। ❑

REFERENCES :

Bisht, Rajnikant C. Cuisine of Tripura. Pentagon Press, 2010. ISBN : 9788175363555.

Bisht, Rajnikant C. Handicrafts of Sikkim. Gyan Publishing House, 2011. ISBN : 9788175362251.

Bora, Rupjyoti, and Baruah, Sanjib. "Globalization and handloom industry in Assam : A critical analysis." International Journal of Research and Analytical Reviews, vol. 6, no. 4, 2019, pp. 59-67.

Chakraborty, Malay Kanti. Traditional Attire of Tripura. Spectrum Publications, 2017. ISBN : 9789384092085.

Chatterjee, Anindita. Folktales of Meghalaya. Sundeep Prakashan, 2019. ISBN : 9789389144318.

Chhipa, Nausheen. Culture & Architecture of North !ßast India - A Study of Arunachal Pradesh.

Choudhury, Kamal Narayan. Handicrafts of Meghalaya. Mittal Publications, 2012. ISBN : 9788176462834.

Deka, Meeta. "Folklore and Northeast Indian History." Sociology Mind, vol. 1, no. 4, 2011, pp. 17-20.

Dorjee, Karma. "Impact of Globalization on Sikkim's Culture." International Journal of Scientific Research and Review, vol. 8, no. 2, 2019, pp. 682-687.

Garg, Subhashini. Traditional Attire of Sikkim. Wisdom Tree Publishers, 2012. ISBN : 9788189738829.

Hegde, Shridhar S. "Impact of globalization on tribal culture in Arunachal Pradesh." International Journal of Innovative Technology and !ßxploring !ßngineering, vol. 8, no. 11, 2019, pp. 2682-2685.

Humtsoe, Moanungsang. Traditional Attire of Nagaland. Gyan Publishing House, 2011. ISBN : 9788176256914.

Kalita, Papori, and Bimal Kanti Saikia. "Globalization and fusion music in Assam." International Journal of Current Research and Review, vol. 11, no. 12, 2019, pp. 11-16.

Kazi, Md. Mahabubur Rahman. "Globalization and folk culture of North-!ßast India : An analytical review." International Journal of Health Sciences, vol. 6, no. S1, 2022, pp. 6744-6751.

Kezo, Vikhuleno. Folk Dances of Nagaland. Concept Publishing Company, 2007. ISBN : 9788175258717.

Khan, Syed Azharuddin, and Javed Ahmed. "Impact of globalization on agriculture in Arunachal Pradesh." Indian Journal of Applied Research, vol. 8, no. 12, 2018, pp. 49-51.

Kikon, David T., and Vitsolie Pochury. "Globalization and the Nagas : A study of the impact of globalization on Naga society and culture."

Lalchhanhima, Joseph K. Traditional Attire of Mizoram. Gyan Publishing House, 2011. ISBN : 9788176256914.

Lallianpuii, and Lalruatfeli, Chhangte. Folktales of Mizoram. Mittal Publications, 2015. ISBN : 9788189233184.
Lalthankima, R. Folk Dances of Mizoram. Concept Publishing Company, 2007. ISBN : 9788175258717.
Lepcha, Dawa Tshering. Folktales of Sikkim. Indus Publishing Company, 2010. ISBN : 9788178061294.
Moirangthem, Khelchandra. "Globalization and traditional arts and crafts of Manipur." International Journal of Innovative Technology and !ßxploring !ßngineering, vol. 8, no. 11, 2019, pp. 329-332.
Nongbri, Tennyson. "Globalization and the Khasi music industry in Meghalaya." International Journal of Scientific and Research Publications, vol. 8, no. 4, 2018, pp. 205-208.
Ramaswamy, Kollengode Ramanathan. Traditional Attire of Meghalaya. Gyan Publishing House, 2011. ISBN : 9788176256914.
Sekhose, Andrew. Cuisine of Nagaland. Gyan Publishing House, 2011. ISBN : 9788176464715.
Singh, Jitendra, and Deepak Jha. "Globalization and traditional practices of agriculture and hunting : Astudy of Mizoram." Journal of Cultural Research in Art !ßducation, vol. 38, no. 1, 2021, pp. 36-47.
Singh, Nand Kishore. Cuisine of Meghalaya. Gyan Publishing House, 2011. ISBN : 9788176464715.
Singh, Sanjay Kumar. Cuisine of Mizoram. Gyan Publishing House, 2011. ISBN : 9788176464715.
Syiemlieh, David R. and Behera, M.C. The Cultural Heritage of Meghalaya. Gyan Publishing House, 2011. ISBN : 9788176468645
Thakker, Nishi. Handicrafts of Nagaland. Gyan Publishing House, 2011. ISBN : 9788176256549.
Thapa, Rabin Gurung. Sikkim : A Traveller's Guide. Niyogi Books, 2018. ISBN : 9788192886303.
Tomar, Tej Kumar. Cuisine of Sikkim. A P H Publishing Corporation, 2010. ISBN : 9788170419376.
Tzudir, Lima. Folktales of Nagaland. Mittal Publications, 2015. ISBN : 9788189233184.
Tzudir, Lalsangkima. Folktales of Nagaland. Mittal Publications, 2015. ISBN : 9788189233184.
Vanlalruata, Rintluanga. Handicrafts of Mizoram. Gyan Publishing House, 2011. ISBN : 9788176256549.
Tripura Tourism, Folk Culture. Retrieved from https://tripura.gov.in/tourism/FolkCulture.htm
Handicrafts of Tripura. Retrieved from https://www.indianmirror.com/arts-and-crafts/tripura-handicrafts.html
https://mzu.edu.in/
http://gmj.manipal.edu/
https://trci.tripura.gov.in/
https://kkhsou.ac.in /eslm
https://culturalaffairs.assam.gov.in/

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

"য়েছে দৰজে ঠংচিৰ উপন্যাস 'লিঙঝিক'ত অৰুণাচল প্রদেশৰ চেৰদুকপেন লোকসমাজৰ লোকাচাৰ আৰু লোক-সাংস্কৃতিক সমল

ড° পূণ্য লতা গোঁহাঞি

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
ড° বিৰিঞ্চি কুমাৰ বৰুৱা মহাবিদ্যালয়,
পুৰণিগুদাম, নগাঁও, অসম-৭৮২১৪১
ম'বাইল ঃ ৮৬৩৮৫৩৪০৫০
ই-মেইল ঃ punyagohain11@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

অসমীয়া ভাষাত সাহিত্য চর্চা কৰা এগৰাকী জনগোষ্ঠীয় লেখক হ'ল য়েছে দৰজে ঠংচি। ঠংচিদেৱৰ জন্ম হৈছিল ১৯৫২ চনত অৰুণাচল প্রদেশৰ পশ্চিম কামে জিলাৰ জগং (জী) নামে গাঁৱত। জন্মগতভাৱে তেওঁ চেৰদুকপেন ফৈদৰ লোক। অৰুণাচল প্রদেশৰ অন্যান্য জনগোষ্ঠীসমূহৰদৰে চেৰদুকপেন জনগোষ্ঠীয়ো হ'ল স্বকীয় ধর্ম -ভাষা-সংস্কৃতিৰে জীয়াই থকা জাতি। সেই চেৰদুকপেন জনগোষ্ঠীৰে এজন লেখক হিচাপে ঠংচিদেৱৰ বিভিন্ন লেখনিত চেৰদুকপেন জনগোষ্ঠীৰ জীৱন-ধাৰণ প্রণালী, অর্থনৈতিক, ৰাজনৈতিক, সামাজিক, লোক-সাংস্কৃতিক দিশবোৰ নিখুঁটৰূপত প্রতিফলিত হৈছে। তেওঁৰ ৰচিত বিভিন্ন উপন্যাস, গল্প, কবিতা, আত্মজীৱনী আদিত অৰুণাচল প্রদেশৰ নানা সাংস্কৃতি-ভাষিক সমলে স্থান দখল কৰিছে। তেনে এক স্বকীয় বৈশিষ্ট্যৰে জীৱন-ধাৰণ কৰি থকা অৰুণাচল প্রদেশৰ এটি শক্তিশালী জনগোষ্ঠী চেৰদুকপেনক লৈ ৰচনা কৰা এখন উপন্যাস হ'ল 'লিঙঝিক'। দেখা গৈছে যে, উপন্যাসখনৰ নামকৰণতে জনগোষ্ঠীয় ভাষিক, সাংস্কৃতিক আৰু সামাজিক বৈশিষ্ট্য নিৰ্হিত হৈ আছে। তদুপৰি উপন্যাসখনৰ মূল বিষয় ৰাক্ষস বিবাহকেন্দ্রিক প্রচলিত প্রথা । বিবাহৰ লগত জড়িত বিভিন্ন ৰীতি-নীতি, পৰম্পৰা আৰু বিবাহক কেন্দ্র কৰি গঢ় লোৱা সমস্যা গা-ধন প্রথা, ইয়াৰ পৰিণতি আদি অনেক লোকাচাৰে উপন্যাসখনি সমৃদ্ধ হৈ আছে। সেয়েহে এনেবোৰ সাংস্কৃতিক বিশেষত্বলৈ লক্ষ্য কৰি 'লিঙঝিক' উপন্যাসখনিক অধ্যয়নৰ বাবে নির্বাচন কৰা হৈছে। বিষয়টি অধ্যয়নৰ বাবে 'লিঙঝিক' উপন্যাসখনিক মুখ্য সমলৰূপে গ্রহণ কৰা হৈছে লগতে গৌণ সমলৰূপে আন গ্রন্থবোৰ সহায় লোৱা হৈছে। এনে আলোচনাই অসমৰ সীমান্তৰর্তী ৰাজ্য অৰুণাচল প্রদেশৰ জনগোষ্ঠীসমূহৰ জীৱন অন্বেষণ কৰি অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ ভঁৰাল চহকী কৰাৰ পথ প্রশস্ত কৰিব বুলি আশাবাদী।

বীজ শব্দ ঃ

চেৰদুকপেন, সামাজিক লোকাচাৰ, সাংস্কৃতি লোকাচাৰ, লোক-বিশ্বাস, দ্বন্দ্ব।

আৰম্ভণি ঃ

অৰুণাচলী লেখক হৈয়ো অসমীয়া ভাষাত নিজ ৰাজ্যৰ পটভূমিত সাহিত্য চর্চা কৰি এফালে স্বজাতি আৰু স্ব-ৰাজ্যৰ সামাজিক-সাংস্কৃতি পৰম্পৰাক বিশ্ব দৰবাৰলৈ লৈ যোৱাৰ প্রয়াস আনফালে অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য চহকী কৰাত অৱদান আগবঢ়োৱা ঠংচিদেৰ একাধাৰে গল্পকাৰ, কবি, ঔপন্যাসিক। স্কুলীয়া দিনৰে পৰা সাহিত্য চর্চা কৰা ঠংচিয়ে 'জোনবাই' নামৰ কবিতা লিখি সাহিত্যিক জীৱনৰ আৰম্ভণি কৰে। প্রথমে কবিতা, নাটক ৰচনাৰ মাজতে সৃষ্টি সীমাবদ্ধ ৰাখিছিল যদিও পিছৰ পর্যায়ত গল্প,উপন্যাস ৰচনাৰ মাজেৰে স্বকীয় শৈলী বর্তাই ৰাখে। তেওঁ বিভিন্ন আলোচনী যেনে— প্রান্তিক, গৰীয়সী, সংগম, মনোৰঞ্জন আদিত গল্প লিখিছিল।

য়েছে দৰজে ঠংচিৰ চমু পৰিচয় ঃ

ঠংচিয়ে শিক্ষা জীৱনৰ পাতনি মেলে জী গাঁৱৰ প্রাথমিক বিদ্যালয়ত পিছত ক্রমে বোমডিলা চৰকাৰী উচ্চতৰ মাধ্যমিক বিদ্যালয়ত শিক্ষা গ্রহণ কৰি কটন মহাবিদ্যালয়ৰপৰা অসমীয়াত অনার্চসহ স্নাতক ডিগ্রী লাভ কৰে। তাৰ পিছত গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ পৰা অসমীয়া ভাষাত স্নাতকোত্তৰ ডিগ্রী অর্জন কৰে আৰু ১৯৭৭ চনত অৰুণাচল প্রদেশৰ অসামৰিক সেৱাত যোগদান কৰে আৰু ১৯৯২ চনত ভাৰতীয় প্রশাসনিক সেৱালৈ পদোন্নতি লাভ কৰে। ১৯৯৩ চনৰ পৰা টাৱাং, নামনি সোৱণশিৰি, চাংলাং, লোহিত আৰু পূৰ কামেং জিলাৰ উপায়ুক্ত হিচাপে সেৱা আগবঢ়াই অৰুণাচল প্রদেশ চৰকাৰৰ পর্যটন আৰু সাংস্কৃতিক পৰিক্রমা নগৰ উন্নয়ন, গৃহ নির্মাণ আৰু পৰিকল্পনা আদি বিভাগৰ সচিব পদত কার্যনির্বাহ কৰিছিল। তেওঁৰ ৰচিত সাহিত্য কর্মসমূহ হ'ল ক্রমে— কামেং সীমান্তৰ সাধু গ্রন্থ, চনম আৰু লিঙৱিক, মই পুনৰ জনম লম, মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয় (২০০১), বিষ কন্যাৰ দেশত, শৰ কটা মানুহ (২০০৪), মিছিং (২০১৪) উপন্যাস; পাপৰ পুখুৰী, বাঁহৰ ফুলৰ গোন্ধ, ধাৰ আৰু অন্যান্য গল্প (২০২১), অন্য এখন প্রতিযোগীতা গল্প সংকলন; ধুনীয়া মানুহৰ ধুনীয়া দেশত (২০২১), হাঁহি আৰু চকুলোৰ শৈশৰ, এক আত্মজীৱনী আদি আত্মজীৱনীমূলক ৰচনা।তেওঁ আচার্য শান্তিদেৱৰ বৌধিচর্যাৱতাৰ (বৌদ্ধকাব্য) অসমীয়ালৈ অনুবাদ কৰে। তদুপৰি প্রৱাসত মুক্ত জীৱন পুণ্যাত্মা দালাই লামাৰ দ্বিতীয় আত্মজীৱনী অসমীয়ালৈ অনুবাদ কৰিছে। জেনেৰেল জে জে সিংৰ সৈনিকৰ প্রিয় সেনাপতি এক আত্মজীৱনীখন অসমীয়ালৈ অনুবাদ কৰি তেওঁ অসমীয়া অনুবাদ সাহিত্যৰ জগতখনো চহকী কৰিছে। বর্তমানলৈকে তেওঁ সাহিত্য অকাডেমি বঁটা (২০০৫), ভাষা ভাৰতী সাহিত্য পুৰস্কাৰ, অসম সাহিত্য সভাৰ বিষ্ণু ৰাভা বঁটা, অসম উপত্যকা সাহিত্য বঁটা (২০১৭), ভূপেন হাজৰিকা ৰাষ্ট্রীয় বঁটা (২০১৭), ভাৰত চৰকাৰে সাহিত্য আৰু শিক্ষা ক্ষেত্রত তেওঁৰ অৱদানৰ বাবে পদ্মশ্রী ২০২০ চনত প্রদান কৰে।

চেৰদুকপেন জনগোষ্ঠীৰ চমু পৰিচয় ঃ

চেৰদুকপেন জনগোষ্ঠী হৈছে অৰুণাচল প্রদেশৰ এটি সৰু জনগোষ্ঠী। তেওঁলোক ভাল খেতিয়ক আৰু বেপাৰ-বাণিজ্যত বিশেষভাৱে পার্গত। ধর্মীয়ভাৱে তেওঁলোক অদৃশ্য শক্তিৰ উপাসক যদিও মহামায়া বৌদ্ধ ধর্ম (Mahayana Buddhism) আৰু জনগোষ্ঠীয় Magical religious ত বিশ্বাস কৰে। তেওঁলোক পশ্চিম কামেং জিলাৰ ৰূপা, চেৰগাঁও আৰু জি-গাঁও অঞ্চলত বসবাস কৰে। তেওঁলোকৰ জনসংখ্যা তিনি হাজাৰমান হ'ব। কিন্তু তেওঁলোকে জন্মলগ্নৰে পৰা অৰুণাচলৰ প্রশাসনিক দিশৰ সৈতে জড়িত। এওঁলোক ৰাজবংশৰ লোক বুলি জনা যায়। জনশ্রুতি অনুসৰি এওঁলোকৰ গাত আহোম ৰাজবংশৰ তেজ আছে। তেওঁলোকৰ মাজত প্রচলিত প্রবাদ অনুসৰি লাছাৰ ৰজা বে স্রংট্ছেন গোম্পোৱে এগৰাকী আহোম কুঁৱৰী বিয়া কৰিছিল। কুঁৱৰীৰ তৃতীয় পুত্রৰপৰা শ্বেৰডুকপেনৰ ৰজাসকল হয় বুলি এতিয়াও বুঢ়া-মেথাসকলে কৈ আহিছে। এওঁলোক ভোট-মোঙ্গোল গোষ্ঠীৰ অন্তর্গত। সেইফালৰ পৰা তেওঁলোকৰ ভাষাও ভোটবর্মী শাখাৰ ভাষা। অৱশ্যে তেওঁলোকৰ মাজত অসমীয়াকে ধৰি বহুকেইটা উপভাষাৰ প্রচলন আছে।[১] এওঁলোক মৃদু আৰু সম্ভ্রান্ত। চেৰদুকপেনসকল দেখাত শুৱনি, উজ্জ্বল, স্বাস্থ্যৱান আৰু ওখ-পাখ, স্বভাৱত শান্ত, ধীৰ-স্থিৰ, আকর্ষণীয় আৰু বিশ্বাসযোগ্য।[২] এওঁলোকে টাৱাঙৰ লামাসকলকে গুৰু বুলি মানে। সামাজিকভাৱে ৰজাই প্রধান। ৰজাৰ পদ

বংশানুক্রমে চলে। এওঁলোকে খোৱা-লোৱাত বহুতো বাধা-নিষেধ মানি চলে। বৌদ্ধসকলে বনৰীয়া জন্তুৰ মঙহ খালেও গৰু, গাহৰি, ছাগলী বা কুকুৰাৰ মঙহ নাখাইছিল। অৱশ্যে বৰ্তমান এনে নিয়ম সলনি হৈছে। যি কি নহওঁক চেৰদুকপেনসকল সৰল জাতি। সমাজত শ্ৰেণীবিভাজন মানি চলে। এওঁলোকৰ দুটা শ্ৰেণী হ'ল থং আৰু চাও। বিশ্বাস অনুসৰি থংসকল লাছাৰ ৰজাৰ জাপাং বুৰা নামৰ তৃতীয় পুত্ৰৰপৰা উদ্ভুত আৰু চাওসকল ভাৰী বা বহতীয়া মানুহ। এই দুই শ্ৰেণীৰ মাজত বিয়া-বাৰু নচলে।[৩] উচ্চ বংশোদ্ভৱ জাতি চেৰদুকপেনসকলৰ মাজত সামাজিক পূজা-পাৰ্বনৰ কাম কৰিবলৈ 'জিজি' নামৰ একশ্ৰেণী পুৰোহিত আছে। তেওঁলোকে অলৌকিক শক্তিৰ পৰা ৰক্ষা পৰিবৰ বাবে জিজিৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰে।[৪] চেৰদুকপেনসকলৰ মাজত লেভিৰেট, পলুৰাই নিয়া, বলেৰে ধৰি নিয়া আৰু সামাজিক প্ৰথাৰে পতা প্ৰায় চাৰিপ্ৰকাৰৰ বিবাহৰ প্ৰচলন আছে। তেওঁলোকৰ মাজত স্বামী সম্বন্ধীয় প্ৰথাৰে নিজ বংশৰ ভিতৰত আৰু আন-বংশৰ মানুহৰ লগত বিবাহ পতাৰ দস্তুৰ আছে। মাকৰ ককাই-ভাইৰ পুতেকৰ সৈতে বা পেহীয়েকৰ জীয়েকৰ বিবাহ সমৰ্থন কৰে।[৫] দেখা গৈছে যে চেৰদুকপেনসকল সামাজিক, সাংস্কৃতিক আৰু অৰ্থনৈতিকভাৱে স্বতন্ত্ৰ জাতি। সেই জাতিৰে এজন দক্ষ প্ৰশাসনিক বিষয়া য়েছে দৰজে ঠংচিয়ে তেওঁলোকৰ জনগোষ্ঠীৰ পটভূমিত ৰচনা কৰা এখনি উল্লেখযোগ্য জনগোষ্ঠীয় উপন্যাস হ'ল 'লিঙঝিক'।

উপন্যাসখনিৰ নামকৰণ ঃ

'চেৰদুকপেন' নামকৰণৰ উচ্চাৰণগত দিশত পাৰ্থক্য দেখা গৈছে যে, ড° মহেশ্বৰ নেওগদেৰে শ্বেৰডুকপেন, চন্দ্ৰ ৰৰপাত্ৰ গোহাঁয়ে চেৰদুকপান, চাও লোকেশ্বৰ গগৈদেৰে 'চেৰডুকপেন' শব্দ ব্যৱহাৰ কৰিছে। আনফালে য়েছে দৰজে ঠংচিদেৰে উপন্যাসখনিত 'চেৰদুকপেন' শব্দ ব্যৱহাৰ কৰিছে। চেৰদুকপেনসকলৰ ভাষাত 'লিঙঝিক' এচটা শিলৰ খুঁটা। তেওঁলোকে মাটিৰ সীমা নিৰ্ধাৰণৰ বাবে এই শিল পুতি ৰাখে। আনফালে কেতিয়াবা গাঁৱৰ সীমা নিৰ্ধাৰণ কৰাত, কেতিয়াবা দুখন গাঁৱৰ মাজত বা দুটা ফৈদৰ মাজত হোৱা চুক্তি বা সিদ্ধান্ত মতে ভৌগোলিক সীমাৰেখাৰ চিনস্বৰূপেও 'লিঙঝিক' পুতি দিয়া হয়। দেখা যায় যে, তেওঁলোকে লিঙঝিক বা শিৰ খুঁটা পুতি এটা ডাঙৰ সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ কৰে। সেই সিদ্ধান্তৰ চিহ্ন হিচাপে লিঙঝিকে সাক্ষী বহন কৰে। যাতে ভৱিষ্যতৰ বংশধৰসকলক সি সেই সিদ্ধান্তৰ কথা সোঁৱৰাই ৰাখে। সেই সিদ্ধান্ত কোনোবাই উলংঘন কৰিলে উক্ত শিলছটাই অমঙ্গল সাধন কৰে বুলি চেৰদুকপেনসকলে বিশ্বাস কৰে। 'লিঙঝিক' উপন্যাসখনিতো বিবাহৰ পৰিণতিত দুখন গাঁৱৰ মাজত লিঙঝিকে এটা সিদ্ধান্তৰ সাক্ষ্য বহন কৰিছে। ইয়াৰ পৰাই অনুমান কৰিব পাৰি যে, লিঙঝিক নামটোৱেই চেৰদুকপেনসকলৰ মাজত প্ৰচলিত পৰম্পৰা, ৰীতি-নীতি, লোক-বিশ্বাস, শুভা-শুভ, খাদ্য, জীৱন ধাৰণ, বংশ পৰম্পৰা আদি বিবিধ দিশৰ সাক্ষ্য বহন কৰি আছে। সেয়েহে ক'ব পাৰি উপন্যাসখনিৰ নামকৰণতে তাৎপর্য জড়িত হৈ আছে।

উপন্যাসখনিৰ পটভূমি ঃ

অৰুণাচল প্ৰদেশৰ য়োকমুগাঁৱ আৰু ছোলোগাঁৱত বাস কৰা চেৰদুকপেনসকলৰ দুটা ফৈদ ৰাংজা বংশ আৰু ঠংঙো বংশৰ মাজত হোৱা বৈবাহিক পৰম্পৰাৰ ভিত্তিতে উপন্যাসখনৰ পটভূমি ৰচিত হৈছে। আনফালে সেই পৰম্পৰা উলংঘন কৰা পৰিণতিয়েই উপন্যাসখনিৰ কাহিনীৰ পৰিণতি। ছোলো গাঁৱৰ পেনজেহঁতে য়োকমু গাঁৱৰ বায়েক লাম দৈমাৰ ছোৱালী ঞিমা দৈমাক বলেৰে ধৰি নিয়া বিবাহৰ ফলত যি ভয়ংকৰ পৰিণতি সূত্ৰপাত হৈছে তাৰ অন্তৰালত পৰস্পৰৰ মাজত থকা দীৰ্ঘদিনীয়া সম্প্ৰীতি, ভাই-ভনীৰ সম্পৰ্কত কেৰুণ লাগিছে। এই আঘাত কেৱল দুটা পৰিয়ালৰ মাজতে আৱদ্ধ নাথাকি দুখন গাঁও, দুটা ফৈদলৈ বিয়পি পৰি সামাজিক-সাংস্কৃতিক জীৱনলৈ জটিলতা নমাই আনিছে। ইয়াতেই ক্ষান্ত নাথাকি বুজাবুজিৰ অভাৱত এটাই আনটো পৰিয়ালৰ প্ৰতি আক্ৰমণাত্মক হৈ পৰিছে। ফলস্বৰূপে তেওঁলোকৰ মাজত থকা সম্প্ৰীতি নোহোৱা হৈ সমাজ জীৱনলৈ ভয়ংকৰ পৰিৱেশ নামি আহিছে।

উপন্যাসখনিৰ কাহিনী ঃ

উপন্যাসখনিৰ কাহিনী আৰম্ভ হৈছে নগৰৰ প্ৰশাসনীয় ডাঙৰ ডাঙৰ চৰকাৰী চাকৰিয়ালসকলৰ মাজত অফিচ ছুটিৰ পিছত বহা আড্ডাত ভাগ ল'বলৈ যোৱা প্ৰেম টাছিৰ নিজৰ ভনীয়েকৰ কিছুদিনৰ আগতে হৈ যোৱা বিয়াৰ প্ৰসঙ্গ উত্থাপনৰ জৰিয়তে। কাৰণ ভনীয়েক ঞিমাক মোমায়েকৰ ঘৰৰ মানুহে ধৰি লৈ গৈ বোৱাৰী কৰা বিষয়টিত প্ৰেম টাছি তেওঁলোকৰ বাকী চৰকাৰী চাকৰিয়ালসকলৰ ওচৰত অপমানিত হৈছে। লগতে নিজ

জাতিৰ বিবাহৰ পৰম্পৰা, ৰীচি-নীতিৰ প্ৰতি কৰা তাচ্ছিল্য, অশুভনীয় মন্তব্যৰ বাবে বাকীসকলৰ সৈতে তেওঁৰ কথা তৰ্কাতৰ্কি হৈছে। সেয়ে আড্ডা এৰি ঘৰলৈ খোজ লৈছে। এনেতে বাটত এটা শিলত উজুটি খোৱাত সৰ্ব খং শিলটোৰ ওপৰত প্ৰয়োগ কৰি লাহে লাহে সেই খণ্ড নিজলৈ আৰু ক্ৰমে মোমায়েক-মামীয়েকৰ পৰা গৈ বাপেক-মাকৰ গালৈ বিয়পি পৰিছে। শেষত তেওঁ সংকল্পবদ্ধ হৈছে যে, তেওঁ এঁমা আৰু দৰজি চেৰাঙৰ বিয়াখন ভাঙি দিব। কাৰণ সেই পুৰণিকলীয়া ৰীতিৰ বিয়াই প্ৰেম টাছিহঁতৰদৰে শিক্ষিত যুৱকলকলক কৰ্মক্ষেত্ৰত অপমানিত কৰিছে। এই সিদ্ধান্তলৈ প্ৰেম টাছিয়ে ঘৰলৈ মাক-বাপেকৰ বাবে চিঠিত লিখি পঠিয়ালে আৰু যথাদিনত মোমায়েক পেনজে আৰু মামীয়েক আজোমৰ সৈতে এঁমা ঘৰলৈ আহোঁতে এঁমাৰ স্বামী দৰজি চেৰাঙক নপুংসক বুলি কৈ এঁমাক ঘৰতে ৰাখি থ'লে। এই কথাত পেনজে আৰু আজোম ক্ষোভিত হ'ল। দৰজি চেৰাঙেও অপমান সহ্য কৰিব নোৱাৰি প্ৰেম টাছিহঁতৰ ওপৰত প্ৰতিশোধ লোৱাৰ মানসেৰে লাম দৈমাৰ জীৱিত অৱস্থাতে পেনজেহঁতে গা-ধন লোৱাৰ ইচ্ছাৰে লাম-দৈমা, কেজাঙ, প্ৰেমাহঁতৰ ঘৰৰ পৰা ইচ্ছা অনুসৰি ঘোৰা-গৰু, আ-অলংকাৰ, বস্ত্ৰ, বাচন-বৰ্তন, মাটি সম্পত্তি আদি লৈ যায়। চেৰদুকপেন সমাজত বোৱাৰীগৰাকীৰ মৃত্যুৰ পিছতহে বাপেকৰ ঘৰখনে গা-ধন লোৱা বা পোৱা নিয়ম আছে। যদি কোনোৱে জীৱীত অৱস্থাতে গা-ধন দিব লগা হ'য়, তেতিয়া চেৰদুকপেন সমাজত অতি লাজ-অপমান বা পৰিতাপৰ কথা বুলি গণ্য কৰে। সেয়ে ভায়েক পেনজে লাম দৈমাৰ জীৱীত কালতে এনেদৰে গা-ধন লোৱাত লাম দৈমা জীৱন্তে মৃত যেন হৈ পৰিল। এই অপমান সহিব নোৱাৰি চিন্তাত দিনক দিনে লাম দৈমাৰ স্বাস্থ্য অৱনতি হ'ল। এদিন গৈ দুয়োখন ঘৰৰ শত্ৰুতাই সমাজ দুখনকে লিঙঝিক পুতি দুফলীয়া হ'বলৈ বাধ্য কৰালে । প্ৰেম টাছিহঁতৰদৰে শিক্ষিতসকলে প্ৰাচীন পৰম্পৰা মানি ল'ব নোখোজাৰ ফলস্বৰূপেই সমাজত বিভেদৰ সৃষ্টি হ'ল। আনফালে প্ৰেম টাছিৰ বাবে মাকহঁতে চাই থোৱা লাংঙা দৈমাৰ বিপৰীতে বোমডিলাৰ টাউনীয়া মনপা জাতিৰ ছোৱালী চেবমক বিয়া পতাৰ মন। কিন্তু এঁমা দৰ্‌জি চেৰাঙৰ বিয়াখন ভাঙি দি প্ৰেম টাছিয়ে যি পাপ কৰিছে; সেই একেই পাপ মাকৰ কথা পেলাই কৰিব বিচৰা নাই, সেয়ে প্ৰেম টাছিয়ে মনৰ বিপৰীতে গৈ মাকহঁতে পছন্দ কৰা লাঙা দৈমাকে বিয়া পাতিছে। আনফালে এঁমা দৈমাও ডাক্তৰ হৈ দৰজি চেৰাঙৰ হাস্পতালত একেলগে কাম কৰি দুয়ো দুয়োৰে কাষ চাপি গৈছে। দেখা গৈছে যে, প্ৰেম টাছিৰ বিয়াৰ পিছতে লাম দৈমাৰ মৃত্যু হৈছে। সেই খবৰ পাই পেনজে ৰৈ থাকিব নোৱাৰি লিঙঝিকৰ সীমা অতিক্ৰম কৰি বায়েকৰ ঘৰত উপস্থিত হৈছেগৈ। বায়েকৰ মৃত্যুৰে তেওঁলোকৰ মাজলৈ পুনৰ মিলাপ্ৰীতি ঘুৰাই আনিছে। শেষত প্ৰেম টাছি আৰু দৰজি চেৰাঙৰ বাবেই গঢ়লৈ উঠা লিঙঝিকটো পুনৰ ভাঙি পেলাই পূৰ্বৰদৰে মিলাপ্ৰীতিৰে থাকিবলৈ ল'লে । আচলতে উপন্যাসখনিক চেৰদুকপেন সমাজখনৰ বিবাহ আৰু গা-ধন প্ৰথাকলৈ সৃষ্টি হোৱা সমস্যা আৰু পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি, সামাজিক বান্ধোনৰ নিৰহ-নিপানি উদাহৰণ বুলিব পাৰি।

লিঙঝিক উপন্যাসখনিত সংঘাট ঃ

এখন উপন্যাসৰ কাহিনী গঠন, উপস্থাপন শৈলী আদিৰ উপৰিও এটা অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ হ'ল সংঘাত। সেই সংঘাত ব্যক্তি পৰ্যায়ত, সামাজিক পৰ্যায়ত বা চৰিত্ৰৰ মনোজগতৰ দ্বন্দ্ব হ'ব পাৰে। ঔপন্যাসিকে কৌশলপূৰ্ণভাৱে সৃষ্টি কৰা সংঘাত অনুসৰি উপন্যাসখনিৰ কাহিনী কথনৰ সফলতা বহুখিনি নিৰ্ভৰ কৰে। লিঙঝিক উপন্যাসখনিত সংঘাত দুই ধৰণে দেখুৱা হৈছে। এফালে বৰ্হি সংঘাত আৰু আনফালে আভ্যন্তৰীন সংঘাত। এফালে ৰাজাং বংশ আৰু আনফালে ঠংঙো বংশৰ মাজত সংঘাতৰ সূত্ৰপাত হৈছে। ঠিক একেদৰে দুয়োটা জনগোটে বসবাস কৰি থকা য়োকমু গাঁও আৰু ছোলো গাঁৱৰ মাজতো এই সংঘাতে ক্ৰিয়া কৰিছে। ইয়াৰ মূল কাৰণ বা উৎস আছিল প্ৰেম টাছিৰ পৰিৱৰ্তনমুখী চিন্তা আৰু ভনীয়েকক উচ্চ শিক্ষিত কৰা মানসিকতা। সেই উদ্দেশ্যৰে তেওঁ দৰজি চেৰাঙক নপুংসক বুলি মোমায়েক-মামীয়েকক পতিয়ন নিয়াই দৰজি চেৰাঙ আৰু এঁমাৰ মাজত বিচ্ছেদ আনিছে। এই বিচ্ছেদৰ জুইয়ে এঁমাৰ অন্তৰত আঘাত কৰিছে। আনফালে প্ৰেম টাছি আৰু দৰজি চেৰাঙৰ মাজত এক চেপা উত্তেজনাপূৰ্ণ দ্বন্দ্বৰ সূত্ৰপাত হৈছে। এগৰাকী নাৰী হিচাপে এঁমাই জানে দৰজি চেৰাঙৰ প্ৰকৃত সত্য। কিন্তু এঁমাৰ পৰা কোনো ধৰণৰ মন্তব্য নলৈ পোনচাটেই সিদ্ধান্ত লোৱা হৈছে। এই ক্ষেত্ৰত এঁমাই কি বিচাৰিছিল সেই দিশত

গুৰুত্ব দিয়া হোৱা নাই। যাৰ বাবে বিচ্ছেদৰ জুইত ঞিমা জ্বলি- পুৰি আছিল। শেষত সেই আত্মানুশোচনা, আত্মদ্বন্দ্বৰ অন্ত পৰিছে। দেখা যায় যে, উপন্যাসখনিত পোনপ্রথম দ্বন্দ্ব বা সংঘাত আৰম্ভ হৈছে প্রেম টাছিহঁতে সদায় বহি দিয়া আড্ডা ক্ষেত্রখনিত। কাৰণ প্রেম টাছিৰ ভনীয়েক ঞিমাৰ বিবাহৰ নিয়মক উচ্চস্তৰৰ অনাচেৰদুকপেনসকলে মানি ল'ব পৰা নাই, সেই লৈ তেওঁলোকে প্রেম টাছিক কিছু উপলুঙা কৰি কোৱা কথা বতৰাই তৰ্কলৈ পৰিণত হৈছে আৰু শেষত প্রেম টাছিয়ে মোমায়েকহঁতৰ, মাক-বাপেকহণতৰ কার্য্যৰ দ্বাৰা তেওঁ সহকর্মীসকলৰ আগত অপমানিত হ'বলৈ পাইছে বুলি ভাবি সেই পুৰণিকলীয়া নিয়ম সলনি কৰাৰ প্রতিশ্রুতিৰ ফলস্বৰূপেই উপন্যাসখনিৰ পিছৰ কাহিনী সমূহৰ সূত্রপাত হৈছে বা সংঘাত, উৎকণ্ঠাৰ মাজেৰে কাহিনী আগবাঢ়ি গৈছে। বিশ্লেষণ কৰিলে দেখা যায় যে, প্রেম টাছি আৰু তেওঁৰ সহকর্মীসকলৰ মাজত চেৰদুকপেন জনগোষ্ঠীৰ পৰম্পৰা আৰু উচ্চ শিক্ষিত সমাজ ব্যৱস্থাৰ দৃষ্টিভঙ্গীৰ মাজত হোৱা সংঘাতেই কাহিনীৰ শেষলৈকে বিয়পি পৰিছে। উপন্যাসখনিৰ শেষত সেই সংঘাতৰ অন্ত পৰিছে আৰু প্রেম টাছিয়ে পৰম্পৰাৰ প্রতি আস্থা প্রদর্শনেৰে স্বকীয় সমাজ-সংস্কৃতিক গ্রহণ কৰি নিজৰ ভুল স্বীকাৰ কৰিছে। উপন্যাসখনিত অতি কৌশলেৰে ঔপন্যাসিকে প্রেম টাছিৰ জৰিয়তে আগবঢ়াই নিছে। কাৰণ সমগ্র ঘটনাৰ সৈতে প্রেম টাছি চৰিত্রটি সাঙুৰ খাই আছে। যাৰ জৰিয়তে ঔপন্যাসিকে চেৰদুকপেন জনগোষ্ঠীৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ পৰম্পৰাগত ঐতিহ্যৰ অস্তিত্বক স্বীকাৰ কৰাইছে বা তেওঁলোকৰ সামাজিক বান্ধোনৰ যি শক্তি; সেই শক্তিৰ জয় ঘোষিত হৈছে। যিমানেই উচ্চ শিক্ষা লাভ নকৰক কিয় এখন সমাজতকৈ ব্যক্তি সত্ত্বাৰ অহং আৰু অনীতি কেতিয়াও সলনি নহয়।

উপন্যাসখনিৰ বিষয়বস্তু ঃ

য়েছে দৰজে ঠংচিৰ লিঙঝিক উপন্যাসখনিৰ কাহিনী হৈছে অৰুণাচল প্রদেশৰ চেৰদুকপেন জনগোষ্ঠীসকলৰ সমাজজীৱন। তেওঁলোকৰ জাতি সত্ত্বা আৰু সামাজিক-সাংস্কৃতিক জীৱনক কেন্দ্র কৰি উপন্যাসখনিৰ বিষয়বস্তু গঢ় লৈছে। বিশেষকৈ চেৰদুকপেনসকলৰ সাংস্কৃতিক ঐতিহ্য বহনকাৰী বিবাহ প্রথা আৰু গা-ধন দিয়া বা লোৱা প্রথাই ইয়াৰ মূল বিষয়বস্তু। চেৰদুকপেনসকলৰ মাজত দুই ধৰণৰ বিবাহ প্রথা প্রচলন আছে। এটা প্রথা অনুসৰি ঘৰত উপযুক্ত ল'ৰা বা ছোৱালী থাকিলে ঘৰৰ লোকে নিজে আগভাগ লৈ বায়েক বা ভনীয়েকহঁতৰ জীয়েক অর্থাৎ ভাগিনীয়েকহঁতক বা আন লোকৰ ঘৰৰ উপযুক্ত বুলি ভবা ছোৱালীকো নিজৰ ল'ৰাৰ বাবে খুজি আনে। আনটো প্রথা মতে পছন্দৰ ছোৱালীজনী দৰাপক্ষৰ পৰা হঠাৎ এদিন মানুহ আহি কন্যাজনীক য'ৰপৰাই হওক উঠাই লৈ যায়। এই বিয়াত ছোৱালী গৰাকীৰ কোনো মত লোৱা নহয়। এই বিয়া গাৰ বলেৰে ধৰি নিয়া বিয়া বুলি কোৱা হয়। এই বিবাহৰ পিছত ছোৱালী গৰাকীয়ে কপালৰ লিখন বা ভাগ্যৰ লিখন বুলি স্বীকাৰ কৰি আজীৱন সংসাৰখন চলাই নিয়াৰ বাদে আন উপায় নাথাকে। এই বিবাহক হিন্দুশাস্ত্র মতে ৰাক্ষস বিবাহ বুলি কোৱা হয়। এই বিবাহক লৈ চেৰদুকপেন জনগোষ্ঠীৰ নৰ-প্রজন্মৰ উচ্চশিক্ষিত সন্তান প্রেম টাছিৰ মনত যি ক্ষোভৰ সৃষ্টি হৈছে, সিয়েই উপন্যাসখনিৰ বিষয়বস্তু সৃষ্টিত সহায় কৰিছে।

সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক দিশ ঃ

চেয়ে দৰজে ঠংচিৰ লিঙঝিক এখন জনগোষ্ঠীয় জীৱনকেন্দ্রিক উপন্যাস বুলি কলেও বঢ়াই কোৱা নহয়। এজন জনগোষ্ঠীয় লেখক হিচাপে অৰুণাচল প্রদেশৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ জীৱন-ধাৰণৰ প্রণালী তেওঁৰ উপন্যাসৰ কেন্দ্রবিন্দু হোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। সেইফালৰপৰা লেখক হিচাপে স্বকীয় সমাজ-সংস্কৃতি তুলি ধৰাত তেওঁ কৃতিত্ব অর্জন কৰিছে। এনে কাৰণতে তেওঁৰ ৰচিত উপন্যাস লিঙঝিকো এখন সফল উপন্যাস বুলিব পাৰি। উপন্যাসখনিৰ পাতে পাতে চেৰদুকপেন জনগোষ্ঠীৰ সমাজ-সংস্কৃতি উজ্জীৱিত হৈ উঠিছে। যেন জীৱন্তৰূপত সেই কাহিনী পাঠকে স্বচক্ষুৰে প্রত্যক্ষ কৰিছে।

বিবাহকেন্দ্রিক লোকাচাৰ ঃ

উপন্যাসখনিৰ প্রথমতেই চেৰদুকপেনসকলৰ বিবাহকেন্দ্রিক বর্ণনাৰ জৰিয়তে সামাজিক-সাংস্কৃতিক পৰম্পৰাৰ পৰিচয় পোৱা গৈছে—আচলতে আমাৰ বিয়াবোৰ ঠিক এনেদৰেই হয়। দৰাপক্ষৰ পৰা হঠাৎ এদিন মানুহ আহি কন্যাজনীক য'ৰ পৰাই হওঁক উঠাই লৈ যায়। টাছিয়ে ক'লে ঃ দৰাঘৰে কন্যাক নি তিনিদিন নিজ ঘৰত ৰাখি ওভতাই পঠাই দিয়ে আৰু পাছত দিন-বাৰ চাই

কন্যাক সদলবলে গৈ লৈ আহে। কিন্তু দৰাঘৰৰ মানুহে কেতিয়াবা প্ৰথমে ধৰি নিওঁতেই কন্যাক একেবাৰে ৰাখি থয়। ... কিন্তু আমাৰ চেৰদুকপেন জনজাতিৰ মাজত এইটোৱেই নিয়ম।[৬] উপন্যাসখনিত বৰ্ণিত কাহিনীৰ বাস্তৱতালৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে, চেৰদুকপেনসকলৰ মাজত ককায়েক-ভনীয়েক বা মোমায়েকৰ পুতেকলৈ বিয়া হোৱা বা দিয়া পৰম্পৰা আছে। এই ক্ষেত্ৰত ছোৱালীজনী কামত পাকৈত হ'লেই যথেষ্ট। তেওঁলোকে ছোৱালী ধৰি নিয়া বিবাহ প্ৰথাত ল'ৰাঘৰৰ বংশ পৰিয়ালক আগতীয়াকৈ জনাই বা খবৰ দিয়ে কিন্তু ছোৱালীৰ মাক-বাপেকক এই বিষয়ে অৱগত নকৰে আৰু তেওঁলোকৰ মতামতো নলয়। তেওঁলোকৰ মতে এনে বিয়াত কোনোৱে মাত মাতিলে, সেয়া সমাজৰ প্ৰচলিত ৰীতিৰ বিৰুদ্ধাচৰণ বুলি ভবা হয়। তদুপৰি ছোৱালীৰ মাকে নিজৰ ভটিজাকলৈ জীয়েকক বিয়া দিব পাৰিলে ভায়েকৰ প্ৰতি সহায় কৰা আৰু সামাজিক ৰীতি-নীতিৰে দায়িত্ব পালন কৰা বুলিহে সন্তুষ্টি লভে। চেৰদুকপেনসকলৰ মাজত গাৰ বলেৰে ছোৱালী ধৰি নি বিয়া পাতিলেও; যদি ছোৱালীঘৰৰ কোনো জ্যেষ্ঠৰ মত নাথাকে; তেতিয়া ছোৱালী গৰাকীক পুনৰ ঘৰলৈ ঘুৰাই আনিব পাৰি । কিন্তু এনে ক্ষেত্ৰত ছোৱালী গৰাকীৰ জীৱনৰ সিদ্ধান্ত দুয়োপক্ষৰ বিচাৰ সভাই লয়। ইয়াত ছোৱালীগৰাকীৰ অন্তৰৰ কোনো কথাত বিশেষ গুৰুত্ব দিয়া নহয়। উপন্যাসখনিত ইয়াৰ উল্লেখ পোৱা গৈছে— ঞিমাই মনে মনে লাওপানী বিলাই গ'ল।...তাইৰ সেই সময়ত অনুভৱ হ'ল তাই যেন এক বিচাৰ সভাত কাঠগড়াৰ ভিতৰত থিয় হৈ আছে। সৰুতে তাই গাঁৱৰ এজনী মাইকী মানুহৰ বিচাৰ-সভা দেখাৰ সৌভাগ্য হৈছিল। তেতিয়া তাই সকলোকে লাওপানী বিলাই আছিল।... চকু দুটা এনেভাৱে নিৰ্জীৱ হৈ আছিল যেন তাই একো দেখা নাই, তাইৰ ধুনীয়া মুখমণ্ডল মৰা মানুহৰ দৰে ভাৱলেশহীন হৈ পৰিছিল।... ঞিমাৰ কথাটো মনৰ পৰিল। তাই নিজকে সেই মানুহজনীৰ লগত ৰিজাই চালে। লগে লগে তাইৰ মন-প্ৰাণ প্ৰচণ্ড এক লাজত জোকাৰ খাই উঠিল। তাইৰ ঘৰখনৰ পৰা ওলাই আন্ধাৰত বিলীন হৈ যোৱাৰ তীব্ৰ ইচ্ছা হ'ল। পাছত মুহূৰ্ততে তাই পুনৰ অনুভৱ কৰিলে, তাইৰ হাত-ভৰিবোৰ এডাল শিকলিৰে বান্ধি থোৱা হৈছে। এতিয়া তাইৰ ইয়াত বহি মনে মনে কথাবোৰ শুনি থকাৰ বাহিৰে আন উপায় নাই।[৭]

কৃষি আৰু চিকাৰ পদ্ধতি ঃ

কৃষি সকলো জাতি-জনগোষ্ঠীৰ প্ৰধান জীৱিকা। স্থান-কাল অনুসৰি ইয়াৰ ধৰণ কৰণ বেলেগ হয়। অৰুণাচলৰ পাহাৰীয়া ঠাইত বসবাস কৰা সকলো লোকেই ঝুমখেতি কৰে। চেৰদুকপেনসকলৰ মাজতো ঝুমখেতিৰ প্ৰচলন থকাৰ কথা উপন্যাসখনিত উল্লেখ কৰিছে— কেজাঙে লগৰ কেইজনমান মানুহৰ সৈতে জুহালত তিনিওকাষে বহি এই বছৰ ঝুমখেতি ক'ত কৰিলে ভাল হ'ব? কোন কোন হাবিত বনৰীয়া গাহৰি, ভালুক, ৰাম ছাগলী আদি ওলাইছে, সেইবোৰ চিকাৰ কৰিবলৈ কেতিয়াকৈ যোৱা হ'ব, ইত্যাদি নানা ধৰণৰ কথা আলোচনা কৰি আছিল।[৮]চেৰদুকপেনসকলৰ মাজত চিকাৰ কৰা প্ৰথাৰ প্ৰচলন আছে। বিশেষকৈ বন্দুকলৈ চিকাৰ কৰা প্ৰথা অতি প্ৰিয় আৰু প্ৰাচীন। যিসকল ল'ৰাই বা পুৰুষে চিকাৰ কৰিব নোৱাৰে তেওঁলোকে আনৰ কটু কথা শুনিব লাগে। তাৰ উদাহৰণ উপন্যাসত আছে— তহঁতৰ দেউতাৰ পাকৈত চিকাৰী নহয়। সেই কাৰণে তহঁতৰ কেতিয়াবা ঘৰত আহিলেও শাকৰ আঞ্জাৰে ভাত খাব লগাত পৰে।[৯] চিকাৰকলৈ দৈনন্দিন জীৱনত কৰা হাঁহি-ধেমালিৰ চিত্ৰ এখনি পৰিস্ফুট হৈছে—দেউতাই বন্দুক এটা কিনাৰ কথা কৈ আছে। বন্দুকটো কিনি আনিলে হাবিৰ পহুৰেই মাৰে নে ঘৰৰ কুকুৰা বা ছাগলীই মাৰে ঠিক নাই, তহঁতৰ দেউতাৰে বন্দুকটো আনিলেই হাবিৰ পহুবোৰ ধেমালি কৰি আগেদি দৌৰি ফুৰিবলৈ চিকাৰী এটা পাব। আনি দেচোন বন্দুক। টাছি সঁচাকৈ মোক বন্দুক এটা কিনি দে, মই যদি পহু মাৰি তহঁতক খুৱাব নোৱাৰো তেন্তে মোৰ নাম কেজাং নাৰাখিবি।[১০] আন এঠাইত চিকাৰ সম্বন্ধীয় বিষয়ৰ উল্লেখ এনেদৰে পাঁও—কোন কোন হাবিত বনৰীয়া গাহৰি, ভালুক, ৰাম ছগলী...সেইবোৰ চিকাৰ কৰিবলৈ কেতিয়াকৈ যোৱা হ'ব।[১১] উপন্যাসখনিৰ আন এঠাইত চিকাৰ কৰিবলৈ যোৱা প্ৰসঙ্গ এনেদৰে উত্থাপিত হৈছে— দেউতাহঁতৰ চিকাৰ কৰিবলৈ গৈছে। আপুনি বহক, মই অলপ লাওপানী উলিয়াও। তেওঁলোকৰ মাজত মাছ চিকাৰ কৰা নিয়মো আছে। মাছ ধৰা প্ৰসঙ্গত উপন্যাসখনিত উল্লেখ কৰিছে— পেমাই হোৱা এখনত চাদৰ এখন আৰু বাংচুং এখনত ভাত ভৰাই যাবলৈ ওলাল। 'চেপা লৈ যোৱা'। কেজাঙে উঠি গৈ দুটা চেপা আনি দিলে।[১২] তেওঁলোকে ভেটা দি মাছ ধৰা পৰম্পৰা আছে । বিশেষকৈ টিকত মাছ ধৰা,

টিক ৰখিবলৈ যোৱা আদি না না বিষয়ে উপন্যাসখনিত স্থান দখল কৰিছে।

লোক-চিকিৎসা পদ্ধতি ঃ

উপন্যাসখনিত চেৰদুকপেন সমাজত প্ৰচলিত লোক চিকিৎসাৰো উল্লেখ আছে। সাধাৰণতে ভৰিত দুখ পালে বা শৰীৰৰ কোনো অংশত আঘাত পালে ঘৰুৱাভাৱে তাৎক্ষণিকভাৱে চিকিৎসা কৰা দেখা যায়। উপন্যাসখনিত ইয়াৰ উল্লেখ পোৱা গৈছে— কিছুপৰ মোনাখনৰ ভিতৰত হাতখন লিৰিকি-বিদাৰি থকাৰ পাছত চুণৰ টেমা আৰু ধপাতৰ চুঙা উলিয়াই আনিলে। এসোপা ধঁপাত মিহি কৰি চুণৰ সৈতে মিহলি কৰি আঙুলি আৰু দুই আঁঠুত লগাই দিলে। তাৰ পাছত শ্বালৰ এটা মূৰ ফালি বুঢ়া আঙুলিটো ভালদৰে বান্ধি দিলে। তেজ বন্ধ হ'ল। আঁঠু দুটাৰ ওপৰত ধঁপাতৰ গুৰি টানকৈ লাগি ৰ'ল।[১৩] তেওঁলোকৰ সমাজত ঘৰত কোনো ব্যক্তিৰ বেমাৰ হ'লে পূজাৰী আনি মঙ্গল চোৱা পৰম্পৰা আছে। পূজাৰীৰ মঙ্গল অনুসৰি পূজা পাতল দিয়া নিয়মো আছে।

যুদ্ধ-বিগ্ৰহৰ উল্লেখ ঃ

উপন্যাসখনিত চেৰদুকপেনসকলৰ যুদ্ধ বিগ্ৰহ কৰা শক্তি, অতীত জয়-পৰাজয়ৰ ঐতিহ্যৰ উল্লেখ পোৱা গৈছে— ঠংঙো বংশৰ সৈতে হোৱা সংঘৰ্ষত তাৰ আজোককাক আৰু লগৰীয়াসকলে আঁকা ৰজাৰ তৰোৱালৰ সন্মুখত এটা এটাকৈ নিজৰ শিৰ বিসৰ্জন দিছিল, তথাপিও কাৰো আগত শিৰণত কৰা নাছিল। থেম্বাং ৰজাৰ লগত হোৱা দীঘলীয়া দহ বছৰৰ যুদ্ধত তাৰ পূৰ্বপুৰুষসকলে সেনাপতিৰ বাব লৈ যুদ্ধ পৰিচালনা কৰিছিল আৰু অসীম সাহস আৰু বিক্ৰমেৰে যুঁজি থেম্বাং ৰাজ্যক ধ্বংসস্তুপত পৰিণত কৰি নিজ ৰাজ্যলৈ কঢ়িয়াই আনিছিল বিজয়ৰ জয়মালা।[১৪]

গা-ধন সম্পৰ্কীয় লোকাচাৰ ঃ

চেৰদুকপেন সমাজৰ এটা অতি ডাঙৰ প্ৰথা হ'ল গা-ধন দিয়া (ছিনাং) প্ৰথা। যাৰবাবে ভাগিনীয়েকহঁতৰ ওপৰত মোমায়েকহঁতৰ পৰিয়ালৰ অধিকাৰ থাকে। সেই অধিকাৰ খৰ্ব হ'লে বনৰীয়া গাহৰিৰ মূৰ, ভালুকৰ মূৰ, টকা-পইচা, আ-অলংকাৰ, বয়বস্তু দিবলগীয়া নিয়ম প্ৰচলন আছিল। লিঙঝিক উপন্যাসখনতো এই ছিনাংৰ বাবে হোৱা সংঘাতৰ (অন্তঃসংঘাত, বৰ্হিসংঘাত) সুন্দৰ নিদৰ্শন বুলিব পাৰি। চেৰদুকপেন সকলৰ মাজত প্ৰচলিত এটা অতি পুৰণি পৰম্পৰা হ'ল গা-ধন লোৱা বা দিয়া। সাধাৰণতে এগৰাকী ছোৱালীক ঘৰখনে তুলিতালি ডাঙৰ-দীঘল কৰাৰ পিছত কাম-বন কৰি আনৰ ঘৰ চহকী কৰেগৈ। সেয়ে বিয়াৰ পাছত ছোৱালী ঘৰক ল'ৰা ঘৰে ছোৱালী গৰাকীৰ মৃত্যু পিছত তেওঁৰ সতি-সন্ততিয়ে মাকৰ হৈ মোমায়েক-মামীয়েকহঁতক গা-ধন দিয়া নিয়ম প্ৰচলন আছে। কিন্তু কেনেবাকৈ এই গা-ধন মৃত্যুৰ আগতেই দিব লগা হ'লে, সেয়া তেওঁলোকৰ বাবে চৰম অপমানৰ কাৰণ হয়। তেনে অঘটন ঘটিলে! সেয়া নাৰী গৰাকীৰ প্ৰতি অন্যায় কৰা হয় আৰু তেওঁক জীৱন্তে মৃত কৰি তোলা হয়। কিন্তু গা-ধন ছোৱালীৰ মাকৰ ঘৰে পাব লাগে। সেয়া ন্যায্য প্ৰাপ্য। লিঙঝিক উপন্যাসখনিতো ঔপন্যাসিক য়েছে দৰজে ঠংচিয়ে চেৰদুকপেন সমাজৰ এনে পৰম্পৰাগত প্ৰথাক সাহসেৰে উপস্থাপন কৰিছে— মোৰ গা-ধন লাগে, সেয়া সিহঁতৰ ন্যায্য প্ৰাপ্য। কিন্তু মোৰ জীৱিত অৱস্থাত মোৰ গা-ধন লৈ যাব সেয়া মই চাব নোৱাৰো।[১৫] গা-ধনৰ বিনিময়ত কোনবোৰ বস্তু দাবী কৰে; সেই সম্পৰ্কে উপন্যাসত আছে- আমি আপোনালোকৰ আগত বাইদেউৰ মূল্যাংকন চিৰাচৰিত ৰীতি মতে আৰু প্ৰীতিৰ চিনস্বৰূপে আমি আপোনালোকৰ পৰা দুটা ঝত, এডৰা কাপোৰ আৰু সৰু সুৰা পাঁচটামান ৰূপৰ অলংকাৰ পাম বুলি আশা কৰিছোঁ।[১৬]

লিঙঝিক সম্পৰ্কীয় লোকাচাৰ ঃ

উপন্যাসখনিত গা-ধন লোৱাৰ পিছতে ঠংঙো গোষ্ঠী আৰু ৰাংজা গোষ্ঠীৰ মাজত সংঘৰ্ষ আৰম্ভ হৈছে। দুয়োটা বংশৰ মাজত শত্ৰুতা হৈছে, শেষত সেই দ্বন্দ্বই গৈ লিঙঝিক পুতিবলৈ বাধ্য কৰাইছে। চেৰদুকপেনসকলে লিঙঝিক অৰ্থাৎ শিলৰ খুঁটা পুতি সমাজৰ কোনো ডাঙৰ সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ কৰে। যাতে ভৱিষ্যতৰ বংশধৰসকলক সেই সিদ্ধান্তৰ কথা সোঁৱৰাই ৰাখে। সেই সিদ্ধান্ত কোনোবাই লংঘন কৰিলে উক্ত শিলছটাই অমংগল সাধন কৰে বুলি তেওঁলোকে বিশ্বাস কৰে। এই লিঙঝিক পুতিবৰ বাবে চেৰকেম দিব লাগে। চেৰকেম এক প্ৰকাৰৰ প্ৰাৰ্থনাসূচক পূজা । এই পূজা পুৰোহিত আৰু লামা (বৌদ্ধ) আদি পূজাৰীয়ে কৰিব পাৰে। এই চেৰকেমত লাওপানী অপৰিহাৰ্য্য আহিলাৰূপে ব্যৱহাৰ হয়। যি ঠাইত লিঙঝিক পুতে, সেই ঠাইতহে চেৰকেম দিয়া নিয়ম আছে। ইয়াৰ বাবে ধূপকাঠি জ্বলাই কোনো অদৃশ্য শক্তিৰ প্ৰতি প্ৰাৰ্থনা জনাই লিঙঝিক পুতা হয়। ঙিৰ লাওপানী গাঁতৰ মুখত

ছটিয়াই পুৰোহিতে মন্ত্ৰ মাতি চেৰকেম দি শিলচটা স্থাপন কৰি আকৌ চেৰকেম দিয়ে। তাৰ পাছত দুয়োখন গাঁৱৰ মানুহে আহি লিঙঝিকটোত ধৰি শপত খায় যে— আমি এই লিঙঝিকটোত ধৰি শপত খাইছো আজিৰপৰা আমাৰ দুই গোষ্ঠীৰ মাজত কোনো সম্বন্ধ নাৰাখো আৰু ভৱিষ্যতলৈ যদি এই দুই গোষ্ঠীৰ কোনো ব্যক্তিয়ে ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম ঘটায় তেন্তে লিঙঝিকটোৱে অপকাৰ সাধন কৰিব। এনেবোৰ লোক বিশ্বাস লিঙঝিকৰ সৈতে জড়িত হৈ আছে। লোক বিশ্বাস যে লিঙঝিক পুতাৰ সময়ত কান্দিব নাপায়। কান্দিলে জীৱন চুটি হয়।[১৭]

লোক-বিশ্বাস আৰু লোক ৰীতি-নীতি ঃ

লোক-বিশ্বাস এটা জাতিৰ আত্মা স্বৰূপ। বিশেষকৈ উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ সকলো জনগোষ্ঠীৰ মাজতেই লোক বিশ্বাসকেন্দ্ৰিক লোক ৰীতি-নীতিৰ প্ৰচলন দেখা গৈছে। তেওঁলোকৰ মাজত কোনো অদৃশ্য শক্তিৰ প্ৰতি থকা বিশ্বাসৰ ভেটিতেই অনেক লোক-বিশ্বাস প্ৰচলন থকা দেখা যায়। উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ অৰুণাচল প্ৰদেশৰ চেৰদুকপেনসকলৰ মাজত প্ৰচলিত তেনে কেতবোৰ লোক-বিশ্বাস লিঙঝিক উপন্যাসখনিত উল্লেখ আছে। তেওঁলোকৰ মাজত কন্যা সন্তান জন্মক লৈ প্ৰবাদ প্ৰচলন আছে যে, যি মাতৃৰ ভাগ্য ভাল, তাইৰ প্ৰথম সন্তানটো কন্যা হয়। চেৰদুকপেন সমাজত কন্যা সন্তান জন্ম হ'লে বা কন্যা সন্তান হ'ব বুলি আশা কৰি কন্যা সন্তানটিৰ বাবে কিছু সামগ্ৰী আগতীয়াকৈ যোগাৰ কৰা নিয়ম আছে। উপন্যাসখনিত সন্তানসম্ভৱা আজোমে কন্যা সন্তান জন্ম হ'ব বুলি আশা কৰি সেয়ে নানা সামগ্ৰী আক-তাক খাতিৰ কৰি যোগাৰ কৰা প্ৰসঙ্গত উল্লেখ পাঁও—আজোমে ইজন-সিজনক খাতিৰ কৰি আহিব ধৰা সন্তানৰ বাবে লাওপানী, খাবলৈ বাঁহৰ পাত্ৰ, হাবিৰপৰা খৰি লুৰিবৰ কাৰণে হোৰা, হোৰাৰ ৰছি, দা-কুঠাৰ, মোনা, চাদৰ, চাটক আদি ব'বৰ কাৰণে তাঁতশালৰ সঁজুলি আৰু মাকৰ লগত খেতিত মাটি খুঁচৰিবৰ কাৰণে চামফোক আদি লাগতিয়াল বস্তুবোৰ গোটাই পেলালে।[১৮] চেৰদুকপেনসকলৰ মাজত ভূত-প্ৰেত, জীৱ-জন্তুকলৈ নানা লোকবিশ্বাস প্ৰচল আছে। তেনে এটা লোক-বিশ্বাস 'বোব' থেকং কং'ক[১৯] নামৰ ধুনীয়া চৰাইটি কেনেদৰে নিশাচৰ হ'বলৈ পালে; তাৰ উল্লেখ উপন্যাসত পোৱা গৈছে। চেৰদুকপেন সমাজত শপত খোৱা, প্ৰমাণ কৰা আদি প্ৰথাৰ প্ৰচলন আছে। তেওঁলোকে সমাজৰ কোনো ব্যক্তিয়ে শপত খাব লগা হ'লে 'থাপগে লামু' (পাকশালৰ দেৱী) ৰ নামত ধৰি শপত খাই প্ৰমাণ প্ৰনাণ কৰা নীতি প্ৰচলন আছে। তেওঁলোকৰ সমাজত কোনো ব্যক্তিৰ বেমাৰ-আজাৰ হ'লে পূজা-পাতল নকৰাৰ দোষ বুলি বিশ্বাস কৰে। এনে বিশ্বাসৰ উল্লেখ উপন্যাসখনিত সুন্দৰভাৱে পোৱা গৈছে— মানুহজনী বাচে নে নাই ঠিক নাই। কি বেমাৰ নো হৈছে? পূজা কৰিবলৈ বোলে ঘৰত ঢেৰ কামেই পৰি আছিল। ঘৰত পূজা-পাতল কৰি নাথাকিলে বেমাৰ নহৈ নোৱাৰেনে?[২০] চেৰদুকপেন সমাজত প্ৰচলিত মৃত্যুৰ সৈতে জড়িত লোকাচাৰে উপন্যাসখনিত স্থান দখল কৰিছে। চেৰদুকপেন সমাজত তিৰোতাৰ মৃত্যু হ'লে 'উসু' দিয়া প্ৰথা আছে।উপন্যাসখনিত এই লোকাচাৰৰ উল্লেখ এনেদৰে পোৱা গৈছে— সেই কাৰণেই তই মোৰ মৃত্যুৰ পূৰ্বে মোৰ কাৰণে 'উসু' লৈ সদলবলে ইয়ালৈকে আহিছ।[২১] তেওঁলোকৰ সমাজত চুৰ দিয়া প্ৰথা আছে। এই পূজাৰ সম্পৰ্কে উপন্যাসখনিত উল্লেখ কৰিছে— একো হোৱা নাই। চুৰ এটা দিলেই ভাল হ'ব।[২২] তেওঁলোকৰ কোনো ঘৰত নৰীয়া লোক থাকিলে আৰু শুভ কাৰ্য আদি হৈ থাকিলে দূৰৰ পৰা কোনো লোক ঘৰত প্ৰৱেশ কৰিব লগা হ'লে অঙঠা আদিত ভৰি সেকিহে ঘৰৰ ভিতৰত প্ৰৱেশ কৰিব পাৰে। মৃতকৰ নামত জামজো পূজা দিয়া নিয়ম আছে। পন্যাসখনিৰ এঠাইত চেৰদুকপেনসকলে তিনিদিন ধৰি উদ্‌যাপন কৰা কুৰিম পূজাৰ উল্লেখ পোৱা গৈছে।

খাদ্য পৰম্পৰা ঃ

চেৰদুকপেনসকলৰ বিভিন্ন খাদ্য সম্ভাৰৰ বিষয়ে উপন্যাসখনিত উল্লেখ পোৱা গৈছে। তেওঁলোকৰ দৈনন্দিন জীৱনত খাদ্যৰূপে ব্যৱহাৰ হোৱা এবিধ পানীয় খাদ্য হ'ল লাওপানী। লাওপানীৰে আলহী-অতিথিক আপ্যায়ন কৰা, পূজা-পাতলত ব্যৱহাৰ কৰা অনেক প্ৰসঙ্গত উপন্যাসখনিত লাওপানীৰ উল্লেখ পোৱা গৈছে— ঞিমা লামুৱে উঠি জুহালত গৰম পানী বহুৱাই দিলে। যাতে ভাগৰত ক্লান্ত হৈ অহা ককায়েকক অতি সোনকালে তাই লাওপানী তৈয়াৰ কৰি খুবাব পাৰে।[২৩] তেওঁলোকে খাদ্যৰূপে ব্যৱহাৰ কৰা লাওপানীক শক্তিদায়ক পানীয় খাদ্য ৰূপে গণ্য কৰে। সেয়ে— লাওপানীৰ গুণ-গৰিমাও অনেক। উপন্যাসখনিত উল্লেখ আছে—'এহ, ডেকাকালতেই যদি নাখাব, বুঢ়া হ'লে খাবি কেনেকৈ?

বুজিছু, তহঁতৰ দৰে ডেকা বয়সত আমি খুউব খাইছিলো। সেইবাবে আজিও আমাৰ দেহা তজবজীয়া হৈ আছে। এতিয়াও অকলশৰে ডাঙৰ গছ কাটি জুমখেতিৰ বাবে হাবি মোকলাব পাৰো। এনেবোৰ বৰ্ণনাৰ পৰাই লাওপানীৰ সমাদৰৰ কথা উমান পোৱা যায়। তেওঁলোকৰ সমাজত ঘৰুৱা কোনো ডাঙৰ অনুষ্ঠান আয়োজনৰ বাবে ব্যাপক প্ৰস্তুতি চলায়। তাৰ বাবে যি যা-যোগাৰ কৰে তাৰ নিদৰ্শন উপন্যাসখনিত পোৱা গৈছে— পিছদিনা পুৱাই এচুঙা মদ লৈ আজোম দাৰজা বুঢ়াৰ কাষ চাপিলে। ... ডাঙৰ বোৱাৰীয়েকক লাওপানী সিজাবলৈ লগাই দিলে, গাঁৱৰ তিনিজনীমান ছোৱালীক মাতি আনি ধান খুন্দা, মাকৈ গুৰি কৰা আদিত লগাই দিলে।[২৪] চেৰদুকপেন সমাজৰ খাদ্যাভাস উপন্যাসখনিত নিখুঁটভাৱে বৰ্ণনা কৰিছে— মাছ মাৰি ফুৰোতে কিমান যে মাছ পুৰি পুৰি খাইছিলো। টিক ৰাখোঁতে, পানী সিঁচি মাছ মাৰোঁতে, নদীৰ পাৰত ডাঙৰ ডাঙৰ মাছ টুকুৰা-টুকুৰকৈ কাটি কিমান যে সিজাই খাইছিলো। কেতিয়াবা খাব নোৱাৰি পেলায়ো দিছিলো। বনৰীয়া জাবৰাং কেঁচাই দি কৰা মাছৰ জোল মোৰ খুউব ভাল লাগে। পহু মাংসৰ সোৱাদ আৰু বেছি ভাল পাওঁ। পানীত কেৱল নিমখ, জলকীয়া দি সিজোৱা মাছ-মাংসৰ সোৱাদ নানা তৰহৰ মছলা সানি তেলত ভজা মাছ-মাংসৰ সোৱাদতকৈ ভাল। মছলাই পেট বেয়া কৰে। কিন্তু এটা কথা ঠিক, কুকুৰা-ছাগলী আদিৰ মাংস আৰু ৰৌ, বৰালি, চিতল আদি ভৈয়ামৰ মচলা নিদিলে খাবই নোৱাৰি, গোন্ধায়।[২৫] তেওঁলোকৰ সমাজত মদ খোৱাৰ নিয়ম আছে। যেনে লাওপানী আদি খাওতে একেবাৰতে তিনি ধোক পিহে বাতিটো মজিয়াত নমাই থ'ব পাৰি। যেনে— প্ৰেম টাছিয়ে পাত্ৰটো দুহাতেৰে দাঙি দুচুমুক লাওপানী খাই পুনৰ তলত থৈ দিব খোজা দেখি পেনজেই ক'লে, তিনি চুমুক খোৱা। তিনি চুমুক খোৱা নিয়ম।[২৬]

সাজপাৰৰ উল্লেখ ঃ

পৃথিৱীৰ সকলো জাতিৰেই স্বকীয় সাজপাৰ আছে। ঠিক তেনেদৰে চেৰদুকপেনসকলৰো স্বকীয় সাজপাৰ আছে। তেনে সাজপাৰৰ ভিতৰত টুপী অন্যতম। অৰুণাচলৰ প্ৰায় জনগোটৰ মাজতেই টুপী পৰিধান কৰা পৰম্পৰা আছে। চেৰদুকপেনসকলৰ মাজতো টুপী আদৰৰ বস্ত্ৰ। লিঙঝিক উপন্যাসত টুপীৰ আদৰ আৰু প্ৰয়োগৰ সুন্দৰ বৰ্ণনা পোৱা গৈছে— দেউতাকলৈ বুলি সি প'জ টুপী এটাও আনিছিল, কিন্তু দেউতাকৰ সলনি মোমায়েকক টুপীটো দিয়াটোকে সি ঠিক কৰিলে। গতিকে মোমায়েকক টুপীটো আগবঢ়াই দি ক'লে, মোমাইদেউ আপোনাৰ কাৰণে এই টুপিটো আনিছো। পিন্ধি চাওকচোন, কেনে হৈছে? পেনজেই হাত পাতি টুপীটো ল'লে। মূৰৰ টুপী এহাতেৰে খুলি লৈ কোলাত থ'লে আৰু আনটো হাতেৰে নতুন টুপীটো মূৰত সুমুৱাই দি তৃপ্তিৰ হাঁহি এটা মাৰিলে।[২৭] আন এঠাইত উল্লেখ আছে আজোমে অৱশেষত গৈ দূৰত ছিটিকি পৰা গিৰিয়েকৰ টুপীটো বুটলি আনি পিন্ধাই দিলে।[২৮] এনেবোৰ উল্লেখৰ পৰাই তেওঁলোকৰ সমাজত বস্ত্ৰ সম্ভাৰৰ অংশ হিচাপে টুপীৰ মূল্য কিমান, সেই বিষয়ে উমান পাব পাৰি। চেৰদুকপেন পুৰুষে পৰিধান কৰা আন একপ্ৰকাৰৰ বস্ত্ৰ হ'ল চাপে। চাপেৰ প্ৰসঙ্গ উপন্যাসখনিত এনেদৰে পোৱা হৈছে — চাপেৰ আগ অংশৰে সি ডিঙি, গাল, কপাল, আদিৰ ঘামবোৰ মচি পেলালে।[২৯] উপন্যাসখনিত নাৰীয়ে পৰিধান কৰা মেখেলাৰ উল্লেখ আছে—কৈ কৈ চেবমে বাগৰি থকা চকীখন উঠাই ঠিক কৰিলে আৰু বাওঁভৰিখন উঠাই চিংকুৰ আগখিনি আঁঠুৰ ওপৰলৈকে কোঁচাই নিজৰ ভৰি পৰীক্ষা কৰিবলৈ ধৰিলে।[৩০] চেৰদুকপেন মহিলাই পৰিধান কৰা এবিধ বস্ত্ৰ হ'ল চিংকু। চিংকু তিৰোতাই পিন্ধা মেখেলা। সাধাৰণতে এড়ি কাপোৰেৰে চিলোৱা হয়। তেওঁলোকৰ সমাজত শ্ৰেণী অনুসৰি সাজপাৰ বেলেগ হয়।

সা-সঁজুলিৰ উল্লেখ ঃ

তেওঁলোকৰ সমাজত প্ৰচলিত বিভিন্ন সা-সঁজুলিৰ উল্লেখ উপন্যাসখনিত আছে। তেনে এবিধ সঁজুলি হ'ল টেক। টেক সাধাৰণতে সন্মানিত ব্যক্তি তথা আলহীক লাওপানী দিবৰ সময়ত সন্মানাৰ্থে লাওপানীৰ পাত্ৰ পীৰাৰ সমান টেবুল এখনত থোৱা হয়। তাকে টেক বুলি কোৱা হয়। আনহাতে টেমব্ৰে আন এটা পাত্ৰ। এই পাত্ৰ শুভকাৰ্যত ব্যৱহাৰ কৰা হয়। এই পাত্ৰটো বিশেষভাৱে সজ্জিত কৰা হয়। ই এক প্ৰকাৰৰ চুঙা। মদ খাবৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰে।

পৰিৱৰ্তনৰ দ্বন্দ্ব ঃ

সাধাৰণতে পৃথিৱীৰ কোনো সভ্যতা-সংস্কৃতিয়েই এক নিৰ্দিষ্ট ৰীতি-নীতিৰে আবদ্ধ হৈ নাথাকে। সকলোৰে সময়ৰ দাসত্ব স্বীকাৰ কৰি ল'ব লাগে। অৰুণাচল প্ৰদেশৰ

চেৰদুকপেনসকলৰ মাজতো সামাজিক-সাংস্কৃতিক দিশত পৰিৱর্তন আহিছে। সেই পৰিৱর্তনত ন-পুৰণিৰ দ্বন্দ্ব আৰু সংঘাত স্পষ্টৰূপত লিঙঝিক উপন্যাসখনিৰ বহু ঠাইত উল্লেখ কৰিছে। এই পৰিৱর্তন শিক্ষা, সমাজ, সাহিত্য, ৰাজনীতি আদি দিশেৰে সোমাই পৰিছে। উপন্যাসখনিৰ এঠাইত উল্লেখ কৰিছে— চৰকাৰৰ দিন পৰিছে বুল আজিকালি ল'ৰা-ছোৱালীবোৰক স্কুলত পঠাব লগা হ'ল। স্কুলত থাকি সিহঁতে আমাৰ নিজৰ আদব-কায়দা, কাম-বন আদি পাহৰি পেলালে । সিহঁতে হাতত ধনু-কাঁড় লোৱা দূৰৰ কথা, কঁকালৰ টঙালিত দা নোলোৱা হ'ল, মূৰত টুপী নিপিন্ধা হ'ল, বোৱ-কটা কৰিবলৈ পাহৰি পেলালে।(লি. ৮৮) আনফালে সামাজিক কু-সংস্কাৰ আৰু অনিয়ন-অনীতিবোৰ দূৰ কৰিবলৈ যাওঁতে পৰম্পৰাপন্থীলোক আৰু উচ্চ-শিক্ষিত শ্রেণী চৰিত্রৰ মাজত হোৱা সংঘাত উপন্যাসখনিত স্পষ্ট হৈ উঠিছে— ফলত যুগৰ লগত সমাজ, সমাজৰ লগত প্রচলিত ৰীচি-নীতিৰ খাপ নোখোৱা হৈ পৰিল। যুগৰ লগে লগে নন চাম পুৰুষ আহিল। কিন্তু সমাজ থাকিল সেই একেটাই, তাৰ নীতি-নিয়মো থাকিল সেই একেটাই। কিন্তু কিমান দিন আমি সেই এলান্ধুকলীয়া ৰীতি-নীতিক সাৱটি ধৰি থাকিম? আজি যুগৰ অদ্ভুত পৰিৱর্তন হৈছে। বিশেষকৈ এই পৰিৱর্তনৰ ঢৌ আমাৰ জনজাতীয় সমাজৰ বাৰুকৈ আহিব লাগিছে। গতিকে বর্হিজগতৰ লগত মিলিবলৈ গ'লে আমিও আমাৰ সমাজক অধিক দোষমুক্ত, কু-সংস্কাৰমুক্ত আৰু সর্বসুন্দৰ কৰি তুলিব লাগিব। তাৰ বাবে আমি আমাৰ মাজত প্রচলিত কিছুমান বেয়া নীতিক এৰিব লাগিব। (লি. ৮১) ঠিক একেদৰে ন-শিক্ষাৰে শিক্ষিত চেৰদুকপেনসকলৰ নৱপ্রজন্মই পুৰণিকলীয়া ৰীতি-নীতি মানি চলিবলৈ অনিচ্ছুক। সেয়ে সমাজত ন-পুৰণিৰ সংঘাতে যে এসময়ত চেৰদুকপেন সমাজখনত ক্রিয়া কৰিছিল, তাৰ উদাহৰণ লিঙৰিক উপন্যাসখনিত এনেদৰে আছে— নৰবু কলেজৰ ল'ৰা। গতিকে স্বাভাৱিকতে সি আছিল এলান্ধুকলীয়া ৰীতি-নীতি আৰু কু-সংস্কাৰসমূহৰ বিৰোধী। গাঁওখনৰ মানুহক যুগৰ লগত খোজ মিলাই কেনেকৈ আগবঢ়াই নিব পাৰি তাৰে চেষ্টাত নৰবু চিৰিঙে অহৰহ যুঁজি ফুৰিছিল। তাতে দৰজি চেৱাঙহঁতে পুৰণি কুসংস্কাৰ এটা কবৰৰ পৰা খান্দি উলিয়াই পুনৰ প্রচলন কৰিবলৈ যোৱাত নৰবু চিৰিঙৰ দল জঁকি উঠিল। (লি. ৭৯) উপন্যাসখনিৰ আন এঠাই একেই দ্বন্দ্বৰ পুৰনাবৃত্তি হৈছে— আগৰে পৰা আমাক ওচৰ পাঁজৰৰ জাতিবিলাকে ৰজা জ্ঞান কৰি আহিছে সিহঁতে আমাৰ পৰা ৰীতি-নীতি, নিয়ম-কানুন অনুকৰণ কৰি সিহঁতৰ জাতিক জীৱিত কৰি তুলিছে। আজিকালি ল'ৰা-ছোৱালীবোৰ ভাৰতীয় শিক্ষা পাই আমাৰ নিজৰ ৰীতি-নীতিক, আমাৰ নিজৰ কৃষ্টি-সংস্কৃতিক দলিয়াই পেলাই দিবলৈ ওলাইছে। ই আমাৰ বাবে বৰ পৰিতাপৰ কথা। মোৰ মতেৰে আমাৰ সমাজত এনে এটা নিয়ম নাই যি দলিয়াই দিয়াৰ যোগ্য।...সি জানে, পুৰণি ৰীতি-নীতিবোৰ আজিৰ দিনৰ বাবে পুৰণি আৰু অচল হৈ গৈছে। সামাজিক ৰীতি-নীতিবোৰ সময় সাপেক্ষে, সেই সময় পাৰ হ'লেই আচল টকাৰ দৰে অচল হৈ পৰে। যুগৰ লগত সমানে তাল মিলাই আগবাঢ়ি যাবলৈ হ'লে পুৰণি কু-সংস্কাৰ, কৃষ্টি-সংস্কৃতি আদিক এৰি বা ধুই-পখালি যুগ সাপেক্ষ কৃষ্টি-সংস্কৃতি আৰু ৰীতি-নীতি গঢ়ি তুলিব লাগিব। (লি. ২৪-২৫) এনেবোৰ উক্তিয়েই উপন্যাসখনিত ন-পুৰণিৰ দ্বন্দ্বৰ স্পষ্ট আভাস দিয়ে।

উপন্যাসখনিত ভাষিক উপাদান ঃ

উপন্যাসখনি অসমীয়া ভাষাত ৰচনা কৰিছে বাবে বহুবোৰ অসমীয়া প্রবাদ, যোজনা প্রয়োগ হোৱাৰ লগতে চেৰদুকপেন ভাষাৰ বহু শব্দ প্রয়োগে ভাষিক সমন্বয় সাধনতো উ পন্যাসখনিয়ে গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা পালন কৰিছে। অসমীয়া ঘৰুৱা প্রবাদ যেনে— ৰৌটোকে টোটো কৰি দিব (লি. ৪৪), শিকত দিয়া মাছ যেন হৈ বিছনাত পৰিলগৈ (লি. ৬০), ঘৰত ৰাখি থোৱা ছোৱালী আৰু এৰাল নিদিয়া ঘোঁৰা একে, নিজৰ কাঁড় লগা পহুক চিকাৰীয়ে পাছে পাছে খেদিবলৈ নেৰে। এবাৰ হ'লেও পুনৰ কাটি ঝুমখেতি কৰিবলৈ মানুহে নাপাহৰে (লি. ৮৭) আদি ইংগিতধর্মী ভাষাৰ প্রয়োগ মন কৰিবলগীয়া। অসমীয়া ভাষাৰ ঘৰুৱা শব্দ, যেনে— চেপেনাডাল (লি. ৫৭); চেৰদুকপেন ভাষাৰ শব্দাৱলী —মানদোঙ (লি. ৩২), কাকলিঙ (গাঁৱৰ মুখ্য তোৰণ বা গাঁৱৰ প্রৱেশ দ্বাৰা, লি. ৪২)। কাকলিঙ জনগোষ্ঠীয় আৰু বংশ তথা জাতিৰ পৰিচায়ক। চেৰদুকপেনসকলৰ মাজত দুটা গোষ্ঠীৰ মাজত কোনো কাজিয়াৰ মীমাংসা কৰিবলৈ হ'লে খলাৰ সহায় লয়। তথা এনে ক্ষেত্রত খলাৰ ভূমিকা গুৰুত্বপূর্ণ। খলা হ'ল বিচাৰ বা কাজিয়াৰ মীমাংসাৰ সময়ত এক পক্ষই অন্য পক্ষলৈ মাজৰ মানুহৰ হতুৰাই যি কথা কৈ পঠায় তাকে খলা বোলে। (লি. ৮৫) আৰু যিজনে খলা

অর্থাৎ বার্তা লৈ যায় তেওঁক খ্লাপো (মাজৰ মানুহ বা মধ্যস্থতাকাৰী) বুলি কোৱা হয়। তেওঁলোকে লগৈ দেৱীক থাপগে লামু বুলি কয়। (লি. ৮৬) ছিনাং তেওঁলোকৰ সমাজৰ এটা পুৰণিকলীয়া প্ৰথা। য'ত ভাগিন-ভাগিনীয়েকহঁতে মাক বা দেউতাকৰ তথা সম্বন্ধীয় ডাঙৰ বা জ্যেষ্ঠজনক গা-খাটি ঋণ পৰিশোধ কৰা নিয়ম। ককপু (নীচ জাত/বিজাতি), চেথাৰ (মাহেকীয়া পূজাত দেৱতাৰ নামত এৰিবৰ কাৰণে পোহা ৰঙা কুকুৰা (লি. ১০১), খাটা (লি. ১১১), ঝত (পিতলৰ চৰিয়া, লি. ১১২), ঙি (কাৰুকাৰ্যখচিত ৰূপৰ পাত্ৰ, লি. ১২৩), পাছিগোৰ (ধূপদানি), দোক (মৃত মানুহৰ নাত দিয়া ভোজ, লি. ১৪৩) আদি অনেক অসমীয়া আৰু চেৰদুকপেনমূলৰ ভাষা প্ৰয়োগ কৰি ঔপন্যাসিকে নিজৰ ভাষিক দক্ষতাৰ পৰিচয় দিছে।

সামৰণি ঃ

এজন জনগোষ্ঠীয় লেখক হৈয়ো অসমীয়া ভাষাত সাহিত্য চৰ্চা কৰি অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যক চহকী কৰাত অগ্ৰণী ভূমিকা লৈ থকা য়েছে দৰজে ঠংচিৰ 'লিঙঝিক' এখনি সাৰ্থক আৰু জনপ্ৰিয় উপন্যাস। উপন্যাসখনিত চেৰদুকপেন সমাজখনেই জীৱন্ত হৈ উঠিছে বুলিলেও বঢ়াই কোৱা নহ'ব। উপন্যাসখনিৰ আৰম্ভণিৰ পৰা শেষলৈকে চেৰদুকপেনসকলৰ সামাজিক বান্ধোন, বংশ মৰ্যাদা, বীৰত্ব, পূজা-পাতল, উৎসৱ-পাৰ্বন, খাদ্যাভাস, সাজপাৰ, জন্ম-মৃত্যু-বিবাহকেন্দ্ৰিক লোকাচাৰ, লোক-বিশ্বাস, জনশ্ৰুতি, চিকাৰ পদ্ধতি, যাতায়ত ব্যৱস্থা, লোক-চিকিৎসা, শিক্ষা, ন-পুৰণিৰ সংঘাত, নাৰী স্বাধীনতা আৰু নাৰী মনস্তত্ব আদি বিভিন্ন সাংস্কৃতিক সমলেৰে পৰিপূৰ্ণ এখন জনজাতীয় উপন্যাস। কিন্তু সময় গতিশীল। গতিশীল সময়ৰ সৈতে সংস্কৃতিয়েএ পৰিৱৰ্তনশীল ৰূপত আত্মপ্ৰকাশ কৰে। গতিকে পৃথিৱীৰ আন আন সভ্যতা-সংস্কৃতিৰদৰে চেৰদুকপেনসকলৰ মাজত থকা সামাজিক পৰম্পৰা, লোকৰীতি-নীতিলৈ পৰিৱৰ্তন আহিছে বা ঠায়ে ঠায়ে নতুন সংযোজনে পুৰণিকে নতুনৰূপত উপস্থাপন কৰিছে। কিন্তু চেৰদুকপেনসকলৰ বাবে সুখৰ কথা যে, তেওঁলোকৰ পুৰণি সাংস্কৃতিক পৰম্পৰাবোৰ কালৰ গতিত হেৰাই গ'লেও বহু যুগৰ পাছতো লিঙঝিক উপন্যাসখনিয়ে চেৰদুকপেনসকলৰ ইতিহাস বহন কৰি যুগ যুগলৈ ঐতিহ্য ৰক্ষা কৰিব, তাত কোনো সন্দেহ নাই । উপন্যাসখনিৰ উপস্থাপন পদ্ধতি শিথিলবিনষ্ট। চৰিত্ৰৰ মনোজগত বিশ্লেষণত, আত্ম সমালোচনা আদিবোৰে প্ৰত্যেকটি চৰিত্ৰই স্বয়ংসম্পূৰ্ণ কৰি তুলিছে। আনফালে প্ৰথম পুৰুষত কৰা বৰ্ণনাশৈলী আৰু কথোপকথন ৰীতিৰ সহজ-সৰল ভাষাই উপন্যাসখনিৰ কাহিনীক সকলো পাঠকৰ ওচৰ চপাই নিয়াত সহায়ক হৈছে। সাধাৰণ ঘৰুৱা কথাৰদৰে উপমা, প্ৰবাদ আদিৰ প্ৰয়োগ মন কৰিবলগীয়া। চেৰদুকপেনসকলৰ ভাষিক উপাদানেও গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছে। ক'ব পাৰি জনগোষ্ঠীয় উপন্যাস হিচাপে চেৰদুকপেনসকলৰ সামাজিক উপাদান বিবাহ আৰু গা-ধন প্ৰথাক জীৱন্ত ৰূপত তুলি ধৰাত সফল হৈছে। তদুপৰি উপন্যাসখনিত প্ৰয়োগ হোৱা অসমীয়া আৰু চেৰদুকপেন ভাষালৈ লক্ষ্য কৰিলে উপন্যাসখনিক ভাষাতাত্ত্বিক দিশৰ পৰাও আলোচনা কৰাৰ স্থল আছে। ❑

সন্দৰ্ভ গ্ৰন্থ ঃ

১। নেওগ, মহেশ্বৰঃ শ্বেৰডুকপেন্ প্ৰবন্ধ, প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্য্য সম্পাদিত অসমৰ জনজাতি, তৃতীয় সংস্কৰণ, অকোবৰ, ২০০৮, পৃ. ২৩৯
২। বৰপাত্ৰ গোহাঁই, চন্দ্ৰঃ অৰুণাচল প্ৰদেশৰ জনজাতিসকল, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৩, পৃ.১৪
৩। নেওগ, মহেশ্বৰ ঃ উপৰোক্ত, পৃ.২৪০
৪। গগৈ, লোকেশ্বৰ ঃ অসমৰ লোক-সংস্কৃতি, ক্ৰান্তিকাল প্ৰকাশন, ২০১৩, পৃ. ১৫৫-১৫৬
৫। গগৈ, লোকেশ্বৰ ঃ সদ্যোক্ত, পৃ. ৮৮
৬। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ লিঙঝিক, বনলতা সংস্কৰণ, ডিচেম্বৰ, ২০২০, পৃ.১২
৭। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ. ৩৩
৮। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ. ৪৪
৯। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ. ৪৭
১০। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ. ৪৮

১১। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ. ৪৪
১২। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ.৪৯
১৩। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ.৫২
১৪। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ.৫৪
১৫। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ.৯৯
১৬। গা-ধন লোৱা ৰীতি-নীতি সম্পৰ্কে ঔপন্যাসিকে এনেদৰে উল্লেখ কৰিছে- আমাৰ সমাজত প্ৰচলিত ৰীতি-নীতি মতে মাইকী মানুহৰ গা-ধন তাইৰ মৃত্যুৰ পাছত তাইৰ সন্তান-সন্তানাদিৰ পৰা আদায় কৰা হয়। যেতিয়ালৈকে এজনী মাইকী মানুহৰ গা-ধন লোৱা নহয়, তেতিয়ালৈকে তাই আপোন ককায়েক-বায়েকৰ হৈ থাকে, গা-ধন লোৱাৰ পাছতহে তাই সম্পূৰ্ণৰূপে পতি-পুত্ৰৰ হৈ পৰে। পৃ.১১১
১৭। লিঙঝিক হ'ল শিল খুঁটা। এই শিল তেতিয়া পুতি দিয়া হয় যেতিয়া মাটিৰ সীমা অথবা বৰ ডাঙৰ সিদ্ধান্ত একোটা ল'ব লগা হয়। লিঙঝিক হ'ল সেই সিদ্ধান্তৰ সাক্ষী। পৃ.১২৩
১৮। দৰজে ঠংচি, য়েছেঃ সদ্যোক্ত, পৃ.১৭
১৯। প্ৰচলিত কাহিনী অনুসৰি বোব' থেকাং কং চৰাইৰ মাতটো সুললিত আৰু ধুনীয়া, তাৰ ঠেং এটা খোঙা। চৰাইটো নিশাচৰ। প্ৰকৃততে চৰাইটো নিশাচৰ। চৰাইটো দেখিবলৈ বৰ আপচু আছিল। অন্যহাতে কাউৰীবোৰ বগলীৰ দৰে বগা ধুনীয়া আৰু চিত্ৰকাৰো আছিল। এদিন বোব' থেকাং কঙে কাউৰীক কলে, সখি, মোৰ মাতটো, ধুনীয়া, যদিও মই দেখিবলৈ তেনেই আপচু বাবে মোক সকলোৱেই লেই লেই চেই চেই কৰে। আপুনি মোৰ দেহত ৰং বিৰঙৰ চবি আঁকি দিয়ক, বিনিময়ত মো আপোনাক আঁকি দিম। কথামতে কাউৰীয়ে তাৰ তুলিকাৰে বোব' থেকং বঙৰ গাত ৰং বিৰঙৰ ছবি আঁকি দিলে। বোব' থোকং বাং ধুনীয়া হৈ পৰিল। এইবাৰ কাউৰীৰ দেহত ছবি আঁকা পাল পৰিল। বোব' থেকং কঙে ৰং গোটাই লৈহে আঁকিম বুলি কোৱাত কাউৰী নিশ্চিত হৈ নিজৰ বাহুত শুই থাকিল। বোব' থেকং কঙে সুবিধা বুজি আলান্ধু মিহি কৰি সজা নকচু (চিয়াঁহী) কাউৰীৰ গাত ঢালি দিলে। কাউৰীৰ খং উঠিল আৰু বোব' থেকং কঙৰ ঠেং এখন ভাঙি দিলে। তাৰ পাছত বোব' থেকং বাঙে ওলাব নোৱাৰি নিশাচৰে হ'ব বুলি তেওঁলোকে বিশ্বাস কৰে, পৃ.৩৯
২০। দৰজে ঠংচি, য়েছেঃ সদ্যোক্ত, পৃ.৫৮
২১। উসু হ'ল এবিধ মালা। সাধাৰণতে তিৰোতা মানুহৰ মৃত্যু হ'লে মৃতকৰ ভায়েক বা ককায়েকে প্ৰথম খাটাবা মালা পিন্ধাব লাগে, পৃ.৯৩
২২। চুৰ হ'ল একপ্ৰকাৰৰ প্ৰেত-আত্মাৰ পূজা তেওঁলোকে বিশ্বাস কৰে যে, এই পূজা জীৱিত মানুহক অনিষ্ট সাধন নকৰিবলৈ প্ৰেতাত্মাক উদ্দেশ্যি কৰা হয়, পৃ ৯৬
২৩। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ.২৬
২৪। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ.৭৮
২৫। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ.১০৬
২৬। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ.১১১
২৭। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ.২৭
২৮। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ.৫২
২৯। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ সদ্যোক্ত, পৃ.৫২
৩০। উপন্যাসখনিত নিজৰ মাকক মেখেলা উপহাৰ দিয়া প্ৰসঙ্গত এনেদৰে উল্লেখ পাওঁ— আইক এৰী কাপোৰৰ চিংকু দি পাইছেনে? অনুমান কৰিব পাৰি তেওঁলোকৰ সমাজত এৰী সূতাৰ চিংকুৰ বহুল প্ৰচলন আছে, পৃ.১০০

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১। গগৈ, লোকেশ্বৰ ঃ অসমৰ লোক-সংস্কৃতি, ক্ৰান্তিকাল প্ৰকাশন, ২০১৩
২। নেওগ, মহেশ্বৰ ঃ শ্বেৰডুকপেন্ প্ৰবন্ধ, প্ৰমোদচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্য্য সম্পাদিত অসমৰ জনজাতি, তৃতীয় সংস্কৰণ অকটোবৰ, ২০০৮
৩। বৰপাত্ৰ গোহাঁই, চন্দ্ৰ ঃ অৰুণাচল প্ৰদেশৰ জনজাতিসকল, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৩
৪। দৰজে ঠংচি, য়েছে ঃ লিঙঝিক, বনলতা সংস্কৰণ, ডিচেম্বৰ, ২০২০

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

হেমচন্দ্র বৰুৱাৰ সাহিত্যৰ ভাষা ঃ এক সংক্ষিপ্ত মূল্যায়ন

চুচুংফা বৰগোঁহাঞি
গৱেষক ছাত্ৰ, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
অসম-৭৮১০১৪
ম'বাইল ঃ ৮০১১২৬১৩০৫
ই-মেইল ঃ borgohainchucungfa@gmail.com

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

অসমীয়া জাতিৰ অতি সংকটৰ সময়ত জাতিটোক উদ্ধাৰৰ বাবে সুদুৰ আমেৰিকাৰ পৰা অহা মিছনেৰীসকলৰ সমান্তৰালকৈ কেইজনমান সজাগ-সচেতন অসমীয়া ব্যক্তিয়ে হাত উজান দি অর্থাৎ ভাষা, সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ সেৱাত ব্ৰতী হৈ হেৰাই যোৱা অসমী আইৰ মাতৰ পুনৰুদ্ধাৰ তথা আধুনিক অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ প্ৰাণ-প্ৰতিষ্ঠাত আগভাগ লৈছিল। তাৰ ভিতৰত হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা নামটি উল্লেখযোগ্য। অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ সংকটময় সন্ধিক্ষণতে বৰুৱাৰ জন্ম হৈছিল। সেয়ে তেওঁৰ অসমীয়া ভাষা বিতাড়িত হোৱাৰেপৰা পুনৰুদ্ধাৰ কৰালৈকে এই আটাইখিনি সময়ত উপস্থিত আছিল। নিজৰ চেষ্টা আৰু অধ্যৱসায়ৰ বলত সু প্ৰসিদ্ধ ব্যক্তি হিচাপে নিজকে গঢ় দিবলৈ সক্ষম হোৱা হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই মৌলিক চিন্তা-চৰ্চাৰে অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ যি বৰ ভেঁটি নিৰ্মাণ কৰিলে, তাৰ বাবে অসম, অসমীয়াই প্ৰজন্মৰ পৰা প্ৰজন্মলৈ তেওঁৰ কৰ্মৰাজিক সোঁৱৰণ কৰিব।

০.১ গৱেষণাৰ উদ্দেশ্য ঃ

"হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ সাহিত্যৰ ভাষা" শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে মূলতঃ এইকেইটা বিষয়ক মুখ্য উদ্দেশ্য হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

১। ঊনবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ এজন পুৰোধা ব্যক্তি হিচাপে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ জাৱন আৰু কৰ্মৰ ওপৰত আলোকপাত কৰা।

২। ব্যাকৰণ, অভিধান, পঢ়াশলীয়া পুথি, সৃজনীমূলক সাহিত্য আদি ৰচনাৰ যোগেদি আধুনিক অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰতিষ্ঠাত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰা হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ অৱদানক দাঙি ধৰা।

৩। অসমীয়া ভাষাৰ মূল নিৰ্ণয়ৰ ক্ষেত্ৰত মিছনেৰীসকলে দাঙি ধৰা উচ্চাৰণভিত্তিক আখৰ জোঁটনিৰ পৰম্পৰা ভংগ কৰি হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই আখৰ জোঁটনিৰ ক্ষেত্ৰত এক নতুন পৰম্পৰা গঢ়ি তুলিলে। এই পৰম্পৰা আজিও অসমীয়া ভাষাৰ গঠনত বিদ্যমান। তদুপৰি ভাষাৰ শুদ্ধতাৰ ওপৰত তেওঁ অতি সজাগ আৰু সচেতন আছিল। তেনে পৰিপ্ৰেক্ষিতত তেখেতৰ ৰচনাৰ বা সাহিত্যৰ ভাষাটো অধ্যয়ন কৰাটো এই গৱেষণা পত্ৰৰ প্ৰধান উদ্দেশ্য।

০.২ গৱেষণাৰ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে মূলতঃ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰাৰ উপৰি ঠায়ে ঠায়ে ঐতিহাসিক, সমীক্ষাত্মক পদ্ধতিৰো প্ৰয়োগ কৰা হৈছে।

০.৩ গৱেষণাৰ সমল ঃ

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰাৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰধানতঃ দুটা সমলৰ সহায় লোৱা হৈছে। ইয়াৰে এটা হৈছে— মুখ্য সমল আৰু আনটো হৈছে গৌণ সমল। মুখ্য সমলত হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই ৰচনা কৰা সাহিত্যৰাজি অন্তৰ্ভূক্ত কৰা হৈছে। এই সাহিত্যৰাজিৰ কেতবোৰ আলোচনীৰ পাতত, পুথি আকাৰত, সম্পাদিত ৰচনাৱলীৰপৰা সংগ্ৰহকৃত। আনহাতে গৌণ সমলৰ ভিতৰত হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা সম্পৰ্কত লৈ আন লেখকে লিখা বিভিন্ন গৱেষণামূলক প্ৰবন্ধ, পুথি, গৱেষণা গ্ৰন্থ, জীৱনী, চিঠি-পত্ৰ আদিক সামৰি লোৱা হৈছে।

১.০ হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ জীৱন আৰু কৃতি ঃ

আধুনিক অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ ইতিহাসৰ এজন উল্লেখযোগ্য ব্যক্তি হ'ল ভাষাৰ ওজা হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা। ১৮৫৭ শক, ইংৰাজী ১৮৩৫ খ্ৰীঃত উজনি অসমৰ শিৱসাগৰ জিলাৰ ৰজাবাহৰ গাঁৱত জন্ম লাভ কৰা হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ পিতৃৰ নাম আছিল মুক্তাৰাম বৰুৱা। সৰুতে পিতৃক হেৰুৱাই পিতৃহাৰা হোৱা হেমচন্দ্ৰই খুৰাক লৰৌৰাম বৰুৱাৰ লগত থাকি শিক্ষাগ্ৰহণ কৰিছিল। আৰ্থিক অৱস্থা সূচল নোহোৱাৰ বাবে শিক্ষাগ্ৰহণ কৰি থাকোঁতেই তেওঁ মাহিলি মাত্ৰ চাৰি টকা দৰত নকল নবীচৰ কামত নিযুক্ত হৈ কৰ্মময় জীৱনৰ পাতনি মেলে। ৰক্ষণশীল ব্ৰাহ্মণ পৰিয়ালৰ সন্তান হোৱাৰ বাবে তেওঁ ইংৰাজী শিক্ষা লাভত বাধা পাইছিল যদিও সেই বাধাই তেওঁৰ জ্ঞানস্পৃহা নিবৃত্ত কৰিব নোৱাৰিলে। ইংৰাজী ভাষাত বুৎপত্তি থকাৰ বাবেও তেওঁ চৰকাৰী কামত দোপতদোপে উন্নতি লাভ কৰিছিল। ছমাহৰ বাবে তেওঁ গোলাঘাটৰ ৰেভিনিউ পদত অধিষ্ঠিত থাকি আকৌ শিৱসাগৰলৈ প্ৰত্যাৱৰ্তন কৰি অস্থায়ীভাৱে স্কুলৰ শিক্ষক পদতো নিয়োজিত হৈছিল। ইয়াৰ পিছত তেওঁ মাহে ২৫ টকা দৰমহাৰে ১৮৬২ চনলৈকে ৰেভিনিউ মহাফেজ পদত নিযুক্ত হৈছিল। ১৮৬২ চনৰপৰা হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই জুডিচিয়েল কমিচনাৰ চাহাবৰ অফিচত টেন্সশ্লেটৰ বা ভাষাভঙা কাকতী হৈ কাম কৰি শেষত সেই অফিচৰ চুপাৰিণ্টেণ্ডৰ পদ পায়। ১৮৮১ চনৰ ১৫ জানুৱাৰীলৈকে

তেওঁ উক্ত পদত অধিষ্ঠিত হৈ আছিল। সেই অফিচত চুপাৰিণ্টেণ্ড পদত থাকোঁতেই তেওঁক ১৮৭৫ চনত তিনিমাহৰ বাবে একষ্ট্ৰা-এছিষ্টেণ্ট পদো অস্থায়ীভাৱে যচা হৈছিল। চিৰস্থায়ী নোহোৱাৰ হেতু তেওঁ উক্ত পদ প্ৰত্যাখ্যান কৰে। কৰ্তব্যত নিষ্ঠা আৰু সততাৰে দায়িত্ব পালন কৰা বাবে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা সকলোৰে অভাজন হৈ পৰিছিল। ১৮৮১ চনত হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই সুদীৰ্ঘ কৰ্মময় জীৱনৰ পৰা অৱসৰ গ্ৰহণ কৰি গুৱাহাটীত স্থায়ীভাৱে বসতি কৰিবলৈ লয়। তেতিয়াৰ পৰাই তেওঁ আশাশুধীয়াভাৱে ভাষা আৰু সাহিত্যৰ চৰ্চাত নিজকে আত্মনিয়োগ কৰি তুলিলে। জটিল যুগসন্ধিৰ সময়ত মহান কৰ্মৰাজিৰে অসমীয়া ভাষা-

সাহিত্যিক চিৰযুগমীয়া কৰি তোলা এইজনা বুদ্ধিজীৱি, সমাজ-সংস্কাৰক, সাহিত্যিকৰ ১৮৯৬ চনত গুৱাহাটীৰ উজান বজাৰত থকা নিজা বাসভৱনত মৃত্যু হয়।

তীক্ষ্ণ বুদ্ধিসম্পন্ন আৰু অধ্যয়ন মনৰ গৰাকী হেমচন্দ্রই 'অৰুনোদই' কাকতৰ জৰিয়তে সাহিত্যিক জীৱন আৰম্ভ কৰে। পোনতে তেওঁ 'অৰুণোদয়' গোষ্ঠীৰ চক্রত সোমাব বিচৰা নাছিল কাৰণ তেওঁ 'অৰুণোদয়' নীতিৰ লগত একমত হব পৰা নাছিল যদিও লাহে লাহে তেওঁ এই পৰিধিৰ ভিতৰত সোমাই পৰিছিল। 'অৰুণোদয়'ত তেওঁ হ.স, হ.চ, হচশ, H. Chunder, এজন অচমিয়া জুবা সোণাৰচাঁদ ডেকা বৰুৱা ছদ্মনামেৰে 'অনেক বিয়া কৰা অজুগুত' (অৰুণোদয়, ১৮৫৬, এপ্রিল), 'আচৰিত গচ' (অৰুণোদয়, ১৮৫৭, জুন), 'স্ত্রী শিক্ষা' (অৰুণোদয়, ১৮৬১, মেই), 'দেশহিতৈষী শ্রীযুত অৰুণোদয়' (অৰুণোদয়, ১৮৬১, অক্তোবৰ) আদি প্রৱন্ধ লিখে। হেমচন্দ্র বৰুৱাই মিছনেৰীসকলে প্রৱর্তন কৰা উচ্চাৰণভিত্তিক বর্ণবিন্যাস সংশোধন কৰি সংস্কৃতমূলক কৰিবলৈ যত্ন কৰিছিল এনে কৰিলে অসমীয়া শব্দৰ বানান পদ্ধতি বৈজ্ঞানিক আৰু মূলানুগ হ'ব বুলি ভাবিছিল। "অসমীয়া ভাষাত তেওঁ তিনি হেজাৰ বছৰীয়া সংস্কৃত বর্ণবিন্যাসৰ পক্ষপাতী।" [১] (মহেশ্বৰ নেওগ সংক. আৰু পুনঃ অৰুনোদই (১৮৪৬-১৮৫৪) ভূমিকা, পৃ: ১৪৯)। তেওঁৰ একান্ত চেষ্টাৰ ফলতেই অসমীয়া ভাষাৰ প্রথমখন বাতৰি কাকত আৰু আলোচনী 'অৰুনোদই'ৰ নামটো ১৮৬১ চনৰ জানুৱাৰী মাহৰ পৰা 'অৰুণোদয়' হিচাপে প্রতিষ্ঠিত হ'ল।

ঊনবিংশ শতিকাৰ ভাষা সমস্যাৰ সময়ত যি ত্রিমুর্তিয়ে অসমীয়া ভাষাৰ প্রতিষ্ঠাৰ হকে যুঁজ দিছিল তেওঁলোকৰ ভিতৰত হেমচন্দ্র বৰুৱা আছিল অন্যতম। অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যলৈ উল্লেখযোগ্য অৱদান আগবঢ়াই যোৱা হেমচন্দ্র বৰুৱাৰ ৰচনাৰাজিক প্রধানতঃ দুটা ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি। ইয়াৰে এটা ভাগ হ'ল— ব্যঙ্গাত্মক আৰু আনটো ভাগ হৈছে ভাষা-সাহিত্য বিষয়ক। ভাষা-সাহিত্য বিষয়ক ৰচনাসমূহ প্রধানতঃ ব্যাকৰণ, অভিধান, পাঠ্যপুথি আৰু সাহিত্যৰ অন্যান্য ৰচনাসম্ভাৰ। তলত তেওঁৰ ৰচনাসমূহৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰা হ'ল- (১). অসমীয়া ভাষাৰ ব্যাকৰণ (১৮৫৯) (২) কানীয়াৰ কীর্ত্তন (১৮৬১) (৩) বাহিৰে বং চং, ভিতৰে কোৱা ভাতুৰী (১৮৭৬) (৪) আদিপাঠ (আগছোৱা ১৮৭৫; মাজছোৱা আৰু শেহছোৱা- (১৮৭৬)) (৫) অসমীয়া লৰাৰ ব্যাকৰণ (১৮৮৩) (৬) পাঠমালা (১৮৮৩) (৭) গা ভালে ৰাখিবৰ উপায় (১৮৮৩) (৮) Notes On The Marriage Systems Of The Peoples Of Assam (১৮৯২) (৯) হেমকোষ (১৯০০) (১০). পঢ়াশলীয়া অভিধান (১৮৯২) (১১). সংক্ষিপ্ত হেমকোষ (১৮৯৪) (১১). আসাম নিউজ (১৮৮২-১৮৮৫)

হেমচন্দ্র বৰুৱাই ১৮৫৯ খ্রীষ্টাব্দত অসমীয়া ভাষাৰ তৃতীয়খন ব্যাকৰণ 'অসমীয়া ভাষাৰ ব্যাকৰণ' লিখে। ইয়াৰ পূর্বে যি দুখন ব্যাকৰণ অসমীয়া ভাষাৰ বাবে লিখা হৈছিল সেই দুইখনেই ইংৰাজী ভাষাত লিখা। এই ব্যাকৰণখনেই হ'ল অসমীয়া ভাষাত লিখা প্রথমখন ব্যাকৰণ। মূল গ্রন্থখন দুষ্প্রাপ্য হোৱা বাবেই গ্রন্থখনৰ নাম বহুতে 'অসমীয়া ব্যাকৰণ' বুলিয়েই উল্লেখ কৰিছে। তদুপৰি লণ্ডনৰ 'ইণ্ডিয়া অফিচ লাইব্রেৰী'ৰ অসমীয়া গ্রন্থপঞ্জীৰ তালিকাতো হেমচন্দ্র বৰুৱাৰ ১৮৮৯ খ্রীঃত প্রকাশিত এই পুথিৰ নাম সন্নিৱিষ্ট হোৱা নাই। কিন্তু ইণ্ডিয়া অফিচ লাইব্রেৰীতো যিখন ব্যাকৰণৰ নাম পোৱা গৈছে সেইখন এই পুথিৰেই ১৮৭৩ খ্রীঃত নতুনকৈ প্রকাশ হোৱা 'অসমীয়া ব্যাকৰণ' বুলিহে আছে। এই দুই গ্রন্থ প্রসঙ্গত যোগেন্দ্র নাৰায়ণ ভূএঞাই কৈছে এনেদৰে—

"ইণ্ডিয়া অফিচ লাইব্রেৰীৰ তালিকাত হেমচন্দ্র বৰুৱাৰ যিখন গ্রন্থৰ নাম 'অসমীয়া ব্যাকৰণ' (Asamiya Vyakarana. Assamese Grammar, By Hemchandra Barua 2nd edition, p.p.8, (১২) বুলি মুদ্রিত হৈছে, সেই নামটো প্রকৃততে 'অসমীয়া ভাষাৰ ব্যাকৰণ'ৰ সংশোধিত সংস্কৰণ ৰূপত ১৮৭৩ চনত প্রকাশিত ব্যাকৰণখনৰহে।" [২] (যোগেন্দ্রনাৰায়ণ ভূএঞা, ঊনবিংশ শতিকাঃ সৃষ্টি আৰু চেতনা, ১৯৯৮, পৃ. ৩১) সংস্কৃত ব্যাকৰণৰ আর্হিত প্রণয়ণ কৰা এই ব্যাকৰণখন এঘাৰটা প্রকৰণত বিভক্ত। এই প্রকৰণবোৰ হ'ল ক্রমে— সন্ধি, শব্দবৃত্তি, কাৰক, সমাস, তদ্ধিত, অখ্যাত, কৃদন্ত, বাক্যবিন্যাস, অন্বয় আৰু চিহ্ন প্রকৰণ। মিছনেৰীসকলে দেখা নোপোৱা অসমীয়া ভাষাৰ স্বৰূপটো হেমচন্দ্র বৰুৱাই সদৰি কৰিছিল এই ব্যাকৰণখনৰ মাজত। এই ব্যাকৰণখনৰ উপৰি শিক্ষার্থীৰ প্রতি লক্ষ্য ৰাখি হেমচন্দ্র বৰুৱাই ১৮৮২ চনত 'অসমীয়া লৰাৰ ব্যাকৰণ' নামেৰে আন এখন ব্যাকৰণ পুথি ৰচনা কৰিছিল। পুথিখনৰ পাতনিত বৰুৱাই লিখিছে, "এই পুথিত অসমীয়া ভাষাৰ জানিবলগীয়া প্রায় সকলো কথাকে মুঠকৈ দিয়া হৈছে। লৰাবিলাকে ব্যাকৰণৰ সূত্রবোৰ মুখস্থ কৰিবলৈ

টান পায় ; এই কাৰণে ইয়াত অধিক সূত্ৰ নিদি শিকিব লগীয়া কথাবোৰ প্ৰায়ে উদাহৰণৰ দ্বাৰা বুজাবলৈ যত্ন কৰা গৈছে।'[৩] (যতীন্দ্ৰ নাথ গোস্বামী (সংকলন আৰু সম্পাদনাঃ হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা ৰচনাৱলী, ১৯৯৯, পৃ. ২৯৫)। ভাষা শিকিবলৈ হ'লে ব্যাকৰণ আৰু অভিধানৰ প্ৰয়োজন। অসমবাসীৰ সেই প্ৰয়োজন পূৰণাৰ্থে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই তেওঁৰ জীৱনজোৰা সাধনাৰ ফলস্বৰূপে 'হেমকোষ' দি গ'ল। ডেকা-বুঢ়া সকলোৰে মন পৰশি যাব পৰাকৈ উপযোগী 'হেমকোষে'ই আছিল ঊনবিংশ শতিকাৰ ভাষা শিক্ষাৰ একমাত্ৰ কণাৰ লাখুটি স্বৰূপ। "এই হেমকোষ দ্বিতীয় অসমীয়া অভিধান আৰু ইয়াত ব্ৰহ্মন চাহাবৰ অভিধানতকৈ প্ৰায় আঠ হাজাৰ শব্দ অধিক পোৱা যায়।"[৪] (সত্যেন্দ্ৰ নাথ শৰ্মা, অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, পৃ. ২৬৭)। অৱশ্যে এই অভিধানখন তেওঁৰ জীৱনকালত প্ৰকাশ হোৱা নাছিল। ১৯০০ চনত অভিধানখন মৰণোত্তৰভাৱে হেমচন্দ্ৰ গোস্বামী আৰু কেপ্তেইন গৰ্ডন চাহাবৰ যত্নত ছপা হৈ ওলাইছিল। এই 'হেমকোষে'ই অসমীয়া বানান ৰীতিক এক চিৰস্থায়ী ৰূপ প্ৰদান কৰিলে। হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ আন সকলো ৰচনা বাদ দিলে কেৱলমাত্ৰ 'হেমকোষে'ও তেওঁক চিৰকাল অমৰ কৰি ৰাখিব। এই ক্ষেত্ৰত পদ্মনাথ গোহাঞিবৰুৱাই কোৱা কথাখিনি উল্লেখযোগ্য ঃ

হেমৰ কোষেৰে ওখ দৌল বান্ধি
ভাষাক সাৰথি ধৰি, নুমাবলগীয়া
অসমীয়া নাম ৰাখিলে জিলিকা কৰি।

'হেমকোষ' অভিধানৰ উপৰিও হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই আৰু দুখন অভিধান ৰচনা কৰিছিল। তাৰে এখন হ'ল 'পঢ়াশলীয়া অভিধান' (১৮৯২) আৰু আনখন হ'ল 'সংক্ষিপ্ত হেমকোষ', এই অভিধানখন 'পঢ়াশলীয়া অভিধান'ৰ ওলোৱাৰ দুবছৰৰ পিছত প্ৰকাশ পায়। "সংক্ষিপ্ত হেমকোষ বৃহৎ হেমকোষৰ সংক্ষিপ্ত সংস্কৰণ।"[৫] (যতীন্দ্ৰনাথ গোস্বামী, 'অসমীয়া ভাষাৰ ওজা হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা' পৃষ্ঠা ১০১) অৱশ্যে এই অভিধানখনৰ পাণ্ডুলিপিটো বতমানলৈকে পাবলৈ সক্ষম হোৱা নাই। উপৰোক্ত এই দুইখন অভিধানক সত্যেন্দ্ৰনাৰায়ণ গোস্বামীয়ে "হেমকোষ ৰচনাৰ ক্ষেত্ৰত ওপজা উপসৃষ্টি"[৬] বুলি মন্তব্য কৰিছে। (সত্যেন্দ্ৰনাৰায়ণ গোস্বামী, 'হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ সাহিত্য প্ৰতিভা' পৃ. ৪২, ১৯৮৬))। তদুপৰি হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই হেমচন্দ্ৰ দেৱশৰ্মা নামেৰে ঈশ্বৰচন্দ্ৰ বিদ্যাসাগৰৰ 'বৰ্ণ পৰিচয়'ৰ পৰোক্ষ প্ৰভাৱৰ আহি লৈ 'আদিপাঠ' নামৰ পঢ়াশলীয়া পুথিখন ৰচনা কৰিছিল। যিখন পুথিয়ে সেই সময়ত অসমীয়া জাতিৰ এটা ডাঙৰ অভাৱ পূৰণ কৰিছিল। "আদিপাঠেই অসমীয়া ভাষাত পোনপ্ৰথমে লৰা-ছোৱালীক আখৰ চিনাব পৰা কিতাপ"[৭] (দীননাথ শৰ্মা,'হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা' পৃষ্ঠা ১৫, ১৯৫৪)। তিনিটা ছোৱাত বিভক্ত পুথিখনৰ আগছোৱা ১৮৭৫ চনত, মাজ আৰু শেহছোৱা ১৮৭৬ চনত কলিকতাৰ মিছন প্ৰেছৰ পৰা মুদ্ৰিত হৈছিল। "আদিপাঠৰ আগছোৱাত অনুস্বাৰ, বিসৰ্গকে ধৰি যোল্লটা আৰু শব্দৰ সংক্ষেপ অৰ্থত আকৌ ঋ, ৯,৯৯ এই তিনিটা আখৰৰ উচ্চাৰণ অসমীয়া ভাষাত নাই বুলিও কৈছে। সেইদৰে ব্যঞ্জনবৰ্ণৰ তালিকাত ড়, ঢ়, য়,ৎ, ঁ এইকেইটা বৰ্ণ নাই বুলি উল্লেখ কৰিছে। ক্ষ কে ধৰি ব্যঞ্জনবৰ্ণ চৌত্ৰিশটা বুলি কৈছে। বিদ্যাসাগৰৰ দৰে অযথা আখৰ বৰুৱাদেৰে তালিকাত সংযোগ কৰা নাই।"[৮] (যতীন্দ্ৰনাথ গোস্বামী, ভাষাৰ ওজা হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা আৰু অসমীয়া সাহিত্য, পৃ. ১৪১) আদিপাঠৰ মাজছোৱা ঊনৈশ পৃষ্ঠাজোৰা সংযুক্ত বৰ্ণৰে সমৃদ্ধ। ইয়াত অন্তৰ্ভুক্ত কেতবোৰ অধ্যায় হ'ল ক্ৰমে- সংযোগী আখৰ; সংযোগী শব্দ, য-কাৰ, ৰ-কাৰ,ৰেফ আদি। আদিপাঠৰ শেহছোৱা তেইশ পৃষ্ঠাৰে পৰিপূৰ্ণ। ইয়াত অন্তৰ্ভুক্ত পাঠবোৰ হ'ল- সজ আলচ, লৰা কালহে বিদ্যা শিকাৰ সময়, ভাইয়া ভনীয়াক মৰম কৰিবা, তোমাৰ পিতৃ-মাতৃক সেৱা ভক্তি কৰিবা, দুখীয়াক পুতৌ কৰিবা, আপোনাৰ ব্যৱসায় নেৰিবা আদি। এই পাঠবোৰ সহজ-সৰল, আৰ্দশপূৰ্ণ নীতি-কথাৰে পূৰ্ণ। স্বদেশপ্ৰীতি আৰু জাতীয়তাবোধৰ ভাৱধাৰা প্ৰৱাহিত এই পাঠবোৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ ভৱিষৎত জীৱনত চৰিত্ৰ গঠনৰ বাবেও ৰক্ষা কবচ স্বৰূপ। হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই বিভিন্ন সংস্কৃত আৰু ইংৰাজী গল্পৰ ভাঙনিৰে ৰচনা কৰা 'পাঠমালা' আন এখন পঢ়াশলীয়া পুথি। পুথিখন ১৩২ পৃষ্ঠা জোৰা আৰু পাঁচোটি অধ্যায়ত বিভক্ত। ইয়াৰে প্ৰথম অধ্যায়ত পঞ্চতন্ত্ৰৰ দহোটি আখ্যান, দ্বিতীয় অধ্যায়ত আঠোটি নীতি উপদেশমূলক অৰ্থাৎ চিন্তামূলক ৰচনা, তৃতীয় অধ্যায়ত জীৱ-জন্তু বিষয়ক চৈধ্যটা পাঠ, চতুৰ্থ অধ্যায়ত দুজনা ব্যক্তিৰ সংক্ষিপ্ত জীৱনীৰ লগতে গছ-গছনি, ধাতু বিষয়ক বাৰটি প্ৰৱন্ধ আৰু পঞ্চম তথা অন্তিম অধ্যায়ত মহাভাৰত, ৰামায়ণ পুৰাণৰ আধাৰত লিখা এঘাৰটি আখ্যান সন্নিৱিষ্ট হৈছে। পুথিখন ঊনবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া পঢ়াশলীয়া পুথিৰ তালিকাত এক যুগমীয়া কীৰ্তি স্বৰূপ আছিল। পুথিখনৰ সন্দৰ্ভত জ্ঞাননাথ বৰাই কৰা মন্তব্যটো

উল্লেখযোগ্য- "পাঠ-মালাই আমাৰ প্ৰথম শিক্ষাদাতা গুৰু আছিল।"[৯] (জ্ঞাননাথ বৰা, 'মোৰ জীৱনৰ সোঁৱৰণ' মণিদীপ সপ্তম বছৰ, পৃষ্ঠা ৫২৪, ১৯৬৭)। হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই ইংৰাজী Way to Health পুথিখন অসমীয়া ভাষালৈ 'স্বাস্থ্য ৰক্ষা বা গা ভালে ৰাখিবৰ উপায়' নামেৰে অনুবাদ কৰিছে। এই পুথিখনো শিশুৰ উপযোগীকৈ বৰুৱাই ৰচনা কৰিছে। শিশুসকলৰ স্বাস্থ্য সম্পৰ্কত ভালেমান সহজ-সৰল বিধান উক্ত পুথিখনত আছে। "স্বাস্থ্য বিষয়ত এইখনেই সৰ্বপ্ৰথম অসমীয়া পাঠ্য কিতাপ।"[১০] (সৰ্বেশ্বৰ শৰ্মা, কটকী, 'হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ জীৱন চৰিত' পৃষ্ঠা ৬৯, ১৯২৭)। উপৰোক্ত তিনিওখন পঢ়াশলীয়া পুথি ছাত্ৰৰ উপযোগীকৈ প্ৰণয়ণ কৰি তোলাৰ বাবে সেই সময়ৰ চৰকাৰৰ পৰা তেওঁ ১১০০ টকা পুৰস্কাৰ লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল।

ইয়াৰোপৰি হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই মৃত্যুৰ চাৰি বছৰৰ পূৰ্বে অৰ্থাৎ ১৮৯২ খ্ৰীষ্টাব্দত ইংৰাজীত Notes on the Marriage System of the people of Assam শীৰ্ষক এখনি পুস্তিকা প্ৰকাশ কৰিছিল। পুথিখনে তেওঁৰ ইংৰাজী ভাষাত থকা পাণ্ডিত্যৰ কথা প্ৰকাশ কৰিছে। সম্পূৰ্ণ ষাঠি পৃষ্ঠাজোৰা আৰু আঠোটা বিভাগত বিভক্ত উক্ত পুথিখনত অসমত বসবাস কৰা বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ বিবাহ পদ্ধতি সম্পৰ্কে বিদেশী লোকসকলক জনাবলৈ প্ৰয়াস কৰা দেখা যায়। ব্যাকৰণ, অভিধান, পঢ়াশলীয়া পুথি ৰচনাৰ উপৰিও বৰুৱাদেৱে সৃজনীমূলক সাহিত্য ৰচনাতো মনোনিৱেশ কৰিছিল। অসমীয়া সাহিত্যত ব্যঙ্গ আৰু হাস্যৰসাত্মক সাহিত্যৰ পৰম্পৰা গঢ়ি তোলাত হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ স্থান অদ্বিতীয়। তেওঁৰে কাপনিসৃত কলমৰ পৰা দুখনকৈ ব্যংগ ৰচনা নিগৰি ওলাইছিল। তাৰে এখন হ'ল- 'কানীয়া-কীৰ্তন' আৰু আনখন হ'ল 'বাহিৰে ৰং চং ভিতৰে কোৱাভাতুৰি'। দুয়োখন পুথি ভণ্ড লোকসকলৰ বাবে যেন দুপাত ক্ষুৰধাৰ অস্ত্ৰ আছিল। ইয়াৰে 'কানীয়া-কীৰ্তন' নাটকখন গুণাভিৰাম বৰুৱা ৰচিত প্ৰথম অসমীয়া সামাজিক নাট 'ৰাম নৱমী'ৰ চাৰি বছৰৰ পিছত প্ৰকাশিত হয়। সেইফালৰ পৰা এইখন দ্বিতীয় আধুনিক অসমীয়া সামাজিক নাটক। কানি ৰবিহৰ পাকচক্ৰই এচাম অসমীয়া লোকৰ জীৱন কিদৰে বিষময় কৰি তুলিছে। তাৰ প্ৰতিচ্ছবি এই নাটকখনত বিদ্যমান। তদুপৰি ধৰ্মৰ নামত চলা ব্যভিচাৰ, ভণ্ডামিৰ চিত্ৰও নাটকখনত মুকলিকৈ দেখুওৱা হৈছে। বৰুৱাদেৱৰ আনখন উপন্যাসধৰ্মী ৰচনা " 'বাহিৰে ৰং চং ভিতৰে কোৱা ভাতুৰী'ত অসমীয়া সমাজৰ বাহ্যিক নৈষ্ঠিকতা আৰু আচাৰ-ব্যৱহাৰৰ অন্তৰালত থকা ব্যভিচাৰ, ভণ্ডামি, দুৰ্নীতিৰ বিকট ৰূপটো প্ৰকাশ কৰিছে। ধৰ্মৰ নামত গোসাঁই, মহন্ত-ব্ৰাহ্মণৰ ব্যভিচাৰ, ভূত-প্ৰেত আদিত বিশ্বাস আৰু আসুৰিক চিকিৎসা, কুসংস্কাৰ, আদালতৰ দুৰ্নীতি আৰু অনভিজ্ঞ ইংৰাজ বিষয়াৰ হাস্যাস্পদ ব্যৱহাৰ আদি কোৱাভাতুৰীত তীব্ৰ ব্যঙ্গৰূপত প্ৰকাশ পাইছে।"[১১] (সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা, অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, পৃ. ২৬৭) হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই অসমীয়া-ইংৰাজী ভাষাত 'আসাম নিউজ' নামৰ সাদিনীয়া বাতৰি-কাকত এখনো সম্পাদনা কৰিছিল। এই কাকতখন ১৮৮২ চনৰ পৰা ১৮৮৫ চনলৈ প্ৰকাশিত হৈছিল। কাকতখনৰ সমাদৰ সৰ্বজন বিদিত। কাকতখনৰ বাবে পঠিওৱা লেখনীসমূহ সম্পাদকৰ নিজস্ব বাছনি। তদুপৰি অশুদ্ধ আখৰেৰে লিখা প্ৰৱন্ধ এই কাকতত প্ৰকাশ হোৱা নাছিল। কোনো ঠাইত অশুদ্ধ পালেই নিৰ্মমভাৱে সমিধান দিছিল এনেদৰেঃ 'আপোনাৰ চিঠিয়ে আমাৰ ফটা কাকতৰ পাচিতহে ঠাই পাইছে।' আখৰজোঁটনিৰ ক্ষেত্ৰত এক সুনিৰ্দিষ্ট ৰূপ প্ৰদান কৰোৱা 'আসাম নিউজে' বেজবৰুৱাৰ দৰে সাহিত্যিকো প্ৰভাৱান্বিত কৰিছিল। তেওঁ এই প্ৰভাৱৰ কথা স্বীকাৰ কৰি নিজৰ আত্মজীৱনীত সেই কথা উল্লেখ কৰিছে এনেদৰেঃ " বাস্তৱিকতে আসাম নিউচ পঢ়ি, তাৰ অসমীয়া লিখাৰ গঢ়ৰ ফালে ভালকৈ মন দিহে প্ৰথমতে মই অসমীয়া ভাষাত ৰচনা লিখিবলৈ শিকোঁ। আসাম নিউজে নিশ্চয় অসমীয়া ভাষাত যুগান্তৰ উপস্থিত কৰিলে।"[১২] (লচৌনাথ বেজবৰুৱা, মোৰ জীৱন সোঁৱৰণ পৃ. ৯১, ১৯৯৯)

২.০ হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ সাহিত্যৰ ভাষা ঃ

অসমীয়া গদ্যৰ ক্ৰমবিকাশৰ ইতিহাসত উল্লেখযোগ্য ভূমিকা গ্ৰহণ কৰা ব্যক্তিজন হ'ল হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা। তেওঁৰ আপ্ৰাণ চেষ্টাৰ ফলতেই আধুনিক অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যই বৰ্তমানৰ ৰূপ লাভ কৰিলে। 'অৰুণোদয়' কাকততে লেখক হিচাপে আত্মপ্ৰকাশ ঘটা হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ প্ৰথম অৱস্থাৰ ৰচনাসমূহত মিছনাৰীসকলৰ দ্বাৰা প্ৰতিষ্ঠিত বৰ্ণবিন্যাস আৰু গদ্যৰীতিৰ প্ৰভাৱ পৰা দেখা গ'লেও আখৰজোঁটনিৰ ক্ষেত্ৰত মিছনাৰীসকলৰ উচ্চাৰণভিত্তিক আখৰজোঁটনিৰ বিৰোধী আছিল। তেওঁ বেছিভাগ শব্দৰ আখৰজোঁটনিৰ ৰূপ দিছিল সংস্কৃত বৰ্ণবিন্যাসৰ ৰীতি অনুসৰিহে। হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই নিৰ্ধাৰিত কৰি দিয়া আখৰজোঁটনিৰ স্পষ্ট ৰূপ 'অসমীয়া

ব্যাকৰণ'ৰ মাজত অঙ্কিত হৈছে। তেওঁৰ মতে— "অসমীয়া শব্দবিলাকৰ মূলবিলাক যি আখৰেৰে লিখা যায় উচ্চাৰণ লৰ চৰ নকৰাকৈ পৰা যায় মানে অসমীয়াত সেই আখৰ ৰাখিব লাগে।" [১৩] (হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা, অসমীয়া ব্যাকৰণ, ১৯৮৪, পৃ. ১১) সেয়ে তেওঁৰ পৰৱৰ্তীকালৰ ৰচনাসমূহত সংস্কৃতৰ এই বৰ্ণবিন্যাস ৰীতি প্ৰয়োগ কৰিছিল। ১৮৬১ চনৰ পৰা প্ৰকাশিত 'অৰুণোদয়' কাকতে তেওঁৰ দ্বাৰা নিৰ্দেশিত বৰ্ণবিন্যাস পদ্ধতিকেই গ্ৰহণ কৰিবলৈ ধৰে। তদুপৰি ছ, ঝ, য, ক্ষ আদি আখৰৰ প্ৰয়োগ হৈছিল। মিছনেৰীসকলে সাধাৰণতে ব্যৱহাৰ নকৰা 'ৱ' আখৰৰ বহুল ব্যৱহাৰৰ বাবে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই অহোপুৰুষাৰ্থ কৰিছিল। অৱশ্যে মিছনেৰীসকলে 'ৱ' আখৰৰ ব্যৱহাৰ একেবাৰেই যে কৰা নাছিল এনে নহয়, মিছনেৰীসকলৰ ৰচনাত সীমিতভাৱে হলেও 'ৱ' আখৰৰ ব্যৱহাৰ হৈছিল। 'অৰুনোদই'ৰ প্ৰথম সংখ্যাটোতে (১৮৪৬, জানুৱাৰী) সিৱসাগৱ, দেৱতা আদি শব্দত 'ৱ' আখৰটো ব্যৱহৃত হয়। মিছনেৰীসকলে য'তে ত'তে 'ৱ' ব্যৱহাৰ নকৰি উচ্চাৰণ অনুযায়ী 'আ' হে ব্যৱহাৰ কৰিছিল— উক্ত প্ৰথম সংখ্যা 'অৰুনোদই'তে লগোআ, জানোআৰি ইত্যাদি। বোধহয় হেমচন্দ্ৰই 'ৱ' আখৰৰ বহল প্ৰয়োগ কৰি দিছিল। মুঠতে ক'বলৈ গ'লে মিছনেৰীসকলৰ লগত বৰ্ণবিন্যাস শুধৰণিৰ বাবে কৰা যুঁজত হেমচন্দ্ৰ নিৰ্দেশিত পথেই প্ৰতিষ্ঠা হৈছিল। এই প্ৰসঙ্গত মহেশ্বৰ নেওগে কোৱা কথাষাৰ উদ্ধৃত কৰিব পাৰি— "'অৰুনোদই' নামটো ১৮৬১ চনৰ জানুৱাৰী মাহৰ উইলিয়াম ৱাৰ্ডৰ সম্পাদিত ৰূপত 'অৰুণোদয়' হ'ল আৰু সমস্ত কাকতখনিত আজিৰ দিনৰ আৰ্হিৰ হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা নিৰ্দিষ্ট বৰ্ণবিন্যাস গ্ৰহণ কৰা হ'ল।" [১৪] (বিৰিঞ্চি কুমাৰ বৰুৱা (সঙ্কলয়িতা) ঃ অৰুনোদই'ৰ ধলফাট, ১৯৬৫, ভূমিকা, পৃ, ৮৩) অসমীয়া ভাষাক মৰ্যাদাৰ আসনত অধিষ্ঠিত কৰা তেওঁৰ 'হেমকোষ' নামৰ সোণৰ ভঁৰালসদৃশ অভিধানখনৰ বৰ্ণবিন্যাসেই পৰৱৰ্তী সময়ৰ অসমীয়া ভাষাৰ এক স্থিৰ ৰূপ নিৰ্দ্ধাৰণ কৰে। এইক্ষেত্ৰত সমালোচক যোগেশ দাসে কৈছে এনেদৰে—

"হেমচন্দ্ৰৰ ভাষাই নিশ্চয় আজি চলি থকা নাই — আজি নালাগে, তেওঁৰ পৰমভক্ত লক্ষীনাথ বেজবৰুৱাৰ দিনতে ভাষাৰ গঢ় বেলেগ হৈ গৈছিল। কিন্তু হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই সংস্কৃতৰ সহায় লৈ যি ব্যাকৰণ প্ৰস্তুত কৰিলে আৰু শব্দাৱলীৰ মূল বিচাৰ কৰি যি অভিধান ৰচনা কৰিলে তাৰ ভিত্তিতেই আধুনিক অসমীয়া ভাষাৰ এক পদ্ধতি আৰম্ভ হৈ গল। ইয়াত নিশ্চয় মিছনেৰি অনুসৃত কাব্য-ভংগীয়েই আছিল; কিন্তু ইংৰাজীৰ প্ৰভাৱ সত্বেও ইয়াত বিলাতী সুৰ নাই; তদুপৰি বিজ্ঞানসম্মত পদ্ধতিৰে শব্দৰ জোঁটনি আৰু মিছনেৰিৰ দোষযুক্ত জতুৱা ঠাঁচৰ প্ৰয়োগৰ ফলত ভাষা অধিক সফল, অধিক ক্ৰিয়াশীল, অধিক গ্ৰহণযোগ্য হৈ উঠিল।" [১৫] (যোগেশ দাস। "অৰুনোদইৰ ভাষাৰ প্ৰতি হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ প্ৰত্যাহ্বানঃ আসাম নিউজৰ অৱদান।"; (শইকীয়া। ৯৯-১০৭) ধ্বনিৰ ক্ষেত্ৰত এটা ধ্বনিৰ ঠাইত আন এটা ধ্বনিৰ ব্যৱহাৰ তেওঁৰ ৰচনাত দেখিবলৈ পোৱা যায়। স্বৰ আৰু ব্যঞ্জন এই দুয়োটা ধ্বনিৰ ক্ষেত্ৰতে এই পৰিৱৰ্তন দেখিবলৈ পোৱা যায়। স্বৰধ্বনিৰ ক্ষেত্ৰত দেখা এনে পৰিৱৰ্তনবোৰ হ'ল যেনে—

অ ≥ ও বহক ≥ বহোক (পৃ. ১), ধৰক ≥ ধৰোক (পৃ. ১); ই ≥ ও, সিপিনে ≥ সিপোনে (পৃ. ৩১); উ ≥ ই, পুতেক ≥ পিতেক (পৃ. ৩); উ ≥ ঊ , সৰু ≥ সৰ্দ্ধ (পৃ. ৪৫০); উ ≥ ও বৈকুণ্ঠপয়াণ ≥ বৈকোণ্ঠপয়াণ (পৃ. ৪৫), ভুল ≥ ভোল (পৃ. ৩১); ঋ ≥ ইৰ দৃঢ় ≥ দিৰিঢ় (পৃ. ৩); এ ≥ উ হেনো ≥ হুনু (পৃ. ১১); ও ≥ উ বোপাই ≥ বুপাই (পৃ. ৯), হওক ≥ হউক (পৃ.) ; ঔ ≥ অ ঔষধ ≥ অষধ (পৃ. ১)

কেতিয়াবা মুখ্যৰূপত বহিব লগা স্থানত গৌণৰূপ ব্যৱহাৰ হৈছে। যেনে- ও ≥ ো হওক ≥ হোক (পৃ. ৪); আকৌ কেতিয়াবা 'ঔ' কাৰৰ গৌণৰূপ হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ ভাষাত 'ও' হিচাপে ব্যৱহাৰ হৈছে। যেনে- আকৌ ≥ আকও (পৃ. ২)

স্বৰধ্বনিৰ লেখীয়াকৈ ব্যঞ্জন ধ্বনিৰ ক্ষেত্ৰতো কিছু পৰিৱৰ্তন তেওঁৰ ৰচনাত দেখিবলৈ পোৱা যায়। এই পৰিৱৰ্তনবোৰ হ'ল যেনে—

চ ≥ স আচল ≥ আসল (৩১); জ ≥ ঝ বুজোৱা ≥ বুঝোয়া (পৃ. ২১) ত ≥ ৎ ঠাইত ≥ ঠাইৎ; ৰ ≥ ৱ, ড় নৰসিংহৰ ≥ নৱসিংহৰ (পৃ. ৪৩), ভঁৰাল ≥ ভঁড়াল (পৃ. ৩০); শ ≥ খ মাজনিশা ≥ মাজনিখা (পৃ. ৭), ৰাশি ≥ ৰাখি (পৃ. ৪৪), য ≥ খ বিষ ≥ বিখ (পৃ. ৭]; ক্ষ ≥ খ শুভক্ষণত ≥ শুভ খেণত (পৃ. ৩); ঙ ≥ ঙ্গ ডাঙৰ ≥ ডাঙ্গৰ (পৃ.৪৪২]

হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ ৰচনাৰ মাজত কোনো কোনো ঠাইত 'ৱ' ৰ ঠাইত 'য়' ব্যৱহাৰ হোৱাও দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে- ৱ ≥ য় ধোঁৱাৰ ≥ ধূয়াৰ (পৃ. ৪৫৯),

হোৱা ≥ হোয়া (পৃ. ৪৫৯);

হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ ৰচনাত ব্যৱহৃত কেতবোৰ শব্দ স্বৰভক্তি, অপিনিহিতি, দ্বিস্বৰ বা যুক্তস্বৰ সৰলীকৰণৰ ফল। যেনে- ধৰ্ম ≥ ধৰম (পৃ. ৪), জন্ম ≥ জনম (পৃ. ৪), শক্তি ≥ শকতি (পৃ. ৪), ৰক্ষা ≥ ৰইখা (পৃ. ৩১), সৰ্বভক্ষ ≥ সৰ্ব্বভইখ (পৃ. ৩), ৰাজ্য ≥ ৰাইজ (পৃ. ৪১), ইচ্ছা ≥ ইচা (পৃ. ২০), ঈশ্বৰ ≥ ঈচৰ (পৃ. ৩১), প্ৰসন্ন ≥ প্ৰসন (পৃ. ৪৫), মূল্য ≥ মূইল (পৃ. ৪৫), সত্য ≥ সইত (পৃ. ৮) আদি। ৰেফযুক্ত দিত্বব্যঞ্জনৰ তেওঁৰ ভাষাৰ আন এক বিশেষত্ব। যেনে- আৰ্জ্জি (পৃ. ৫১), আশীৰ্ব্বাদ (পৃ. ২২) ইত্যাদি।

ৰূপগত দিশলৈ মন কৰিলে দেখা যায় যে তেওঁৰ ৰচনা বা সৃষ্টিৰাজিবোৰত জনসমাজত প্ৰচলিত কিছুমান সুন্দৰ ৰূপৰ ব্যৱহাৰ হৈছে। সুন্দৰ বিশেষণ শব্দৰ প্ৰয়োগ তেওঁৰ ৰচনাৰ এক উল্লেখযোগ্য বিশেষত্ব। তেওঁ ৰচনাত পৰিলক্ষিত হোৱা কেতবোৰ আকৰ্ষণীয় বিশেষণ শব্দ হ'ল এনেধৰণৰ- তিৰী-লগীয়া ভকতে (পৃ. ২৯), ৰোৱাতী মাটি (পৃ. ৩০), উধনীয়া খোপা (পৃ. ৩৬), প্ৰবসুৱা ঘৰত (পৃ. ৩৭)

নিদিষ্টৰ্তাবাচক প্ৰত্যয় হিচাপে -টা, -টি, -টী, -জুপি, -জোপা, -খান, -খনি, -ধাৰি, -খুতুৰা আদি প্ৰত্যয় ব্যৱহাৰ কৰিছে। যেনে- -টা ঃ তিনটা (২৯) চাইটা (পৃ. ৪৬০) ;-টি ঃ সন্তানটি (পৃ. ১০৫), তিনটি (২৯); -টীঃ সাতুটী, পাঁচুটী, তিনিটী, আইটী (৯); -জনা ঃ দুজনা (হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা ৰচনাৱলী, পৃ. ১); -জনিঃ গৰুজনী (৩০); -জুপি ঃ এজুপি উত্তম গছ (পৃ. ৮৮); -জোপা ঃ এজোপা গছৰ (পৃ. ৫৬); -খান ঃ এখান মিছা তামৰ ফলি (পৃ. ৩০), সভাখান (৭); নৈখান (৭), মুখখান (৮); -খানিঃ তিনিখানি (পৃ. ২৯), দুখানি (৩০); -খনি ঃ হাত কেইখনি (পৃ. ৩৩); -খুতুৰা ঃ মাছ এখুতুৰা (পৃ. ৩৭); -ধাৰি ঃ ঢোপ এধাৰি (পৃ. ১৬), -থোকা ঃ পকা কল এথোকা (পৃ. ১০) আদি।

তাৰোপৰি অনিৰ্দিষ্টতাবাচক প্ৰত্যয়ৰ ব্যৱহাৰো হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ সাহিত্যৰ ভাষাত প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে- মান ঃ একুৰি মান (পৃ. ৩২), ভালেমান (৬); -চাৰেক ঃ কল গোটাচাৰেক (পৃ. ৮); -ফেৰি ঃ দৰব-ফেৰি (পৃ. ২), এফেৰি (৯); কেইবা ঃ কেইবা সপ্তাহলৈ (পৃ. ৭৪), কেইবা খানো (৩০) ইত্যাদি।

বহুবচন বুজাবৰ বাবে তেওঁ -বোৰ, -বিলাক, -সকল, -সোপা, -হঁত আদি বহুবচনাত্মক প্ৰত্যয়বো ব্যৱহাৰো কৰিছে। যেনে- বোৰ ঃ লৰাবোৰ (পৃ. ৩৫৯); বিলাক ঃ পিতৃবিলাক (পৃ. ৪৫৮); সকল ঃ খেতিয়কসকল (পৃ. ৪৬০); সোপাঃ এসোপা (পৃ. ১); হঁত ঃ মগনীয়াহঁতও (পৃ. ৪৬০) আদি।

হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ ৰচনাত সৰ্বনাম শব্দ হিচাপে আমি, আমাৰ, তুমি, তোমাৰ, তাৰ, তোমালোক, তেওঁক, তেওঁবিলাক আদিৰ ব্যৱহাৰ হোৱা দেখা যায়।

প্ৰাচীন অসমীয়া গদ্যত ব্যৱহাৰ হোৱাৰ দৰে আত্মবাচক সৰ্বনাম 'নিজ'ৰ ঠাইত 'আপোনাৰ' ব্যৱহাৰ হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ ৰচনাতো পৰিদৃশ্যমান হোৱা দেখা যায়। যেনে— যি জনে ধন আৰ্জ্জি আপোনাৰ পেট মাথোন পোহে, (পৃ. ৫২); তাতে বুঢ়াই উত্তৰ কৰিলে, "সি মোৰ আপোনাৰ বস্তু।" (পৃ. ৫৪); যি মানুহে কোনো অনিশ্চিত বস্তুৰ আশাৰে আপোনাৰ হাতত থকা বস্তুক পৰিত্যাগ কৰে, সি কেৱল সেই হাতৰ বস্তুকে মাথোন হেৰুৱায় এনে নহয়, আশা কৰা বস্তুকো নেপাই দুখত পৰে। (পৃ. ৫৯) আদি।

তেওঁৰ ভাষাত একেলগে দুটা অব্যয় শব্দৰ ব্যৱহাৰ কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। যেনে- আৰু যদি কোনোবাই ঘৈণীয়েকক অলপ মৰম কৰে আৰু ঘৈণীয়েকেও পৈয়েকে সৈতে মুকলি মুৰে কথা বাৰ্ত্তা কয় আৰু হাঁহে, মাতে তেন্তে তাক তিৰোতা সেৰুয়া আৰু ঘৈণীয়েকক নিলাজী বুলি আনে উপহাস কৰে, (=.৪৫৯); কিন্তু যদি হে নেপায় তেন্তে নি ব্যৱসায়ো নজনাৰ গুণে বৰ দুখত পৰে। (=.৬০);

কোনো কোনো ক্ষেত্ৰত কাৰক বিভক্তিৰ সুনিৰ্দিষ্ট প্ৰয়োগ তেওঁৰ ৰচনাত দেখিবলৈ পোৱা নাযায়। কেতিয়াবা কৰ্ম কাৰকৰ দ্বিতীয়া বিভক্তি -কৰ ঠাইত সপ্তমী -ত বিভক্তিৰ প্ৰয়োগ দেখিবলৈ পোৱা যায়। যেনে- এই কথা আলধৰা আতৈয়ে গৈ মেধিত কলে, মেধি বিমোৰহু গৰু নিদিলে গোসাঁই ঈশ্বৰৰ ভোজন নহয়, (পৃ. ৩০) কেতিয়াবা সপ্তমী বিভক্তিৰ চিন 'ত'ৰ ঠাইত 'ত্' হিচাপে লিখা দেখা যায়। যেনে- যি লোক তোমাত্কৈ কোনো কথাত শ্ৰেষ্ঠ, (৬১), সেই পিতৃ-মাতৃত্কৈ মনুষ্যৰ ভিতৰত আন কোনো আমাৰ অধিক মান্য নহয়। (পৃ. ৬০)

ইয়াৰোপৰি হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ ভাষাত কেতিয়াবা পৰা পৰসৰ্গটি 'পেৰা' হিচাপে ব্যৱহাৰ হৈছে। এই বিশেষত্বটি গুণাভিৰামৰ বৰুৱাৰ ৰচনাতো পৰিলক্ষিত হয়। হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ ৰচনাৰাজিত দেখা এনে বিশেষত্ববোৰ হ'ল যেনে- ডাঙ্গৰীয়াৰ ঘৰত সৰুৰেপেৰা ধিতিঙ্গালিকৈ থাকি আমি মানুহ

গুচিলোঁ। (পৃ. ৯); সেই দিনাৰেপেৰা মোৰ গা-মূৰ বেয়া কৰিলে টিকিৰা দুটামান খাই দিওঁ, (পৃ. ৯); আমাৰ দেশৰ সম্ভ্ৰপেৰা মহন্তলৈকে কানি-নোখোৱা লোক কোন আছে? (পৃ. ১০)

হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ ৰচনাৰ মাজত তৎসম, অৰ্ধতৎসম, তদ্ভৱ, নিভাঁজ অসমীয়া শব্দৰ লগতে কামৰূপী শব্দৰো দুই-এঠাইত প্ৰয়োগ দেখা যায়। যেনে - তৎসম ঃ পিতৃ, অগ্নি, জন্ম, ঈশ্বৰ, পৃথিৱী, মনুষ্য, দেৱতা ইত্যাদি। তদ্ভৱঃ গিয়ান,ধৰম,ভকত ইত্যাদি।

নিভাঁজ অসমীয়া ঃ কোমল চাউল, তামোলছালি ইত্যাদি। কামৰূপী শব্দ ঃ ধুলা, পেৰা ইত্যাদি।

হাস্যৰস সৃষ্টিৰ বাবে তেওঁ নিজস্বভাৱেও বহুতো শব্দ সৃষ্টি কৰি লৈছিল। যেনে- তিৰী-লগীয়া, যোগাঁতী, লোটনি (পৃ. ১, ১, ৬)

অসমীয়া ভাষাৰ অনুকাৰ, অনুপ্ৰাস আদি শব্দৰ প্ৰয়োগ হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ ৰচনাতো দেখিবলৈ পোৱা যায়। যেনে- অনুকাৰ শব্দ ঃ ধিন-ধিন, ঘৰ-ঘৰ, তাক-তাক ইত্যাদি। অনুপ্ৰাস শব্দ ঃ প্ৰভু-ঈশ্বৰ, অষ্ঠ-কণ্ঠ, কেৰু-মণি, দন্দ-খৰিয়াল ইত্যাদি।

ব্যঙ্গ বিদ্ৰুপ বাণৰ ক্ষেত্ৰত ঠায়ে ঠায়ে হিন্দী বঙলা ভাষাৰ শব্দও ব্যৱহাৰ কৰিছে। যেনে- হিন্দী শব্দ ঃ আদমি, লেকিন, খুন, ফিৰ ইত্যাদি; বঙলা শব্দ ঃ হইতে, আমৰা ইত্যাদি। ইয়াৰোপৰি ইংৰাজী শব্দৰ পয়োভৰে তেওঁৰ ৰচনাৰ সৌষ্ঠৱ বৃদ্ধি কৰিছে। যেনে- কালেক্টৰী, চেক্ৰেটাৰী, চিভিলিয়ান, ডেপুটী ইন্সপেক্টৰ, ট্ৰেন্সলেটৰ, মেজৰ জেনেৰেল ইত্যাদি। আৰৱী,ফাৰ্চী শব্দ যেনে- উকীল, নবীজ, চিৰস্তাদাৰ আদিৰ প্ৰয়োগেও তেওঁৰ ৰচনাক চহকী কৰি তুলিছে। হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই 'অৰুনোদই' কাকতৰ বৰ্ণবিন্যাস ৰীতিৰ বিৰোধিতা কৰাৰ দৰেই মিছনেৰী লিখকসকলৰ কৃত্ৰিম ভাষাৰ ঠাঁচৰ ঠাইত প্ৰতিষ্ঠা কৰিলে নিভাঁজ অসমীয়া ভাষাৰ ঠাঁচ। অসমীয়া ভাষাৰ জতুৱা ঠাঁচ, জতুৱা খণ্ডবাক্য, প্ৰবাদ, পটন্তৰ আদিৰ সুন্দৰ প্ৰয়োগ তেওঁৰ ভাষাত বিদ্যমান। যেনে- জতুৱা ঠাঁচঃ আখৈ ফুটাদি ফুটে, ওফন্দি গঙ্গাটোপ (পৃ. ২৯, ৩২); যোজনা পটন্তৰঃ বাৰেটা মাহৰ তেৰেটা জগৰ (পৃ. ১), অভ্যাসৰ নৰ কৰ্ণৰ পথে কৰে শৰ (পৃ. ৬), যেনে মাছ দেখে, তেনে জাল গাঁথিব পাৰে। (পৃ. ৬) আদি।

আৰু, কিন্তু আদি অব্যয় প্ৰয়োগেৰে বাক্যৰ আৰম্ভণি কৰা পৰম্পৰাটো বুৰঞ্জী পুথিত থকাৰ দৰে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ ৰচনাতো দেখিবলৈ পোৱা যায়। যেনে- আৰু জেষ্ঠৰ পৰকাল প্ৰাপ্তিৰ সময়ত বছেৰেকীয়া লৰা আছিলোঁ। (পৃ. ৪৫৩), কিন্তু তেওঁ নিজ কাৰ্য্য উপলক্ষে ফুৰি থাকিবলৈ বাধ্য হোৱাত তেওঁৰ সাহায্যৰ পৰিমান অধিক নাছিল (পৃ. ৪৫৫)।

বাক্য-গঠন ৰীতিৰ ক্ষেত্ৰত তেওঁৰ ৰচনাত ইংৰাজী ভাষাৰ প্ৰভাৱ সুস্পষ্ট। যেনে- "কোৱখনীয়া সত্ৰৰ গোবৰ্দ্ধন-দেউ আতা পৰম বৈষ্ণৱ, কংসৰজাৰ চন্দন-যোগাঁতী কুঁজী বাইৰ বংশত জাত, সাক্ষাত গুৰু জনৰ পৰা পৰমাৰ্থৰ ভাগ-পোৱা গোপীনাথ দেউ আতাৰ পৰি-নাতি। ঘোষা, কীৰ্ত্তন, ৰত্নাৱলী এই তিনিখানি শাস্ত্ৰ প্ৰভুৰ ওষ্ঠাগ্ৰ; ইয়াত বাজে গুণমালা, ভটিমা, চপয়, টোটয়, এইবিলাক হলে মুখে আখৈ ফুটাদি ফুটে। (পৃ. ২৯)

বৰুৱাৰ ৰচনাত ইংৰাজী ভাষাৰ প্ৰভাৱ থকাৰ উপৰিও কেতবোৰ বাক্য সম্পূৰ্ণ ইংৰাজীত লিখা দেখা গৈছে। যেনে- "What goes in does not defile man, but what comes out" (পৃ.৩৬), হেডবাবু— A rent case sir. (পৃ. ৩৭)

হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ ৰচনাৰ মাজত ভকতীয়া কথ্যৰীতিৰ ঠাঁচো বিদ্যমান। উদাহৰণস্বৰূপে 'কানীয়াৰ কীৰ্তন'ত থকা তেনে ঠাঁচৰ বাক্যাংশ তলত উদ্ধৃত কৰা হ'ল-

" ভদ্ৰেশ্বৰ- গোসাঁইদেউ বহোক, ভালেমান দিন দেখোঁ দেখা নাই, কলৈ নো যোৱা হৈছিল?

পদ্মপাণি - কৃষ্ণ শঙ্কৰ, (থঙ্গাত উপবেশন) ডাঙ্গৰীয়া বাপু, আমি মহাজন মানুহ, আন কিবা বিৰ্ত্তি আছে নে? শিচ কেইঘৰৰ পৰা যি পাওঁহক সেয়ে হে। তাতে এতিয়া ভাদত দুজনা গুৰুৰ কীৰ্ত্তন,

তাৰ পিচতে আতাৰ তিথিও পৰিব, এই দেখি শিচ গাঁৱলৈ যোৱা হৈছিল।

ভদ্ৰ- শৰীৰ দেখোঁ বৰ কৃশ, কি হৈছিল?

পদ্ম- এ ডাঙ্গৰীয়া বাপু, আমাৰ শৰীৰৰ কথা সোধা নেযাব। 'বাৰেটা মাহৰ তেৰেটা জগৰ, সদায়

নুগুচে এটা লগৰ।' গৃহস্থ জনৰ কিবা এফেৰি সেৰা চুৰ কৰিলোহঁক হবলা, সদায় গাৰ নৰিয়াই

নুগুচে; তাতে আকৌ কালিৰপৰা পেটৰ কামোৰ, তেজ পৰিছে।" (পৃ. ১)

অসমত ইংৰাজৰ শাসনকালত ইংৰাজ বিষয়া আৰু অন্যভাষী কৰ্মচাৰীসকলৰ মাজত কথোপকথনৰ ক্ষেত্ৰত

এক খিচিৰি ভাষাৰ সৃষ্টি হৈছিল। হাস্যৰস আৰু ব্যঙ্গৰস সৃষ্টি কৰাৰ উদ্দেশ্যৰে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই তেওঁৰ ৰচনাৰ মাজতো এই ধৰণৰ ভাষাৰূপ ব্যৱহাৰ কৰিছে। ইয়াৰে কিছুসংখ্যক বাক্য অসমীয়া ইংৰাজী মিহলি, কিছুমান বঙালী-ইংৰাজী মিহলি বাক্য আৰু আন কিছুমান আকৌ অসমীয়া, হিন্দী, ইংৰাজী আৰু বঙালী এই চাৰিও ভাষা সংমিশ্রিত বাক্য। উদাহৰণস্বৰূপে—

ইংৰাজ বিষয়াৰ ভাষাঃ আচ্ছা, আচ্ছা well the, আমি ঐ নাম-গ ৰ কাছাৰিটে মাটিবে, টবে হকল কঠা ওলাইবে। (পৃ. ৩৮)

তলতীয়া কৰ্মচাৰীৰ ভাষাঃ হজুৰ যো ফৰমাতা হায়, সো সাছহে, কিন্তু লিকিন মকৰ্দ্দমামে বহুত প্ৰমাণ নাহি, ইসওৱাস্তে। (পৃ. ৩৯)

৩.০ সামৰণি ঃ

হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা ঊনবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া ভাষা, সাহিত্য, সমাজ, সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্ৰত এজন অত্যন্ত সজাগ আৰু সচেতন ব্যক্তি আছিল। বিশেষকৈ আখৰজোঁটনিৰ ক্ষেত্ৰত তেখেতে দাঙি ধৰা মতটো বৰ্তমানৰ অসমীয়া ভাষাই আজিপৰ্যন্ত গ্ৰহণ কৰি আহিছে। ভাষাৰ শুদ্ধতাৰ ওপৰত তেখেত অত্যাধিক সচেতন আছিল। ভাষা যিহেতু ভাৱ প্ৰকাশৰ এক উৎকৃষ্ট মাধ্যম, সেয়ে ভাষাৰ শুদ্ধাশুদ্ধতা বিচাৰ কৰাটো অতিকৈ প্ৰয়োজন। কাৰণ ভুল উচ্চাৰণ বা লেখনীয়ে ভাষাৰ মৰ্যাদা ক্ষুন্ন কৰে। এনে ভাষা শিকিলে বা পঢ়িলে ইয়াৰ পৰা মানুহৰ অকনো উন্নতি নহয়। সেয়ে সম্পাদকৰ দায়িত্বত থাকোতে তেওঁ যিবোৰ লেখনীত শুদ্ধতা বিচাৰি পোৱা নাছিল সেইবোৰক প্ৰকাশ কৰাৰ পৰা বিৰত আছিল।

মুঠৰ ওপৰত তেখেতৰ ভাষাই আধুনিক অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰাৰম্ভিক স্তৰৰ অৰ্থাৎ 'অৰুণোদয়' স্তৰক প্ৰতিনিধিত্ব কৰিছে। ইয়াৰোপৰি ৰক্ষণশীল সমাজৰ কেতবোৰ এলান্ধুকলীয়া নিয়ম ওফৰাই এখন নতুন সমাজ গঢ়াৰো তেওঁ পক্ষপাতী আছিল। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ

গোস্বামী, যতীন্দ্ৰনাথ (সংকলিত আৰু সম্পাদিত) ঃ হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা ৰচনাৱলী, হেমকোষ প্ৰকাশন, গুৱাহাটী-৩, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৯৯

নেওগ, মহেশ্বৰ (সম্পাদিত) ঃ অৰুনোদই (১৮৪৬-১৮৫৪), অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৮৩

বৰুৱা, বিৰিঞ্চিকুমাৰ (সংকলিত আৰু সম্পাদিত) ঃ অৰুনোদইৰ ঢলফাট, অসম সাহিত্য সভা, যোৰহাট, অসম, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ১৯৯১

বেজবৰুৱা, লক্ষ্মীনাথ ঃ মোৰ জীৱন-সোঁৱৰণ, লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১, নতুন মুদ্ৰণ, ১৯৯৯

ভূঞা, যোগেন্দ্ৰনাৰায়ণ ঃ ঊনবিংশ শতিকাঃ সৃষ্টি আৰু চেতনা, লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৯৮

শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ ঃ অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, সৌমাৰ প্ৰিণ্টিং এণ্ড প্লাবিছিং প্ৰাইভেট লিমিটেড, ৰিহাবাৰী, গুৱাহাটী-৮, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ১৯৮৪

শৰ্মা কটকী, সৰ্বেশ্বৰ ঃ হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ জীৱন চৰিত, হেমচন্দ্ৰ সোঁৱৰণী গ্ৰন্থাৱলীৰ তৃতীয় ভাগ, আসাম ছাত্ৰ সম্মিলন কতৃপক্ষৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত, প্ৰথম তাঙৱণ, ১৯২৭

শৰ্মা, দীননাথ ঃ হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা, অসম সাহিত্য সভা, কমলাদেৱী শিশু-সাহিত্য, প্ৰথম তাঙৱণ, ১৯৫৪

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

অসমৰ চাহ জনগোষ্ঠীয় মহিলাসকলৰ জীৱনশৈলী আৰু আর্থ-সামাজিক অৱস্থা ঃ এক আলোচনা

কৃশাংগী শইকীয়া

গৱেষক তথা সহকাৰী অধ্যাপক
ৰাজনীতি বিজ্ঞান বিভাগ
কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী, অসম
ম'বাইল ঃ ৭০৯৯২০৮৩৪৭
ই-মেইল ঃ krishangisaikia95@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

শ্রেণী বিভাজনকৃত সমাজখনত মহিলাসকলৰ স্থান প্রান্তীয়কৃত কৰা হৈছে। এই ব্যৱস্থা বহু বছৰ আগৰে পৰা চলি আহিছে। বিশ্বায়নৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা আর্থ-সামাজিক পৰিস্থিতিয়ে মহিলাসকলৰ অর্থনৈতিক স্বাৱলম্বিতাৰ বাট মুকলি কৰি দিছিলে। অবশ্যে, বৃহত্তৰ সমাজখনত কিছুসংখ্যক শ্রেণীৰ মহিলাই বৈষম্যমূলক আচৰণৰ বলি হয়। এনে পৰিস্থিতিত চাহ জনগোষ্ঠীয় মহিলা সকলৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা তাৎপর্য্যপূর্ণ বুলি বিবেচনা কৰা হৈছে। এই মহিলা সকলক চাহ বাগানৰ বিভিন্ন কামত নিয়োজিত কৰা হয়। ঘৰুৱা কামৰ উপৰিও চাহ বাগানৰ কামবোৰ নিয়াৰিকৈ সম্পন্ন কৰাৰ ফলত, দৈনন্দিন ভাৱে তেওঁলোকে পুৰুষসকলৰ তুলনাত বেছি সময় কর্ম সম্পাদনত অতিবাহিত কৰিবলগীয়া হয়। নিজে অর্থ উপার্জন কৰিও নিজৰ আকাংক্ষাসমূহ পূৰণ কৰাত অসমর্থ হৈ ৰয় এই চাহজনগোষ্ঠীৰ মহিলাসকল। তেওঁলোকৰ সমাজিক অৱস্থানৰ অনুমান তেওঁলোকৰ আর্থিক পৰিস্থিতিৰ পৰা কৰিব পৰা যায়। এই গৱেষণা পত্রই সেয়েহে চাহ জনগোষ্ঠীয় মহিলাসকলৰ দৈনন্দিন জীৱনশৈলী আৰু তেওঁলোকৰ আর্থ-সামাজিক পৰিস্থিতিৰ বিষয়ে চমুকৈ ৰেখাপাত কৰাৰ চেষ্টা কৰিছে।

বীজ শব্দ ঃ

মহিলা, সৱলীকৰণ, চাহ, জনগোষ্ঠী, অর্থনীতি, সমাজ ইত্যাদি।

১.০. অৱতৰণিকা ঃ

২০০ বছৰ পুৰণি অসমৰ চাহ উদ্যোগে ভাৰতৰ ৫০% চাহ উৎপাদন কৰে। অসম অর্থনৈতিক সমীক্ষা, ২০২০-২১ (Assam Economic Survey, 2021) ৰ হিচাপত ভাৰতৰ সর্বমুঠ চাহ উৎপাদিত মাটিকালিৰ আধা অংশই অসমত আছে। অসমৰ চাহ উদ্যোগত দৈনিক গড়ে ৭ লাখ লোক নিয়োজিত হৈ আছে। এই সমীক্ষাৰ ফলাফল অনুসৰি অসমত ক্ষুদ্র চাহ খেতিয়কৰো সংখ্যা বৃদ্ধি হৈছে। ভাৰতীয় চাহ বর্ড্ডে দ্বাৰা প্রকাশিত চাহ পৰিসংখ্যা, 1973-2004 (TeaStatistics) অনুসৰি অসমৰ চাহ বাগানসমূহত মহিলা চাহ শ্রমিকৰ

সংখ্যা পুৰুষৰ তুলনাত বহু বেছি। কিন্তু লিংগভিত্তিক কর্ম বিভাজনৰ ফলত মহিলা চাহ শ্রমিকসকলে ঘৰ আৰু বাগান দুয়ো স্থানতে সমানে কাম কৰিব লগা হয়। ফলত, তেওঁলোকৰ কামৰ বোজা দুগুণে বৃদ্ধি হয়। সেয়েহে, আমাৰ মনত কিছু প্রশ্নৰ উদয় হয় - যেনে - মহিলা চাহ শ্রমিকসকলে নিজৰ নৈন্দিন কামসমূহত কিমান সময় অতিবাহিত কৰে, তেওঁলোকে নিজে কষ্টৰে পোৱা টকাখিনি নিজ ইচ্ছামতে খৰচ কৰিব পাৰে নে, অথবা মহিলা চাহ শ্রমিকসকলৰ সামাজিক উত্তৰণ কিমান দূৰ সম্ভৱ হৈ উঠিছে। এনেবোৰ প্রশ্নৰ উত্তৰ দিয়াৰ উদ্দেশ্যে এই গৱেষণা পত্রখন তৈয়াৰ কৰি তোলা হৈছে।

১.১. লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

চাহ জনগোষ্ঠীৰ ওপৰত বিভিন্নজন লেখক তথা গৱেষকে সমাজ বিজ্ঞানৰ ভিন্ন শাখাসমূহ যেনে ৰাজনীতি বিজ্ঞান, অর্থনীতি, সমাজতত্ব, ইতিহাস আদিৰ দৃষ্টিকোণৰ সহায়েৰে বিভিন্ন দিশ আলোচনা কৰিছে। আলোচ্য বিষয়সমূহৰ ভিতৰত চাহ শ্রমিক আৰু মালিক পক্ষৰ মাজৰ সম্পর্ক, শ্রমিকসকলৰ অভাৱ-অভিযোগ, চৰকাৰী আচঁনি সমূহৰ ৰূপায়ণ তথা চাহ জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক আৰু ৰাজনৈতিক ইতিহাসে আগস্থান পাই আহিছে। চাহ জনগোষ্ঠীয় মহিলাসকলৰ ওপৰত এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন কৰাৰ প্রয়োজনীয়তা উপলব্ধি কৰা হেতুকে এই গৱেষণা পত্র খন তৈয়াৰ কৰি উলিওৱা হৈছে।

১.২. অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

এই গৱেষণা পত্রখনৰ বাবে অসমৰ তিনিখন চাহ উৎপাদনকাৰী জিলা, ক্রমে নগাওঁ, গোলাঘাট আৰু যোৰহাট বাচনি কৰি উলিওৱা হৈছিল। তিনিওখন জিলাৰ অন্তর্গত তিনিখন চাহ বাগিছাৰ কেইবাগৰাকীও মহিলা চাহ শ্রমিকৰ ওপৰত কৰা অধ্যয়নৰ ফলত এই গৱেষণা পত্রখন তৈয়াৰ কৰি উলিওৱা হৈছে।

১.৩. অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

বিশ্লেষণাত্মক আৰু বর্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায়ত এই গৱেষণাটো গঢ়ি তোলা হৈছে।

১.৪. তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

এই গৱেষণা পত্রখনৰ প্রস্তুতকৰণৰ বাবে মুখ্য আৰু গৌণ দুয়োধৰণৰ সমলেই ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। চাহ জনগোষ্ঠীয় বিভিন্ন গৱেষণা গ্রন্থ আৰু চৰকাৰী নথি পত্রসমূহ গৌণ সমল হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰাৰ উপৰিও গৱেষকে নিজে চাহ বাগানত উপস্থিত হৈ মহিলা শ্রমিকসকলৰ সৈতে হোৱা কথোপকথন মুখ্য সমল বুলি গণ্য কৰা হৈছে।

১.৬. পূর্বকৃত অধ্যয়ন ঃ

চাহ উদ্যোগে সম্পর্কে বহু গৱেষণা কৰা হৈছে। ফলস্বৰূপে, বহু কিতাপ, প্রবন্ধ তথা গৱেষণা গ্রন্থ প্রকাশিত হৈছে। এইসমূহ আমাৰ প্রধান সমল।

মীতা ভদ্রাৰ 'Gender Dimensions of Tea Plantation Workers in West Bengal' (2004), পিয়া চেটার্জীৰ 'Hungering for Power : Borders and Contradictions in Indian Tea Plantation Women's Organization (2008), দেৱদুলাল সাহা, ৰাজদ্বীপ সিংহা আৰু চিত্রাসেন ভূত্রৰ Decent Work for Tea Plantation Workers in Assam: Constrainte, Challenges and Prospects' (2019); ভূল্লি ধানাৰাজু আৰু গৌতম দাসৰ 'Issue of Marginality and Tea Garden Women in Assam, India' (2019) দৰে প্রকাশিত প্রবন্ধই অসম তথা ভাৰতৰ চাহ বাগান সমূহত মহিলা চাহ শ্রমিক সকলৰ সামাজিক তথা অর্থনৈতিক মর্য্যদাৰ বিষয়ে বিস্তৃতভাৱে আলোচনা কৰিছে।

বীনা আগৰৱালাৰ 'Bargaining and Gender Relations: Within and Beyond the Household' (1997) তথা নাইলা কাবিৰৰ 'Woman, Wages and Intra Household Power Relations in Urban Bangladesh' (1997) ত আমি লিংগভিত্তিক কর্ম বিভাজন তথা ঘৰুৱা পৰিৱেশত ক্ষমতাৰ স্থিতিৰ বিষয়েও জানিব পাৰিছে।

পিয়া চেটার্জী ৰচিত 'A Time for Tea: Women, Labour and Post/Colonial Politics on an Indian Plantation' (2001) নামৰ গ্রন্থখনে ভাৰতীয় চাহ বাগিচাৰ প্রেক্ষাপটত লিংগ, শ্রম আৰু ৰাজনীতিৰ সংযোগস্থলৰ সন্ধান কৰে। গ্রন্থখনে বাগিচা এখনৰ মহিলা শ্রমিকসকলৰ জীৱন আৰু অভিজ্ঞতাৰ বিষয়ে গভীৰ ভাৱে অধ্যয়ন কৰি তেওঁলোকৰ পৰিচয় আৰু ভূমিকাক ঔপনিবেশিকতাবাদে কেনেকৈ গঢ় দিছিল সেই বিষয়ে পৰীক্ষা কৰিছে। চেটার্জীয়ে সমালোচনাত্মক ভাৱে বিশ্লেষণ কৰিছে যে, ভাৰতে স্বাধীনতা লাভ কৰাৰ পিছতো এই মহিলা শ্রমিকসকলৰ জীৱনত ঔপনিবেশিক অধ্যায়ে কেনেদৰে

প্রভাৱ পেলাইছিল। মহিলাসকলে বাগিচাৰ পৰিসীমাৰ ভিতৰত নিজৰ জীৱন গঢ় দিয়া আৰু অত্যাচাৰী ব্যৱস্থা প্রত্যাহ্বান জনোৱাৰ ক্ষেত্রত কেনেদৰে সক্রিয় আছিল সেই বিষয়েও গ্রন্থখনত তুলি ধৰিছে। বিশদ নৃত্বাত্বিক গৱেষণা আৰু ঐতিহ্য বিশ্লেষণৰ জৰিয়তে চেটার্জীয়ে ভাৰতৰ বহল সামাজিক-ৰাজনৈতিক পৰিবেশ আৰু ইয়াৰ ঔপনিবেশিক অতীতৰ বিষয়ে অন্তৰদৃষ্টি প্রদান কৰিছে। সামগ্রীক ভাৱে গ্রন্থখনে বাগিচাৰ মহিলা শ্রমিকৰ জীৱনৰ সুৱে আৰু চিন্তা উদ্দীপক অন্বেষণ আগবঢ়াইছে।

তদুপৰি কেইবাখনো অপ্রকাশিত গৱেষণা গ্রন্থই আমাক আমাৰ গৱেষণাটো আগবঢ়াই লৈ যোৱাত সহায় কৰিছে।

২.০. বিষয়বস্তু বিশ্লেষণ ঃ

অতীজৰে পৰা মহিলাসকলে পুৰুষৰ সমানেই শ্রম কৰি জীৱন নির্বাহ কৰি আহিছে। সামাজিক ব্যৱস্থা হিচাপে পিতৃতন্ত্রই ঘৰুৱা পৰিৱেশটো এক জটিল অৱস্থা সৃষ্টি কৰি আহিছে। মহিলাসকলৰ শ্রম আৰু সময়, উভয়ৰে অৱদান নুণ্যতম বুলি গণ্য কৰা সমাজখনে মহিলাৰ বাবে সংৰক্ষণ কৰা স্থানটোৱেই হৈছে ঘৰ বা গৃহস্থি। লিংগভিত্তিক ভূমিকাৰ আগস্থান দি অহা পুৰুষতান্ত্রিক সমাজখনৰ এনে ব্যৱস্থাৰ বাবেই মহিলাসকলে বিভিন্ন স্তৰত বৈষমৰ মুখামুখি হ'ব লগা হয়।

কিন্তু বিশ্বায়নৰ লগে লগে কর্মসংস্থাপনৰ সুযোগ বাঢ়ি অহাত মহিলাসকলেও ভাৰতীয় অর্থনীতিৰ বিভিন্ন খণ্ডসমূহৰ লগত কাম কৰাৰ সুযোগ লাভ কৰিলে। ১৯৯০ চনত হোৱা ভাৰতীয় অর্থনীতিৰ উদাৰীকৰণ আৰু ব্যক্তিগতকৰণৰ কার্য্য উল্লেখযোগ্য হৈ পৰে।

অৱশ্যে, চাহ জনগোষ্ঠীয় মহিলাসকলৰ অৱস্থাৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰিবৰ বাবে বৃটিছ ৰাজতন্ত্রৰ দিনলৈ উভতি যোৱা উচিত। ৰবার্ট ব্রুছ আৰু চার্লছ ব্রুছৰ চেষ্টা আৰু পৰৱর্তী সময়ত অসমীয়া উদ্যোক্ত যেনে, মণিৰাম দেৱানৰ প্রচেষ্টাৰ ফলত অসমত চাহ খেতিৰ আৰম্ভণি হয়। বৃটিছ ৰাজতন্ত্রৰ অধীনত কাম কৰাৰ অনিচ্ছা আৰু বৃটিছ ঔপনিৱেশিকসকলৰ অনুসৰি অসমীয়া মানুহৰ শ্রম কৰাৰ প্রতি অনিহা - এই দুয়োটা কাৰণৰ বাবে বৃটিছসকলে মধ্য আৰু পূৱ ভাৰতৰ পৰা হাজাৰ হাজাৰ লোকৰ প্রব্রজন ঘটায়। প্রথমাৱস্থাত কেৱল পুৰুষসকলক অসমলৈ লৈ অহা হৈছিল যদিও পিছলৈ তেওঁলোকক পৰিয়াল সহিতে অসমলৈ আহিবলৈ উৎসাহ জনোৱা হ'ল। ইয়াৰ মুখ্য কাৰণ আছিল যে চাহ খেতিক এক পৰিয়াল ভিত্তিক বৃত্তি হিচাপে গঢ়ি তোলা। এনে কৰা হেতুকে শ্রমিকৰ সংখ্যা বৃদ্ধি পোৱাৰ উপৰিও বৃটিছ সাম্রাজ্য লাভান্বিত হোৱা। এনেদৰে চাহ উদ্যোগত মহিলাসকলৰ পৰিচয় ঘটে।

চাহ জনগোষ্ঠীয় মহিলাসকলে বাগাত কাম কৰাৰ উপৰিও ঘৰুৱা কামৰ সমস্ত দায়িত্বভাৰ ল'ব লগা হয়। তেওঁলোকৰ শ্রম শক্তিৰ তুলনাত তেওঁলোকৰ অর্থনৈতিক তথা সামাজিক সৱলীকৰণৰ ছবি নিচেই হতাশজনক। এই গৱেষণা পত্রখনে চাহ জনগোষ্ঠীয় মহিলাসকলৰ এনেধৰণৰ পৰিস্থিতিৰ এটি বিশ্লেষণাত্মক বিৱৰণ দাঙি ধৰাৰ প্রচেষ্টা কৰিছে।

ক্ষেত্রভিত্তিক অধ্যয়নৰ পৰিপ্রেক্ষিতত পোৱা তথ্যৰ ভিত্তিত চাহ জনগোষ্ঠীয় মহিলাসকলৰ জীৱনশৈলী আৰু তেওঁলোকৰ আর্থ-সামাজিক অৱস্থা নিম্নলিখিত খণ্ডসমূহত বিভক্ত কৰি আলোচনা কৰা হৈছে ঃ

২.১. শ্রমশক্তি, সময় আৰু দ্বিধাদ্বন্দ্ব ঃ

চাহ জনগোষ্ঠীয় মহিলাসকলৰ জীৱনশৈলীৰ বিষয়ে বুজ লোৱাৰ উদ্দেশ্যে তেওঁলোকৰ দৈনন্দিন কার্য্যাৱলীৰ বিষয়ে বিস্তাৰিত ভাৱে প্রশ্ন কৰা হৈছিল। সময় শৃংখলা বিশ্লেষণৰ ওপৰত আধাৰিত এই গৱেষণাত মহিলাসকলৰ শ্রমশক্তি আৰু সময়ৰ উপযগেৰ এক ধাৰণা পোৱা গৈছে। চাহজনগোষ্ঠীয় মহিলাসকলে ৰাতিপুৱা ৫ বজাত শোৱাপাতি এৰি সকলো ঘৰুৱা কাম সম্পাদন কৰি ৮ বজাত বাগানত উপস্থিত হ'ব লাগে। দুপৰীয়া ১২ বা ১ বজাত দুপৰীয়াৰ আহাৰ গ্রহণ কৰাৰ বাবে এঘন্টা বিৰতি পায় তেওঁলোকে। আবেলি ৪ বজাত বাগানৰ কাম সম্পন্ন হৈ উঠাত ঘৰমুখী হোৱা মহিলা শ্রমিকসকলে উভতি যোৱাৰ পৰত ঘৰত ব্যৱহৃত খৰি নিজৰ টুকুৰী ভৰাই লৈ যায়। তদুপৰি তেওঁলোকে পানী কঢ়িয়াই যোৱা দৃশ্যও সহজলভ্য। মহিলা শ্রমিকসকলে নিশা সকলো কামৰ পৰা আজৰি হৈ আকৌ শোৱাপাতি পাই গৈ নিশা ৯ বা ১০ বজাত। ইয়াৰ দ্বাৰা আমি বুজিব পাৰো যে, বাগান আৰু ঘৰ দুয়ো স্থানত মহিলা শ্রমিকসকলে আনুমানিক ১২ৰ পৰা ১৫ ঘন্টা কাম কৰে।

ঘৰৰ কামৰ সামাজিক মর্য্যাদা যদিও কম, মহিলাসকলে সবাটোকৈ বেছি সময় ঘৰুৱা কামত অতিবাহিত কৰে। বাগানত কৰা কামৰ বাবে মহিলাসকলে আর্থিক মূল্য লাভ কৰে। দৈনিক ২০৫ টকাৰ বিনিময়ত ৭ ঘন্টা বাগানত চাহপাত তোলা, নলা খন্দা, কোৰ মৰা, আদি কাম

মহিলাসকলে কৰে। কিন্তু এনে আর্থিক মূল্যই তেওলোকৰ শ্রম শক্তিক পুৰুষ শ্রমিক সকলৰ সমানে মান প্রদান নকৰে বুলি তেওলোকৰ ভাষ্যত প্রকাশ পাইছে। এই বিষয়ে এগৰাকী মহিলা শ্রমিকে এনেধৰণৰ মত দাঙি ধৰিছিল ঃ

"আমি বাগানত বহুত কাম কৰো। ৰ'দ-বৰষুণ চব সময়তে চাহপাত তোলো।

ঘৰৰ গোটেই কাম কৰো। তাৰ পিছতো আমি পুৰুষসকলৰ তলত।"

(সাক্ষাৎকাৰ গ্রহণৰ তাৰিখ ঃ ১০/০৭/২০২২)

সাহা, সিংহা আৰু ভূঞেৰ (২০১৯) গৱেষণা অনুসৰি অসমৰ চাহ বাগনসমূহত মহিলা শ্রমিকসকলৰ বাবে 'নিম্ন বিপদজনক অঞ্চল' (Low risk zone) আৰু পুৰুষ শ্রমিকসকলৰ বাবে 'উচ্চ বিপদজনক অঞ্চল' (High risk zone) সংৰক্ষিত কৰা হয়। ইয়াৰ ফলত মহিলাসকলক কাৰখানাৰ পৰা দূৰৈত অৱস্থিত কৰা হয়। এই বিভেদে চাহ বাগানসমূহত লিংগ ভিত্তিক 'ৰাজহুৱা - ব্যক্তিগত দ্বৈততাৰ' (Public - Private Dichotomy) অৱস্থিতিৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰে। এনে লিংগ ভিত্তিক পার্থক্যৰ কথা আন এগৰাকী মহিলা শ্রমিকে এনেধৰণে তুলি ধৰিছে ঃ

"কাৰখানাত আমি কাম কৰিব যাব নোৱাৰো। আমি অকল পাত হে তুলিব পাৰো বুলি চবে ভাৰে।

অকল পুৰুষকহে কাৰখানাত কাম কৰিব দিয়ে।

কেইগৰাকীমান মহিলাই কাৰখানাত কাম কৰে কিন্তু তেওলোকক ঝাড়ু মৰা কাম দি কৰিব দিয়ে।

তেওঁলোকে মেচনত হাত দিব নোৱাৰে।"

(সাক্ষাৎকাৰ গ্রহণৰ তাৰিখ ঃ ১১/০৭/২০২২)

লিংগভিত্তিক বৈষম্যৰ এক উদাহৰণ স্বৰূপে চাহ বাগানৰ ভিতৰত শ্রমৰ বিভানৰ কৰা উল্লেখ কৰিব পাৰি।

ঘৰুৱা কামৰ কোনো অর্থনৈতিক মূল্য নথকা পিছতো মহিলা চাহ শ্রমিকসকলে ঘৰুৱা কামৰ প্রয়োজনীয়তা সবাতোকৈ বেছি বুলি অভিহিত কৰিছে। ইয়াৰ মূল কাৰণ হিচাপে আমাৰ সামাজিক ব্যৱস্থাৰ কথা ক'ব লাগিব। পিতৃতন্ত্রক সমাজৰ মূল ইন্ধন বুলি গণ্য কৰি পুৰুষ আৰু মহিলাসকল ভিন্ন কামৰ বাবে উপযোগী বুলি ধাৰণা কৰা হয়। ইজনে আনজনৰ কামৰ পৰিসৰত প্রৱেশ নকৰাটো বাঞ্ছনীয় বুলি সমাজৰ প্রচলিত ধাৰণা। এই ধাৰণাত সামাজিকীকৰণ হৈ মহিলাসকলে অর্থনৈতিক ভাৱে 'মূল্যহীন' (?) ঘৰুৱা কার্য্যক তেওঁলোকৰ প্রধান কর্ম বুলি দৃঢ়তাৰে অভিহিত কৰিছে।

কিছু সংখ্যক মহিলা চাহ শ্রমিকে নিজৰ প্রধান কার্য্যক লৈও দ্বিধাদ্বন্দত ভোগা দেখা পোৱা গৈছিল। এগৰাকী মহিলাই এনেধৰণৰ মন্তব্য আগবঢ়ায় ঃ

"আমি বাগানত কাম কৰি পইচা পাওঁ।

সেই পইচাৰে ধৰ চলে।

যদি বাগানত কাম নকৰো,

তেনেহলে কি খাম, কেনেকৈ চলিম?

কিন্তু ল'ৰা-ছোৱালীক চালে কেতিয়াবা

বাগানত কাম কৰিব মন নাযায়।

ঘৰত থাকি ঘৰৰ কাম কৰি সিহঁতক ভালকৈ খুৱাই,

লিখা-পঢ়া শিকাব মন যায়।"

(সাক্ষাৎকাৰ গ্রহণৰ তাৰিখ ঃ ১১/০৭/২০২২)

২.২. মহিলা চাহ শ্রমিকৰ আর্থ-সামাজিক অৱস্থা ঃ

ওপৰত উল্লেখতি ধৰণে মহিলা চাহ শ্রমিকসকলৰ শ্রম শক্তি যথেষ্ট যদিও অর্থনৈতিক দিশৰ পৰা তেওঁলোক টনকিয়াল নহয়। নিজৰ দৰমহাখিনি নিজৰ বাবে, নিজে ভবা ধৰণে ব্যৱহাৰ কৰাৰ পৰা বঞ্চিত হ'ব লগা হয়।

সৰহসংখ্যক মহিলাৰ বিৱৰণি মর্মে তেওঁলোকে নিজৰ দৰমহাৰ টকা ঘৰুৱা কাম যেনে ঘৰ পকী কৰা অথবা ল'ৰা - ছোৱালীৰ বিদ্যালয়ৰ মাচুলৰ খৰচ বহন কৰা আদি কামত ব্যৱহাৰ কৰে বুলি উল্লেখ কৰিছে।

সাহা, সিংহা আৰু ভূঞেৰ (২০১৯) অনুসৰি অসমৰ বিভিন্ন জিলাৰ বিভিন্ন চাহবাগিচাত লিংগ ভিত্তিক মজুৰিৰ পার্থক্য দেখা যায়, য'ত মহিলা শ্রমিক সকলে প্রতিদিনে ১৩৭ টকা মজুৰি লাভ কৰাৰ পৰিৱর্তে পুৰুষসকলে প্রতিদিনে ১৬৭ টকা লাভ কৰে। কিছু কিছু স্থানত এনে বৈষম্যয়ো মহিলাসকলৰ আর্থিক দুৰৱস্থাৰো সৃষ্টি কৰে।

মহিলা চাহ শ্রমিকসকলৰ সামাজিক উত্তৰণ এতিয়াও সন্তৱপৰ হৈ উঠা নাই। বৈৱাহিক স্থিতিৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰা অনুযায়ী বহু মহিলা চাহ শ্রমিক আইনগত ভাৱে নির্ধাৰিত বয়সতকৈ বহু আগতেই পলাই গৈ বিয়াত বহে। সেই অনুযায়ী কম বয়সত মাতৃত্বৰ শাৰীৰিক তথা মানসিক বোজা বহন কৰিব লগা হয়। স্বাস্থ্যৰ দিশৰ পৰাও এই পৰিঘটনাই তেওঁলোকক দুর্বল কৰি তোলে। তেনে পৰিপ্রেক্ষিতত কামৰ পৰা জিৰণি আৰু অৱসৰ কিছুদিনৰ বাবে হ'লেও প্রয়োজনীয় হৈ পৰে।

ইয়াৰ উপৰিও চাহ বাগানসমূহত মহিলা শ্ৰমিকৰ সুৰক্ষা আৰু নিৰাপত্তাৰ ওপৰত এক প্ৰশ্নবোধক হিচাপে ঠিয় দিয়ে বাগানত ঘটা নিত্য নতুন ঘটনাই। ধৰ্ষণ, শাৰীৰিক তথা যৌন নিৰ্যাতন আৰু শোষণৰ ঘটনাই মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ অৱস্থাৰ বিষয়ে বৰ্ণনা কৰে। চোমা চৌধুৰীয়ে (২০১২) উল্লেখ কৰিছে যে ভাৰতৰ চাহ বাগিছাত থকা মহিলাসকল ডাইনীৰ (অন্ধবিশ্বাস তথা কু-সংস্কাৰৰ) সহজ লক্ষ্য। উৰাবাতৰি আৰু ষড়যন্ত্ৰৰ জৰিয়তে মহিলাসকলক ডাইনী সজাই ধৰ্ষণ আৰু হত্যাকে ধৰি ভয়ংকৰ নিৰ্যাতন সংঘটিত কৰা হয়। এই প্ৰক্ৰিয়াৰ জৰিয়তে পুৰুষে নাৰীৰ শৰীৰ আৰু তেওঁলোকৰ আচৰণৰ ওপৰত নিজৰ কৰ্তৃত্ব আৰু নিয়ন্ত্ৰণ অব্যাহত ৰাখে।

৩.০. উপসংহাৰ ঃ

অসমৰ চাহ উদ্যোগৰ এক প্ৰধান চালিকা শক্তি, মহিলা চাহ শ্ৰমিকসকলে পুৰুষসকলৰ তুলনাত নিজৰ কৰ্মস্থলী, ঘৰ আৰু বাগান, উভয়তে বেছি সময় অতিবাহিত কৰে। এনে পৰিস্থিতিত, তেওঁলোকৰ শ্ৰমশক্তি বেছি বুলি ধাৰণা কৰিব পাৰি। কিন্তু পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজৰ এক নিদৰ্শন চাহ বাগানৰ ভিতৰতো দেখিবলৈ পোৱা যায়। সিদ্ধান্ত লোৱাত মহিলাসকলৰ অক্ষমতা, লিংগভিত্তি অনুসৰি কৰ্ম বিভাজন, মহিলাসকলৰ অসুৰক্ষতা আদি বিভিন্ন বিষয়ে বাগানৰ ভিতৰত মহিলাসকলৰ অৱস্থাৰ বিষয়ে বৰ্ণনা কৰিছে।

প্ৰচলিত সমাজ ব্যৱস্থা সমুদায় সলনি হোৱাটো অস্বাভাৱিক তথা অসম্ভৱ। কিছু কিছু ক্ষেত্ৰত কেৱল লিংগ একমাত্ৰ নিৰ্ণায়ক হিচাপে নলয়, উভয় লিংগৰে কৰ্ম ক্ষমতা তথা দক্ষতাক মাপকাঠি হিচাপে লৈ স্থান তথা কাৰ্য্য নিৰ্ণয় কৰিলে সমাজখন লিংগ নিৰপেক্ষ হৈ পৰিব বুলি অনুধাৱন কৰিব পাৰি। ❑

References:

1. Agarwal. Bina. "Bargaining and Gender Relations: Within and Beyond the Household." *Feminist Economics*, vol 3,1997, p.p. 1-51. https://www.tandfonline.com/doi/abs/10.1080/135457097338799
2. Bhadra, Mita. "Gender Dimensions of Tea Plantation Workers in West Bengal." *Indian Anthropologist,* vol, 34, 2004, p.p. 43-68. https://www.jstor.org/stable/41919965
3. Chatterjee, Piya. "A Time for Tea: Women, Labour and Post/Colonial POlitics on an Indian Plantation", *Duke University Press,* 2001.
4. Chatterjee, Piya. "Hungering for Power:Borders and Contradictions in Indian Tea Plantation Women's Organizing. *Signs: Journal of Women in Culture and Society,* vol. 33, 2008, p.p. 497-505. https://www.journals.uchicago.edu/toc/signs/2008/33/3
5. Choudhury, Soma: "Women as !ßasy Scapegoats: Witchcraft Accsations and Women as Targets in Tea Plantation of India", Sage, Vol-18, 2012, p.p. 1213-1234. https://doi.org/10.1177/107780121246
6. Das, Gautam, and Vulli Dhanaraju. "Issue of Marginality and Tea Garden Women in Assam, India." *The Research Journal of Social Sciences*, vol. 10, 2019, p.p. 413-424. https://www.researchgate.net/publication 357322757_Issue_of_Marginality_and_Tea_Garden_Women_in_Assam_India1.
7. Kabeer, Naila. "Women, Wages and Intra-Household Power Relations in Urban Bangladesh." *Development and Change*, vol. 28, 1997, p.p. 261-302. https://onlinelibrary.wiley.com/doi/abs/10.1111/1467-7660.00043
8. Saha, Debdulal, Rajdeep Singha and Chitrasen Bhue. "Decent Work for Tea Plantation Workers in Assam: Constraint, Challenges and Prospects." Oxfam India. 2019.

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

স্মৃতি-ৰোমান্থন

স্বৰাজ আন্দোলনৰ অক্লান্ত চিপাহী কবি অম্বিকাগিৰি ৰায়চৌধুৰী

ড° বিনীতা নাথ

শিক্ষয়িত্রী, ড° এছ, ৰাধাকৃষ্ণ একাডেমী
গুৱাহাটী-৩৫
ম'বাইল ঃ ৯৪০১৭৬৭৫ ৩৩

সভ্যতাৰ চূড়াত আৰোহন কৰা স্বাধীন দেশ ভাৰতবৰ্ষই পৰাধীনতাৰ শিকলিৰে বান্ধ খোৱাটো আছিল জগতৰ ইতিহাসৰ এক নজিৰবিহীন ঘটনা। অৱশ্যে এয়া আৱশ্যম্ভাৰীও আছিল। শাসন তন্ত্ৰৰ সোলোক ঢোলোক অৱস্থা। গৃহকন্দলৰ দুৰ্বলতাৰ সুযোগ লৈ অজান-অচিন দেশৰ শত্ৰয়ে ভাৰতভূমিত বৰপীৰা পাৰি বহিছিল। বেপাৰ বনিজ কৰা ইংৰাজৰ দলে ভাৰতত পদাৰ্পণ কৰি ভাৰতৰ শাসনৰ বাঘজৰীডাল হাতত লোৱালৈকে ভাৰতীয় জাতীয় জীৱনত এক উশৃংখল পৰিবেশ বিৰাজ কৰিছিল।

পৰাধীন ভাৰতৰ দাসত্বৰ শিকলিৰে বন্ধা জনতাৰ বুকুত তুঁহ জুইৰ দৰে উমি উমি জ্বলিবলৈ ধৰিছিল স্বাধীনতাৰ জুই। পৰাধীনতাৰ শিকলি চিঙি ভাৰতমাতাক স্বৰাজৰ সুধা পান কৰোৱা-লক্ষ্য আছিল এই একেটাই, পথ আছিল ভিন্ ভিন্। কোনোৱে হিংসাৰ তৰোৱাল হাতত লৈ স্বৰাজৰ আন্দোলনত জঁপিয়াই পৰিছিল, আকৌ কোনোৱে অহিংসাৰে মাতৃ পূজাত আত্মবলিদান দিছিল। দেশৰ দুৰ্দিনত কবিকণ্ঠও দুগুণ স্বৰগ্ৰামেৰে নিনাদিত হৈছিল।

অসমী আই তথা সন্তানসকলে পৰাধীনতাৰ গৰল পান কৰিবলৈ তেতিয়াও কিছু সময় বাকী। ইং ১৮২৬ চন। ইয়াণ্ডাবু সন্ধিৰ চর্ত অনুসৰি অসমৰ শাসনৰ বাঘজৰীডাল ইংৰাজে হাতত তুলি ল'লে। বগা চাহাবৰ বুটজোতাৰ গিৰিপ গিৰিপ শব্দত অসমৰ আকাশ-বতাহ যেন শিঁয়ৰি উঠিল। চাহাবৰ গাতে গা ঘেলাই অসমলৈ অহা দেশী বঙালৰ কূটনীতিত অসমীয়াৰ মুখৰ পৰা মাতৃভাষা হেৰাই যোৱাৰ পৰিস্থিতিও আহি পৰিল। বিদ্যালয়, অফিচ, কাচাৰী সকলোতে বঙালী ভাষাই আধিপত্য বিস্তাৰ কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিলে। সৌভাগ্য যে, অসমীয়াই এই গ্লানি বেছি কাল সহিবলগীয়া নহ'ল। অন্তৰিম হ'বলৈ ধৰা অসমীয়া জাতিৰ ভাষাৰূপী বেলি পুনৰ ন দীপিতিৰে উজলি উঠিল। অসমীয়া ভাষা সাহিত্যৰ অৰুণোদয় হ'ল। অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ সুঁতি পুনৰ প্ৰাণ পাই উঠিল। শঙ্খ, ডবা, কাঁহৰ ঐক্যতানত অসমীয়াই আদৰি আনিলে 'জোনাকী'ক। 'আমি যুঁজিবলৈ ওলাইঠো

আন্ধাৰৰ বিপক্ষে। উদ্দেশ্য দেশৰ উন্নতি, 'জোনাক' বুলি 'জোনাকী'ৰ প্ৰস্তাৱনা সংখ্যাতেই গুম্পাদক আগৰৱালাদেৱে আগবঢ়োৱা উক্তি ফাঁকিয়ে অসমীয়া সাহিত্যক নৱ নৱ চেতনাৰে বৰণীয়া কৰি পেলালে। এফালে ৰোমাণ্টিক চেতনা সাহিত্যক ৰসঘন কৰিলে, আনফালে স্বদেশ প্ৰেমৰ তীব্ৰ অনুভূতিয়ে সমাজ তথা জাতিক নিজৰ অস্তিত্বৰ বিষয়ে সজাগ কৰি তুলিলে। মুঠতে 'জোনাকী'ৰ যুগটোক এক 'পয়োভৰৰ যুগ' বুলি ক'ব পাৰি। 'জাতীয় চৈতন্য আৰু দেশাত্মবোধৰ প্ৰকৃত পৰিচয় ফুটি উঠিল জোনাকী যুগৰ কবিসকলৰ লিখনিৰ মাজেৰে। এই জোনাকী যুগকেই অসমীয়া সাহিত্যৰ পয়োভৰৰ যুগ বুলি ক'ব পাৰি।'[১]

তেনে সময়তে অসমীয়া কাব্য সাহিত্যত এটি বজ্ৰনিনাদিত কণ্ঠ শুনা গ'ল। সেই কণ্ঠৰ গৰাকী আছিল 'অসম কেশৰী' খ্যাত অম্বিকাগিৰি ৰায়চৌধুৰীদেৱ। মূলতঃ ব্যক্তিপ্ৰেম, ভগৱৎপ্ৰেম, অতীন্দ্ৰিয়প্ৰেম, মানৱপ্ৰেমত হাবুডুবু খোৱা কবিজনা দুৰ্দান্ত দেশ প্ৰেমকো। দেশপ্ৰেমৰ ভাৱনাই তেওঁৰ সাহিত্যকৃতিত এক সুকীয়া মাত্ৰা বহন কৰিছে। তেওঁৰ সাহিত্যৰ আলোচনা প্ৰসংগত এনেদৰে কোৱা হৈছে - 'জালিয়ানৱালাবাগৰ হত্যাকাণ্ড, নিজৰ জেল জীৱনৰ অভিজ্ঞতা, অসমীয়া যুৱশক্তিৰ পুনৰ্জাগৰণৰ প্ৰতি সচেতনতা, মূল্যবোধৰ নিজস্ব বলিষ্ঠ ধাৰণা - এই আটাইবোৰ তেওঁৰ অনুভূতি উজলাই তেওঁক নতুন ধৰণৰ কবিতা ৰচনাত প্ৰবৃত্ত কৰাইছিল, এই কবিতা আছিল এহাতে বৈপ্লৱিক, দেশপ্ৰেমমূলক মানৱতাবাদী, ব্যঙ্গাত্মক নাইবা ঘৃণাসূচক, কেতিয়াবা সকলোৰে সমাহাৰ ...।[২] স্বৰাজৰ সপোন দেখা ৰায়চৌধুৰীয়ে ছাত্ৰাৱস্তাতে নিজকে মাতৃপূজাত নিয়োজিত কৰিছিল। পুলিচে তেওঁক নজৰবন্দী কৰিছিল, তেওঁৰ 'বন্দিনী ভাৰত' নাটকখন বাজেয়াপ্ত কৰিছিল। ইংৰাজক আলাই আথানি কৰি এসময়ত সশস্ত্ৰ সংগ্ৰামৰ পৰা ফালৰি কাটি অহা ৰায়চৌধুৰীদেৱে গান্ধীজীৰ শৰণাপন্ন হোৱাৰ এক দীঘলীয়া ইতিহাসো আছে।

১৯২৬ চনত বহা কংগ্ৰেছৰ ৪১ তম অধিৱেশনত ৰায়চৌধুৰীদেৱৰ ৰচিত 'আজি বন্দো কি ছন্দেৰে সমাগত বিৰাট নৰনাৰায়ণ ৰূপ' গীতটে পৰিবেশিত হৈছিল। জনতাৰ জয়গানেই যে ৰায়চৌধূৰীৰ সাহিত্যৰ মূল উৎস, তাকেই

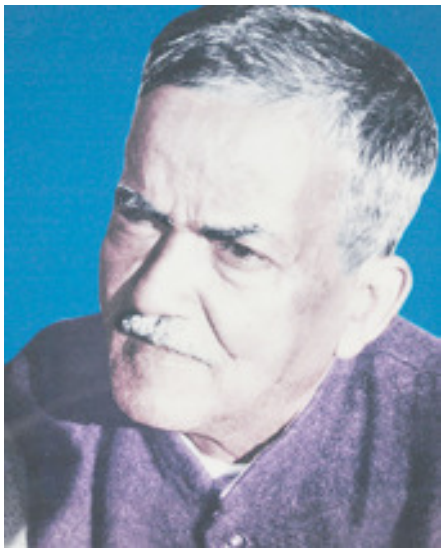

এই গীতটোৱে প্ৰমাণ কৰে।

পৰাধীন জনতাক স্বৰাজমুখী হোৱাৰ অনবৰত প্ৰেৰণা দিয়া কবিজনাই বহুসময়ত জনতাৰ দায়িত্ব আৰু ভূমিকা দেখিবলৈ পাই হতবাক হৈ পৰিছে। 'কি কবিতা লিখো মই' কবিতাত বৰ আক্ষেপেৰে কৈছে -

'যাৰ দেশ-জাতি, ঘৰ ভেটি মাটি
সি যদি নাজাগে চেতনা ল'ই,
এই দাবানল নুমাবলৈ -
দেশও জ্বলিব, জাতিও জ্বলিব,
ময়ো জ্বলি যাম, ভস্ম হ'ব -
কি কবিতা লিখো মই ...'

জেলত থকা সময়ত কবিক জেলৰ পায়খানা চাফা কৰাৰ কাম দিয়া হৈছিল। একো ওজৰ আপত্তি নকৰাকৈয়ে তেওঁ চাফ চিকুনৰ কামত লাগি গৈছিল। বাঢ়নী চলোৱাৰ লগে লগে কবিতাৰ ফাঁকি কিছুমানো গুণগুণাই থাকিছিল। কবিয়ে জনতাক জাতিৰ ঝাড়ুদাৰ হ'বলৈ আহ্বান জনাইছিল। চুকে কোণে থকা ধূলি-মাকতিবোৰ ঝাড়ুৰে সাৰি ঠাই নিকা কৰা হয়। তেনেকৈ মনৰ মাজত ঠাহ খাই থকা হিংসা-দ্বেষ, ভেদাভেদ, ঘৃণা, স্বাৰ্থভেমৰ জাহি-জাবৰবোৰো মনত পৰা আঁতৰাই পঠিয়াবৰ হ'ল -

'হ'ল এৰে তোৰ সময় হ'বৰ
জাতিৰ ঝাড়ুদাৰ যে ভাই।

হিংসা-দ্বেষৰ, ভেদাভেদৰ
ঘৃণা-ঘৃণি স্বার্থ ভেমৰ
ক'ত যে কি মলি-মামৰ
ভৰি জাতিৰ জীৱন যায় ...'[৩]

মনৰ কুটিলতাবোৰ সাঁৰি পুছি আঁতৰাব নেৱাৰিলে বিশ্ব সভাত আমাৰ কোনো পৰিচয় নাথাকিব বুলি কবিয়ে সকীয়াই দিছে -

'বীৰ বেশেৰে ধৰ ঝাড়ু ধৰ
জাতিৰ জীৱন কৰ মনোহৰ
সাঁৰি পুছি চোকে কোণে
য'ত যি আছে জাহি জাবৰ
নহ'লে যে বিশ্বসভাত
নহ'ব তোৰ বহাৰ ঠাই।[৪]

'গঢ়া কবি মোক ঝাড়ুদাৰ' কবিতাত কবিয়ে ঈশ্বৰক প্ৰাৰ্থনা জনাই গৈছে যাতে তেওঁক ঝাড়ুদাৰৰূপে গঢ়ি তোলে। কবিয়ে সমাজৰ সকলোবোৰ আবৰ্জনা মূৰ পাতি ল'ব -

'সুধিছা
সাঁৰি পুছি ক'ত
বুজিছা
বৰাম সকলো মোত ....'[৫]

কাগাৰ আৰু কাৰাবন্দী জীৱনক কবিয়ে হাঁহিমুখে গ্ৰহণ কৰিছে। কিন্তু সেই জীৱনে কবিক দমাই ৰাখিব পৰা নাই। কবিয়ে দুগুণ উৎসাহেৰে স্বৰাজৰ গান গাইছে। বুকু ফিন্দাই ইংৰাজক কৈছে -

'আৰু কি দেখাবি ভয় কাৰাগাৰ
আৰু কি দেখাবি ভয়?
তোৰ ৰঙা চকু যিমানে কৰিবি
সিমানেই জয় কাৰাগাৰ'[৬]

কবিয়ে মানুহক কৰ্মমুখী হোৱাৰ আহ্বান জনাইছে। কাৰণ মাতৃভূমিক পুনৰ জীয়াই তুলিবলৈ লাগিব -

'কৰ কৰ কাম, ধৰ ধৰ কাম - কেৱল কাম কেৱল কাম
কামৰ সোঁতত ৰাখ নিমগণ দেশ-মন-প্ৰাণ অবিৰাম
মৰামুৱা দেখখনি তোৰ নদন বদন কৰ গঢ়ি
কামত ধৰ কামত ধৰ -
জীৱনটো তোৰ সফল কৰ।[৭]
আকৌ
মাটিয়েই দেশ দেশেই আত্ম
মাটি দেশ গলে আত্ম নাই
সেই আত্ম লটি ঘটি হ'লে
এৰি গুচি যায় মানৱতাই'

বুলি উদাত্ত কণ্ঠেৰে জনতাক হুচিয়াৰ কৰা কবিজনাই কাহানিও নিজৰ আদৰ্শৰ পৰা তিলমানো বিচ্যুত হোৱা নাছিল। তেখেতৰ আদৰ্শৰাজিক গ্ৰহণ কৰি নতুন সমাজ ৰচনাৰ বাবে উত্তৰ পুৰুষসকল ওলাই আহিলেহে এই মহান আত্মাৰ প্ৰতি আমাৰ সচাঁ আন্তৰিকতা তথা শুদ্ধ নিবেদন কৰা হ'ব। ❑

"কামেই ধৰ্ম, কামেই জীৱন,
কামেই কবিতা, শিল্প, কলা,
কাম বিহনে জীৱন-জেউজি
ৰস-ৰূপ-গোন্ধ-শূন্য, সোলা।"

-অম্বিকাগিৰি ৰায়চৌধুৰী

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2000 और अधिकतम 4000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का पालन करना चाहिए।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल हो सकते हैं।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना चाहिए।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

नाम : .....

पदनाम : .....

पूरा पता : .....

: .....

ई-मेल : ..... मोबाइल : .....

RTGS का विवरण : .....

यहाँ से काटिए

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत		*संस्थागत*	
प्रति अंक	: रु. 50/-	प्रति अंक	: रु. 100/-
वार्षिक	: रु. 550/-	वार्षिक	: रु. 1,000/-
दो वर्षों के लिए	: रु. 1,000/-	दो वर्षों के लिए	: रु. 2,000/-
पाँच वर्षों के लिए	: रु. 2,500/-	पाँच वर्षों के लिए	: रु. 4,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary : Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No. : 0853010182614
Name of Bank & Branch : Punjab National Bank, G.S. Road
IFS Code : PUNB0085320

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सोणर असम

अपरुपा सुशोभिता सुजला सुफला
मनोरमा प्रकृतिर माधुरिमा जरि
लौहित्यर तीरे तीरे करिले रचना,
जिखिनि अलकापुरी, निरुपमा करि।

जार रूप ज्योति परि, अजाने निजाने,
ऋषि, योगी, तपस्वीर भांगिछिले ध्यान,
लुइतर ढौवे ढौवे खलकनि तुलि
आजिओ घोषिछे जार महिमार गान।

शिरे शिरे भकतिर 'भोगवती' धारा
बइ जाय निते जार पादपद्म चुमि,
सेये मोर स्वर्गधाम, सोणर असम,
मरतर महातीर्थ, सेये जन्मभूमि।

पुण्यभूमि असमर लाहती कोलात,
अनादि कालर परा क'त खेला ह'ल,
कामाख्यार काषे काषे लुइतर सोंते सोंते
महिमार पालतरा क'त तरी ग'ल।

त्रयोदश शतिकात इयाते एदिन,
इन्द्रबंशी चुकाफाइ असीम प्रतापे,
शत्रु शक्ति क्षय करि आहोम राजत्व
आरम्भिले असमत आदि रजा रूपे।

पर्वत पाहार ढाँहि हाबिबन भाङि
निर्म्माणिले द'ल मठ, देवी-देवतार
पुष्करिणी, रङघर, तलातल घरे
आजिओ घोषिछे कीर्ति आहोम रजार।

मन्दिरर शिरे शिरे सोणर कलची
अरुण किरण परि आजिओ जिलिके
मामरे सामरि धरा तामर फलित
क'तजने आजिओं जे क'त कथा शिके।

इयाते एदिन सहि नरक यातना,
सती लक्ष्मी पतिब्रता जननी जयाइ
पतित भकति राखि देशर कारणे
जेरेङत जीया तेज दिले उटुवाइ।

गणेश गगै

(28 दिसंबर, 1907 – 21 अगस्त, 1938)

असमर गगनत दीप्त दिनमणि
रुद्रसिंह स्वर्गदेव मातृर नामत।
सजाले यि जयद'ल, खनाले पुखुरी,
युगमीया कीर्ति राखि जयसागरत।

बछरे बछरे सेइ पुण्य मन्दिरत
जयार अभया छबि मूर्त्तिमती हय,
कठिन शिलेरे गढ़ा देवी मन्दिरत
एधारि चकुर पानी आजिओ ये बय!

धर्म कर्म महत्वत आहोम राजत्व
यि दरे प्रसिद्ध ह'ल भारतवर्षत,
बीरत्वतो सेइदरे स्वाधीन असम
आछिल आदर्श होइ महीमण्डलत।

राज्यलोभी पराक्रमी आहोते पाठान,
करों बुलि असमर स्वाधीनता लोप,
स्वभाव कोमल बाला मूला महिलाइ
धरिछिल समरत रणचण्डी रूप।

राङली बुकुर तेज बिजुली बेगत,
नाचि नाचि पाठानर नाशिछिले प्राण
हाँहि हाँहि जीवनर रंङा जबा पाहि।
जन्मभूमि जननीक करिछिला दान।

मदमत्त मोगलर सेना सेनानीये
''करिम असम जय, ह'ब स्वर्गवास!''
(किन्तु) आशार आकाश जोर रूपाली जेउति,
ढाकिले कलीया मेघे आबरिले जोन,
समग्र भारत जयी बीर मोगलर
शराइघाटत देहि भागिल सपोन। ❑

(नोट : कविता का लिप्यंतरण उच्चारण के अनुरूप किया गया है।)

POSTAL REGISTRATION NO. GH/127/2022-24 ♦ Date of Publication : 31st August, 2023 RNI No. ASSBIL/2009/31008

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032

मो. 9101541395 / 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com